वर्ष १६ } संस्थापक—गोविन्दराम हासानन्द } वार्षिक मूल्य ५-००
अङ्क ६ } पौष २०२४, जनवरी १९६८ } इस अङ्क का ४० पैसे

## वर्चस प्रार्थना

आयुष्यं वर्चस्य७ं रायस्पोषमौद्भिदम् ।
इद७ं हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाऽविशतादु माम् ॥ यजु० ३४ । ५० ॥

( इदं हिरण्यं ) यह सुवर्ण आदि धन मेरे लिए ( आयुष्यं ) दीर्घ आयुष्य देने वाला, ( वर्चस्यं ) तेज बढ़ाने वाला, ( रायः पोष ) राजस्व का पोषण करने वाला, ( औद्भिदं ) उन्नति देने वाला और (वर्चस्वत्) शान्ति देने वाला होकर ( जैत्राय ) विजय के लिए ( मां ) मुझे ( विशतात् उ ) प्राप्त होते ही ।

अर्थात् उस धन से ऐसे कर्म करने चाहियें जिससे दीर्घ आयुष्य तेज ऐश्वर्य उन्नति अभ्युदय बल और विजय प्राप्त होता रहे। ऐसे कर्म नहीं करने चाहिये, कि जिनसे आयु आदि न्यून होकर अवनति होजाय ।

जो मनुष्य धनी हैं, उनको योग्य पुरुषार्थ करके दीर्घ आयुष्य, तेजस्विता, पुष्टि, उन्नति, शक्ति और विजय प्राप्त करना चाहिए। यदि धन प्राप्त होने से इन गुणों की न्यूनता हो जाय, तो वह योग्य धन ही नहीं है। इन गुणों की वृद्धि करने वाला ही धन योग्य-धन है ।

॥ ओ३म् ॥

# वेद प्रकाश

सम्पादक–**विजयकुमार**
फो० न० २६२७६५

आदरी सहसम्पादक–**ब्र० जगदीश विद्यार्थी**
फो० नं० २२१३२८

## सम्पादकीय

**वाल्मीकीय रामायण**—वाल्मीकीय रामायण दिसम्बर १९६७ में दे देने का विचार था परन्तु वह विचार विचार ही रह गया। इस रामायण को छपाने पर ९ सहस्र रुपया खर्च होगा। यदि २०० ग्राहक भी बन जाते तो रामायण समय पर निकल जाती परन्तु ग्राहक बने कुल ३५। रामायण तो मुझे देनी है। जो कदम आगे बढ़ गया है वह पीछे नहीं हट सकता। अभी तीन हजार रुपये की कमी है। इस वर्ष में यह कमी निश्चित रूपेण पूरी हो जायेगी। यदि कुछ कमी भी रही तो जिल्दें पीछे बन्धती रहेंगी। जनवरी में मैं 'वेदप्रकाश' का वृहद् विशेषांक "दयानन्द सूक्ति और सुभाषित" तैयार कर दूंगा। फरवरी में यह छपेगा और मार्च में पाठकों की सेवा में भेज दिया जायेगा। इसके पश्चात् रामायण ही मेरे समक्ष रहेगी। अप्रैल में मेरे भतीजे - भतीजियों की परीक्षाएँ सम्पन्न हो जायेंगी तो उन से प्रूफ संशोधन में मुझे बहुत सहायता मिलेगी। अतः अप्रैल में मैं पुस्तक निश्चितरूप से प्रेस में दे दूंगा। कितने दिन में छपेगी यह अभी नहीं कह सकता। हाँ एक बात कह सकता हूँ कि जिन महानुभावों ने मेरे ऊपर विश्वास कर रुपया भेजा है उनका रुपया बैंक में जमा है। पुस्तक छपते ही पुस्तक रजिस्ट्री से उनकी सेवा में भेज दी जायेगी।

यदि वे अपना धन वापस चाहें तो लिखने पर उनका धन तुरन्त वापस कर दिया जायेगा। धैर्य रखें। धैर्य का फल मीठा होता है।

**हमारा आगामी वृहद् विशेषांक**– इस वष हमने दो विशेषांक देने की घोषणा की थी। एक विशेषांक— "विद्यार्थी लेखावली" पाठकों को भेजा जा चुका है। इस विशेषांक को ग्राहकों ने बहुत पसन्द किया। "चाय भयंकर विष" को अलग ट्रैक्ट रूप में छपाने की माँग भी हमारे पास आई हैं।

अब शिवरात्रि के उपलक्ष में इस विशेषांक से भी बढ़-चढ़ कर हम अपने पाठकों को एक और विशेषांक भेंट कर रहे हैं—"दयानन्द सूक्ति और सुभाषित।" यह ग्रन्थ अनुपम एवं अभूतपूर्व होगा। अब तक जो सुभाषित ग्रन्थ निकले हैं उनमें दो-दो पृष्ठ के उद्धरण भी सुभाषित के नाम पर दिये हुए हैं और ये संकलन प्रायः सत्यार्थप्रकाश से हुए हैं। हमने महर्षि दयानन्द के छोटे-बड़ सभी ग्रन्थों और वेदभाष्यों के आधार पर यह संकलन तैयार किया है। ग्रन्थ को अनेक शीर्षकों में विभक्त किया है। प्रायः सभी वाक्य तीन-तीन, चार-चार पंक्तियों के हैं। आरम्भ में १६ से २० पृष्ठ में महर्षि दयानन्द की जीवनी भी है। दयानन्द साहित्य में यह ग्रन्थ एक ठोस वृद्धि होगी।

"विद्यार्थी"

---

[ शेष पृष्ठ ३२ का ]

कारण नहीं होता कि यह 'स्वदेशी सस्ती दवा' है?

आमतौर पर आजकल प्रातः जलपान के साथ २ चाय-पान का रिवाज है। यदि ५–७ खजूर खाकर ऊपर से दुग्ध-पान किया जाता तो अधिक लाभकारी सिद्ध होगा। दिमागी कार्य करने वाले व्यक्तियों को तो अवश्य ही दूध के साथ खजूर का प्रयोग करना चाहिये। इस क्रम से उनकी शारीरिक शक्ति के साथ ही मानसिक शक्ति भी प्रबल बनेगी तथा अधिक बैठे रहने या चिन्तन करने से जो थकान पैदा होती है वह भी मिट जायेगी। इस ऋतु में ऐसे उपयोगी अमृत गुणमय मेवे से वंचित रहना अपने स्वास्थ्य को अवनति की ओर ही ले जाना है।

# वेदोपदेश

★ आचार्य लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी

**ओ३म् उ त यो द्यामति सर्पात् परस्तात् न स मुच्याते वरुणस्य राज्ञः।**
**दिवः स्पशः प्रचरन्तीदमस्य सहस्राक्षाः अति पश्यन्ति भूमिम् ॥**

इस मन्त्र में कहा गया है कि द्युलोक में दमकते प्रकाश उद्यान से आगे चले जाओ या कहीं अन्य जगह जहाँ भी जाने की सामर्थ्य हो पहुँच जाओ, परन्तु वरुण राजा परमात्मदेव के नियन्त्रण से बाहर नहीं जा सकते। उसके दिव्य-दूत नेत्रों से अगोचर गुप्तचर सर्वत्र विचर रहे हैं। वे इनके द्वारा असंख्यात नेत्रों से सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भी समस्त प्राणियों की क्रियायें देख रहे हैं। जो भी हमारे द्वारा हो रहा है उसे बिना भोगे हमारा निस्तार नहीं है। हम समझते हैं कि गङ्गा स्नान से हमारे पाप धुल जायेंगे, यह कोरा भुलावा है। मुसलमानों की पञ्चवक्ता नमाज भी कसूर माफ नहीं करा सकती। ईसाइयों की बाइबिल पर भी ईमान लाने से ईसा हमारे अपराधों को लेकर आसमान पर चढ़ने से रहे। यदि ऐसा होता तो गङ्गा के किनारे कोई भी कोढ़ी या अपाहिज न मिलता। मुसलमानों और ईसाइयों में कोई अन्धा, लंगड़ा या लूला न मिलता। वैदिक सिद्धान्त के अनुसार जीवात्मा कर्म करने में स्वतन्त्र है, किन्तु फल भोगने में परतन्त्र है। इसी लिए "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्" ऐसा शास्त्रकार मानते हैं। देखिये मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी, जिन्हें हमारे दूसरे भाई भगवान् के नाम का आदर देकर उन्हें साक्षात् भगवान् का अवतार मानते हैं, उन्हें भी—'करम गति टारे नाहिं टरे' के अनुसार वन जाना पड़ा और भगवती सीता के निमित्त असह्य वेदना सहन करनी पड़ी। इसी लिए सूक्तिकारों ने भीः—

**कर्मणा बाध्यते बुद्धि-**
**र्न बुद्ध्या कर्म बाध्यते।**
**सुबुद्धिरपि यद्रामो**
**हैमं हरिणमन्वगात् ॥**

और भी सुनिये—

**येन यत्रैव भोक्तव्यं**
**सुखं वा दुःखमेव च।**
**स तत्र बध्वा रज्ज्वेव**
**बलाद्दैवेन नीयते ॥**

कर्म भोग इतना बलवान् है कि वह बुद्धि को मन्द कर देता है। बुद्धि में शक्ति नहीं है कि वह कर्म-भोग के व्यापार को शिथिल कर दे। तभी तो मर्यादा का उल्लङ्घन न करने वाले सुबुद्धि भी श्रीराम सुवर्ण मृग के पीछे उसे सीता के लिए पकड़ कर लाने के लिए संकट में पड़ गये। सच तो यह है कि जिसे जहाँ जितना सुख या दुःख भोगना होता है, उसे वहाँ रस्सी से बलपूर्वक बँधे हुए की तरह दैव के द्वारा पहुँचा दिया जाता है "न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः" वह परात्मदेव के नियन्त्रण रूपी भोग-बन्धन पाश से रत्ती भर भी शिथिल नहीं हो पाता।

सा सा सम्पद्यते बुद्धिः
सा मतिः सा च भावना।
सहायास्तादृशा एव
यादृशी भवितव्यता ॥

वैसी ही बुद्धि बन जाती है, वैसा ही करने की इच्छा का ज्ञान उत्पन्न होता है और वैसी ही भावना बनी रहती है। उस समय के सहायक साधन भी वैसे ही उपलब्ध होते हैं जैसा कि होनहार होता है।

यथा धनु सहस्त्रेषु
वत्सो विन्दति मातरम्।
तथा पूर्वकृतं कर्म
कर्तारमनु गच्छति ॥

जिस प्रकार बछड़ा हजारों खड़ी हुई गायों में केवल अपनी माता के ही पास पहुँच जाता है, इसी प्रकार पूर्व जन्मों के किये गये कर्म करने वाले को प्राप्त कर लेते हैं। यदि ऐसा नहीं तो फिर बताइये :—

पौलस्त्यः कथमन्यदारहरणे
दोषं न विज्ञातवान्,
रामेणापि कथं न हेम
हरिणस्यासंभवोलक्षितः ।
अक्षैश्चादि युधिष्ठिरेण
सहसा प्राप्तो ह्यनर्थः कथम्,
प्रत्यासन्न विपत्ति मूढ-
मनसां प्रायो मतिः क्षीयते ॥

चारों वेदों के विद्वान् और फिर

पुलस्त्य ऋषि के कुल में समुत्पन्न भी रावण ने दूसरे की सहधर्मिणी के अपहरण में कणभर भी दोष नहीं देखा। उससे आगे धर्म की मर्यादाओं को जन्म देने वाले श्री रामचन्द्र भी सुवर्ण-मृग की सम्भावना में ठगे गये। अजातशत्रु धर्मराज युधिष्ठिर भी जुए जैसी जुगुप्सित व्यसन की परिस्थिति में उलझ कर अनर्थ के चक्र में फँस गये। इससे प्रतीत होता है कि जन्म-जन्मान्तर का भोगजाल संकट की विकट कोटि का कूट प्रतिष्ठित होते हुए भी महामति मानव की सुमति को पथभ्रष्ट कर ही देता है।

यही सोच कर संस्कृत वाङ्मय के पारङ्गत महामति श्री हनुमान् जी कह रहे हैं ओह—

कुत्रायोध्या क्व रामो दशरथ-
वचनाद्दण्डकारण्य वासः,
मारीचाख्यः कनकमयमृगः
कुत्र सीता-पहारः ।
सुग्रीवे राममैत्री जनकतन-
यान्वेषणे प्रेषितोऽहं,
योऽर्थोऽसम्भावनीयस्तमपि
घटमते क्रूरकर्माविधाता ।।

कहाँ अयोध्या नगरी और कहाँ महाराजा दशरथ जी के वचन से श्रीराम का दण्डकारण्य में आना। कहाँ मारीच नामक सोने का मृग ? और कहाँ महारानी सीता का अपहरण ? कहाँ सुग्रीव से श्रीराम जी की मित्रता और कहाँ जनक पुत्री सीताजी के अन्वेषणार्थ मेरा भेजा जाना ? बस संसार में जो असम्भव है उसे भी कठोर विधाता क्षण में घटित कर देता है।

इतना ही नहीं अपितु :—

पञ्चैते पाण्डु पुत्राः क्षितियति-
तनया धर्म भीमार्जुनाद्याः,
शूरा सत्य प्रतिज्ञा दृढ़तर-
वपुषः केशवेनापि गूढ़ाः ।
ते वीराः पाणिपात्रे कृपण-
जनगृहे भिक्षुचर्यां प्रवृत्ताः,
को वा कार्ये समर्थो भवति,
विधिवशाद् भाविनी कर्मरेखा।।

ये बिचारे महाराजा पाण्डु के पुत्र पाँच पाण्डव युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन नकुल और सहदेव कितने शूरवीर सत्य-प्रतिज्ञ, वज्र शरीर थे और श्रीकृष्ण जी महाराज से रक्षित थे फिर भी दुर्दैव के कारण क्षुद्र पुरुषों के घरों पर भिक्षापात्र लेकर घर-घर भिक्षा माँग कर निर्वाह करने के लिए विवश हो गये। संसार में ऐसा कौन है जो

व्यर्थ में ही अकार्य के लिये भटकता फिरे परन्तु विधि के द्वारा लिखी गई कर्म रेखा को कौन है जो मिटा सके।

और भी सुनिये :—

पत्रं नैव यदा करीर विटपे
दोषो वसन्तस्य, किं,
नोलूकोऽप्यवलोकते यदि
दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्।
धारानैव पतन्ति चातक
मुखे मेघस्य किं दूषणम्,
यत्पूर्वं विधिना ललाट
लिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ॥

यदि करीर के पेड़ पर ऋतुराज के आने पर भी पत्ते नहीं निकलते तो वसन्त का क्या दोष ? प्रकाश के होने पर भी यदि उल्लू दिन में नहीं देख पाता तो इसमें सूर्य का क्या अपराध ? धारा प्रवाह वृष्टि के होते हुए भी चातक के मुँह में वर्षा की बूंदे नहीं पहुँचती तो बताइये विचारे मेघ की क्या त्रुटि ? बस विधाता ने जिसके भाल पर जो लिख दिया है उसे मिटाने में किसी की भी शक्ति नहीं।

कई वार हम लोगों में कई लोग कह दिया करते हैं कि मनुष्य के किये धरे कुछ नहीं बनता सब भगवान ही करते हैं उन्हीं की माया है बुरा भला सब वही कराते हैं। ऐसा सोचना भी भगवान के साथ अन्याय करना है। देखिये अर्जुन श्रीकृष्ण से पूछ रहे हैं कि :—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं
पापं चरति पूरुषः ?
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय
बलादिव नियोजितः ॥

महाराज ! यह तो बताओ कि न चाहता हुआ भी यह प्राणी बलपूर्वक किस से प्रेरित हुआ सा पाप करने के लिए प्रवृत्त हो जाता है यह कौन कराता है ? भगवान् कृष्ण प्रत्युत्तर देते हैं अर्जुन—

काम एष क्रोध एष रजोगुण
समुद्भवः ॥

रजोगुण से उत्पन्न होने वाले ये काम और क्रोध मनुष्य से बलात् अकर्तव्य करा लेते हैं इन्हें ही शत्रु समझना चाहिये। इससे सिद्ध हुआ कि प्रभुदेव किसी से कोई अनुचित कार्य नहीं कराते। मनुष्य भावुकता में आकर वेदादि शास्त्रों का अध्ययन न करने के कारण सब बुरा भला भगवान के माथे मढ़ देता है। शास्त्रकार तो यहां तक कहते हैं कि :—

सुखस्य दु:खस्य न कोऽपि दाता,
परो ददाति कुबुद्धिरेषा ।
अहं करोमीति वृथाभिमान:,
स्वकर्मसूत्रैर्ग्रथितो हि लोक: ।।

अर्थात् सुख और दु:ख का देने वाला कोई नहीं, और यह जो बुद्धि बनी हुई है कि दूसरा मुझे बरबाद कर रहा है, दु:ख दे रहा है यह भी भ्रम ही है साथ ही मैं संसार की रक्षा कर रहा हू मैं दूसरों को सुखी कर रहा हूँ यह भी व्यर्थ का ही अभिमान है क्योंकि जैसा हमने अपने समाज का मिलकर निर्माण किया है वैसी ही प्रतिक्रिया बुरे भले रूप में हम पर होती रहती है इसलिए यह सारा संसार अपने-अपने कर्म सूत्रों से गुथा हुआ है। यह सोचना और यह दोषारोपण करना भी व्यर्थ है कि भगवान निर्बलों और निर्धनों को तो वरबाद करा रहा है और बलवान् तथा धनवान् लोगों का गुलछर्रे उड़ाने के लिये स्वतंत्र किए हुए हैं। यह सब हमारे समाज का दोष है। जब राजा या प्रजा के द्वारा अच्छे समाज का निर्माण होता है तब सब के साथ यथा योग्य व्यवहार होता है और जब इसमें त्रुटि रहती है तब समाज में मत्स्यन्याय से विषमता आ जाती है जो अपने कर्मचक्र का ही दोष है।

# महर्षि दयानन्द के प्रजा तान्त्रिक विचार

★ प्रो० श्रीकान्त उपाध्याय एम० ए०

राजनीति शास्त्र में अनेक सरकारों का वर्णन उपलब्ध होता है जिसमें प्रजातन्त्र सर्वश्रेष्ठ सरकार स्वीकार की जाती है। विश्व के अधिकांश देश आज इसी प्रजातन्त्र शासन का अवलम्ब लेकर चल रहे हैं। अपना देश भारतवर्ष भी प्रजातन्त्र शासन के सुन्दरतम स्वरूप को अपनाकर अपनी प्रत्येक प्रकार की उन्नति में लगा हुआ है। आज देश की बागडोर जिन लोगों के हाथों में है वे रात-दिन इसी बात की चिन्ता में निमग्न हैं कि किस प्रकार यह देश राजनीतिक स्वातन्त्र्य को प्राप्त कर लेने के पश्चात् आर्थिक एवं सामाजिक रूपों में भी पूर्ण स्वतन्त्र हो सकता है। किन्तु सन् १९४७ ई० में १५ अगस्त को स्वाधीन होने वाला भारत देश आज तक इन २० वर्षों की लम्बी अवधि में भी पूर्ण रूप से आर्थिक और सामाजिक प्रश्नों का समाधान न कर सका। जबकि हम यह भली-भाँति जानते हैं कि राजनीतिक स्वतन्त्रता मिलने के बाद तुरन्त ही हमारे देश के नेताओं ने एक स्वर से यह कहना प्रारम्भ किया था कि अब उनके सम्मुख देश का आर्थिक और सामाजिक प्रश्न ही रह गया है जिसे वे प्राण-पण से समाहित करने का प्रयत्न करेंगे। तब से आज तक देश के अन्दर अनेकानेक आर्थिक उन्नति के साधन एकत्र किये गये तथा सामाजिक विषमताओं को दूर करने के अनेक उपाय किये गये। बड़ी-बड़ी नदी-घाटी योजनाएँ, नहर, नलकूप, बाँध, पुल, सड़कें, संयंत्र, विशालकाय भवन, वृहत् एवं लघु उद्योग आदि स्थापित किये गये, बनाये गये परन्तु इतने विशाल देश के लिए आज भी वे अपर्याप्त ही हैं। अभी देशको आर्थिक रूप से समुन्नत करने के लिए इस दिशा में अत्यधिक कार्य करना अवशिष्ट है। इसी प्रकार सामाजिक विषमताओं के

निराकरण के लिए इस प्रजातन्त्र सरकार में अनेक कानून बनाये गये और सामाजिक रूप में पिछड़े हुए लोगों को सरकार की ओर से अधिक सुविधाएँ और सुअवसर भी प्रदान किये गये परन्तु इस दिशा में भी अभी बहुत कुछ करना शेष है।

किन्तु भारत देश में जब कि निर्माण कार्य एवं सुधार कार्य की धूम मची हुई है यहाँ के शासक वर्ग तथा शासित वर्ग में एक विचित्र प्रकार की प्रवृत्ति के सुस्पष्ट लक्षण दिखलाई पड़ रहे हैं—जहाँ देखिये वहीं इस्तीफा, असन्तोष, मुनाफाखोरी का बीभत्स रूप, घूंसखोरी का नग्न ताण्डव, झूठ और दगा फरेब का प्रत्यावर्तन, हिंसा, पातक तथा तृष्णा का निन्द्य नृत्य दिन-प्रति-दिन बढ़ता जा रहा है। मन्त्रिमण्डलों के मन्त्रियों, लोकसभा तथा राज्यसभा के सभासदों और प्रजा वर्ग में सर्वत्र यह रोग व्याप्त है। आज सम्पूर्ण देश में यह चिन्ता का विषय है कि किस प्रकार पारस्परिक मतभेदों को दूर करके सम्मिलित रूप से देश का हित किया जाय। किस प्रकार देश की गतिविधि में सुधार किया जाय और बढ़ते हुए चारित्रिक पतन का सर्वथा निराकरण किया जाय। इन अवांछनीय तत्वों को दूर करने के लिए हमारी सरकार में शीर्षस्थ व्यक्तियों को बराबर चिन्ता रहती है परन्तु कोई समाधान निकलता हुआ नहीं दिखाई पड़ता। न्यायाधीशों की न्याय-प्रियता एवं दण्ड-प्रदाताओं की निष्पक्षता तथा निष्ठुरता का परम पवित्र प्रभाव भी बहुत कुछ आज की दुर्नीत के कुप्रभाव से निष्प्राण सा हो गया है। इसलिए दण्ड्यादण्ड्य का पक्षपात रहित विभेद भी उत्कोच का आखेट बनता जा रहा है। निर्बल-निरीह का रातदिन पिसते जाना और सबल-समर्थ-आततायी का दिन-प्रति-दिन बढ़ते जाना समाज और राष्ट्र के माथे का कलङ्क हो गया है। प्रजातन्त्र में प्रजा के शोषण, प्रतारण, प्रवञ्चन, प्रपीड़न और प्रदाहन से राष्ट्र की आत्मा झुलसी जा रही है।

ऐसी स्थिति में पाश्चात्य देशों के आदर्शों की ओर कब तक हमारी टकटकी लगी रहेगी? समझ में नहीं आता। कुछ तो हम आवश्य-

कता से अधिक उदार और सहृदय हो गये हैं और कुछ आपसी कूट प्रबन्ध के प्रभाव से प्रभावित। "बहती गंगा में तुम भी हाथ धो लो और मैं भी तथा न तुम बोलो और न मैं" वाली नीति देश को उठाये लिये चली जा रही है। ऐसे संकटापन्न समय में यदि हमारे देश के चोटी के नेताओं का ध्यान ऋषियों एवं महर्षियों द्वारा निर्धारित प्रजातन्त्र सरकार की कतिपय विशिष्टताओं की ओर हो जाता तो कदाचित् वर्तमान समय के अनेक जटिल प्रश्नों का सहज समाधान हो उठता।

ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त ऋषि-मुनियों की कोटि में आने वाले महर्षि दयानन्द सरस्वती प्रणीत 'सत्यार्थ प्रकाश' ग्रन्थ में वैदिक प्रजातन्त्र का अत्यन्त समुज्ज्वल स्वरूप वर्तमान है, जिसमें अधुनातन समय में होने वाले कदाचारों को निर्मूल करने के अनेक उपायों का वर्णन किया गया है। उक्त ग्रन्थ के षष्ठ समुल्लास में लेखक ने राज-धर्म का वर्णन करते हुए लिखा है कि राजनीति में 'बुद्धिमान् लोग दण्ड को ही धर्म कहते हैं।"... "बिना दण्ड के सब वर्ण दूषित और सब मर्यादा छिन्न-भिन्न हो जायें।"..."जो दण्ड को अच्छे प्रकार राजा चलाता है, वह धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि को बढ़ाता है...।" आदि आदि।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का अभिमत है कि राज्य में कदाचारी को उचित दण्ड मिलना चाहिए अन्यथा पाप करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलेगा और देश अथवा राज्य में पापियों और पापाचारों की संख्या बराबर बढ़ती जायगी। राज्य में जो जितना ही बड़ा अधिकारी हो, उसको अपराध करने पर साधारण प्रजा की अपेक्षा बहुत दण्ड देना चाहिये। देखिये सत्यार्थ प्रकाश में लेखक ने कहा है—"जिसका जितना ज्ञान और जितनी प्रतिष्ठा अधिक हो उसको अपराध में उतना ही अधिक दण्ड देना चाहिए।" किसी भी राष्ट्र में दण्ड का विधान ऐसा होना चाहिए जिससे राज्याधिकारी एवं प्रजावर्ग दोनों को अपराध करने पर यथोचित रूप से दण्डित किया जा सके अन्यथा राज्य में महान् अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। "जो ऐसी

व्यवस्था न हो तो राजा, प्रधान और सब समर्थ पुरुष अन्याय में डूब कर न्याय धर्म को डुबा के सब प्रजा का नाश कर आप भी नष्ट हो जाएँ।"

किन्तु आज भारतीय प्रजातन्त्र की दशा क्या है? राष्ट्र में जो जितना ही अधिक प्रभावशाली है, समृद्ध है, उच्च-पदासीन है और धूर्तराज है, वह अपने बड़े-से-बड़े अपराध से उतनी ही सरलता से मुक्त हो जाता है, दण्डित नहीं होता और वे बेचारे सीधे-सादे प्रजावर्ग के लोग बड़े-बड़े कुचक्रों में आबद्ध कर लिये जाते हैं, पीस डाले जाते हैं, उनकी कोई नहीं सुनता। प्रतीत होता है कि देश का सारा कानून निरीह, अपढ़, भोलीभाली जनता को ही अनुशासन में रखने के लिये निर्मित हैं। आज दण्डनीय व्यक्ति अपनी धूर्तता का उपयोग कर दण्ड-मुक्त होते जा रहे हैं और अदण्ड्य व्यक्ति दण्डित हो रहे हैं। प्रजातन्त्र का ढोल पीटने वालों को यह स्मरण रखना चाहिए कि 'न्याययुक्त दण्ड ही का नाम राजा और धर्म है।" उचित न्याय की अनुपस्थिति में देश की अव्यवस्था कदापि दूर नहीं हो सकती।

यह अवश्य स्वीकार किया जा सकता है कि भारतवर्ष धर्म निरपेक्ष प्रजातन्त्र है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि राजा (अर्थात् प्रेसीडेण्ट), मंत्री (प्रधान मन्त्री एवं उनकी कैबिनेट), सभासद (लोक सभा एव राज्य सभाओं के सदस्य) और प्रजाजन अपना धर्म विस्मृत कर धर्म रहित होने का प्रयास करें। राजा का अपना धर्म है मंत्रियों का अपना और सभासदों का अपना अलग-अलग धर्म अथवा कर्त्तव्य है जिसका पालन उनके लिए अत्याव-श्यक है। अपने कर्त्तव्य से च्युत होने पर राजा, मन्त्री, सभासद और प्रजा सभी दण्डनीय हैं। उन्हें उचित एवं कठोर दण्ड मिलना चाहिए ऐसा न होने पर देश की वर्तमान स्थिति में सुधार की आशा सम्भव नहीं। प्रजातन्त्र राज्य संविधान का मूल सूत्र ऋषि दया-नन्द के शब्दों में देखिये—"इसका अभिप्राय यह है कि एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिए किन्तु राजा जो सभापति, तदाधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और

[शेष पृष्ठ १५ पर]

# द्वे सृती परिचय

★ अनतानन्द सरस्वती
(शिष्य श्री स्व. स्वामी अच्युतानंद सरस्वती)

जब प्रलय अवस्था रहती है तब संसार के जीवात्मा दो विभागों में विभक्त हो ब्रह्म में रहते हैं, उनमें से एक भाग शुद्ध विमुक्तात्मा ब्रह्म-शक्ति में स्वतन्त्र स्वच्छन्द विचरते और अपने सत्‌चित् स्वस्वरूप संपन्न ब्रह्म के आनन्दघन से आनंदित रहते हैं। दूसरा भाग प्रकृति विलीन अप्रज्ञात अलक्षण तर्क शून्य अज्ञानरूप प्रसुप्त अवस्था को प्राप्त रहते हैं वे कारण रूप जड़भाव को अवलम्ब करके रहते हैं।

मुक्ति कर्मजन्य ज्ञान द्वारा प्राप्त होनें से सान्त है। जब मुक्तात्मा की मुक्ति का अन्त होता है तब वह आत्मा मोक्ष विज्ञान से तिरोभूत हो जाता और वह अपने संघस्था:, सहस्थानी आत्माओं के प्रति कहता है कि—

**कस्य नूनं कतमस्यमृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम। यो नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ १ ॥ अग्निर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम। स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ २ ॥**
(ऋग्वेद मण्डल १। सू २४ मंत्र १–२

इन दोनों मंत्रों में जन्मेच्छुक जीवात्मायें प्रश्न करती हैं कि, (अमृतानाम्) अपने मुक्तात्मा और नाश रहित पदार्थों में कौनसे व किस देव के नाम को अमृत व पवित्र (मनामहे) मानें व जाने? जो (न:) हमको बंधन से मुक्ति और मुक्ति का सुख भुगाकर पुन: इस प्रकृति के सम्बन्ध में जन्म लेकर माता पिता के दर्शन कराता है। यह जन्म लेकर माता पिता के दर्शनों की आकाँक्षा है, न कि जन्म लेने मात्र की ही इच्छा है। यह विचारणीय बात है, ध्यान में रहे।

दूसरे मंत्र में उक्त प्रश्न का प्रत्युत्तर है कि, हम सब मुक्तात्मा इस आत्मान्तर्यामी प्रकाश स्वरूप

अनादि, सदामुक्त परमात्मा अग्नि-देव का नाम पवित्र जानते हैं जो हमको मुक्ति पद में आनन्द भुगाकर पृथिवी में पुनः माता पिता के सम्बन्ध में जन्म देकर माता पिता का दर्शन कराता है। इस प्रकार के प्रश्नोत्तर में विवेचनीय विषय यह है कि, उक्त बात अध्यात्म क्षेत्र की है, उस अधिकरण में सामवेद का समावेश है। अतः ईश्वर के स्व-स्वभाव में सृष्टि-उत्पति विषयक ईक्षण हुआ और (**अग्न आ याहि वीतये**) इस परावाणी का उद्घोष हुआ जो अपने औरस आर्य पुत्रों में से अर्यमा पुत्र के लिये आह्वान है कि, हे पुरुजात अर्यमन्! इस सृष्टि में तू अग्रणी बन के और समन्तात इन्द्र, सवित्र, वायव्य और आंगिर समित्रों के सहित (वीतये) खान पान व्यवहार को (याहि) विधि-पूर्वक प्राप्त हो।

परामर्श यह है कि जन्मेच्छुक जीवात्मा ने माता पिता के दर्शनों की आकांक्षा की है जिस कारण अधिकरण में ग्रहण करना पड़ा था, वे आत्माएं ही अमैथुनी सृष्टि में पितरः संबभूवुरिति विज्ञेयम्॥ वे पितर कौन हैं, तो विश्वकर्मा वंशज शिल्पपरायण ईश्वर के पुत्र आर्य थे, हैं और आगे रहेंगे भी। (आर्या ईश्वरस्य पुत्राः।) (**अहमिमां भूमिमाददाम्यार्याय**) मैं ईश्वर इस भूगोल को एक आर्य के लिये समं-तात् (ददाम्) (ददामि) देता हूं: वह आर्य पुत्र हैं क्योंकि ईश्वर अर्यः सर्व जगत्स्वामी है उस स्वामी में विश्वकृत कामों के गुण कर्म स्वभाव अनादि हैं उन अनादि कर्म स्वभाव अधिकरण में अनन्त जीवात्मायें विश्वकृत गुण कर्म स्वभाव पूर्ण विद्यमान् रहते हैं जिनको ईश्वर सत्चित् विज्ञानवान् स्वरूप अपने सत्चित् विज्ञानात्माओं को (साध-कतमम् करणम्) सृष्टि रचना में साधन बनाता है। वे रक्षक स्व-भावयुक्त होने से पितर संज्ञक होते हैं। यथा (**ये सत्यस्य पतयः शंनो-भवन्तु पितरो हवेषु। ऋभवः सु-हस्ताः सुकृतः**) इत्यादि विशेषणों युक्त आर्य आदि सृष्टि में पितर उत्पन्न हुआ करते है।

उन पितरां के जन्म के साथ ही वेदों की उत्पत्ति हुई थी और आगे भी होगी क्योंकि वे ही सत्य वेद के (पाल-कत्वात्पतयःसन्तीतिनिर्विवादः।) पति हैं क्योंकि शिल्पकला से बिना

वर्ण वा अक्षर रचना बन नहीं सकती तथा लेखनी-चाकू आदि साधन भी शिल्पसाध्य ही हैं।

(**अन्यचापि:-मायायै कर्मारम्। मेधायै रक्षकारम्।**) ये दोनों वचन यजुर्वेद में आये हैं माया वै प्रज्ञा। यह निरुक्त का वचन है। अभिप्राय यह है कि, जिस कुल में जन्म सिद्ध प्रज्ञा और मेधा बुद्धि प्राप्त हैं वे क्यों न पितृसंज्ञा को धारण करें, क्यों न देवलोग उनकी जन्मद: पितावत् सत्कार करें! देव उनकी सन्तान का नाम है और जो शिल्प-विज्ञान रहित वंशजों के कुल निविड़ हैं वे मनुष्य, गन्धर्व और मत्य संज्ञक कहाते हैं। तब पितर, देव, मनुष्य और मर्त्य। ऐसी पंचकल्याणी प्रजा वैदिक शब्दों से प्रसिद्ध थी, अब तो अठरा पगगड बन रही है।

उन जन्म लेने की इच्छा करने वालों की इच्छा की पूर्ति के हेतु सूर्य चन्द्र और भूमि को बनाया तथा पृथिवी पर मानवसृष्टि रची, उस मानव जाति में उपरोक्त जन्मेच्छुक आत्माओं को जन्म दिया तब ही उनकी इच्छा पूर्ण हुई यह अनुक्रम प्रतीत होता है।

**ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव**
**विश्वस्यकर्त्ता भुवनस्य गोप्ता।**

उस अमैथुनी पितर सृष्टि के मैथुन से प्रथम देव सृष्टि में ब्रह्मा उत्पन्न हुआ था। जो विश्वस्यकर्त्ता अर्थात् विश्वकर्मा अतः समर्थ्यात् वह भुवनस्य गोप्ता रक्षक: संबभूव वह विश्वकर्मा था तभी वह उत्पन्न जगत् का गोप्ता रक्षण करने वाला बना था। इति॥

अब भी जिस माता की कूख से ब्रह्मा उत्पन्न हुआ था वह अंगिरिसी थी और पिता अथर्ववेद का प्रवक्ता आंगिरा ऋषि था, उनकी सन्तान रथकार खाती, लोहार, सुनार वा बढ़ई नामों से भारत में विद्यमान् हैं। सो मर कर अपने लोक में अपन्हत गति से जाते और आते हैं।

देव लोगों के साथ २ मतेष्य सृष्टि अर्थात् मैथुनी प्रजा उन जीवात्माओं की है जो प्रलय रात्री की प्रगाढ़ प्रकृति देवी की प्रसुप्त इव सर्वतः प्रख्यात रही है, इन भाईयों का निर्वाह उक्त शिल्प-निपुण अग्रजा ब्राह्मणों के वेद के शब्द-अर्थ-सम्बन्ध के कर्मों द्वारा हो रहा है। इनका जन्म अल्पमति में

होता और शास्त्रों को पढ़ के बुद्धिमान् बनते हैं। वेदों को पढ़ने पर उनको धी की उपलब्धि हो जाती है। तप, त्याग, योग, जपादि से—

**स्वाध्यायैर्जपैर्होमैस्त्रैविद्यया इज्यया सुतैः। महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥** इस प्रमाणानुसार द्विजों को ब्राह्मणपद प्राप्त हो जाता है। यह अति संक्षेप से यहां पितृयाण और देवयान इन सृति का परिचय कराया है। उसका स्पष्टीकरण निम्न जाने।

आत्मा जो नीचे से ऊपर को जाता है वह त्यागता हुआ जाता हैं। पर अल्पमति से बुद्धि, बुद्धि से धी, मनन कर्म और ज्ञान को प्राप्त होता हुआ मेधा में से ऋतम्भरा और उससे मायातीत होकर प्रज्ञा को प्राप्त होता है। परन्तु शरीर चरितार्थ चलाने के लिये पितृश्राद्ध तर्पण करना आवश्यक कर्म वेद ने बताये हैं वे न करने से देव असुर राक्षसता को प्राप्त हो जाते हैं। इति।

ये ही सप्त समिधः कृतः। सप्त परिधः। उन्हीं के २१ प्रकार सत्-रजः-तमः कृत भेदों से बनते हैं जिस व्यवस्था में सब मनुष्यों के रूप भरण पोषण कर रहे हैं। पितर लोग जन्म से सुमति धी ज्ञान कर्म च मेधा से माया, उमा से प्रज्ञा को प्राप्त होते हैं वह प्रय-रयिवानों का मार्ग है जिसमें भोग ऐश्वर्य का भोग करके मोक्ष को जाना है। इति।

---

[शेष पृष्ठ ११ का]

सभा प्रजा के आधीन और प्रजा राज सभा के आधीन रहे।" यह परस्परावलम्बन ही प्रजातन्त्रात्मक शासन का मूल केन्द्र है और मूल केन्द्र की सुरक्षा तभी सम्भव हो सकती है जब कि न्याय दण्ड उचित रूपेण व्यवहृत होता है अन्यथा नहीं। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा हैं "जो दण्ड है वही पुरुष राजा, वही न्याय का प्रचार कर्त्ता और सबका शासनकर्त्ता वही चार वर्ण और चार आश्रमों के धर्म का प्रतिभू अर्थात् ज़ामिन है।"

---

# मनुज-मनुज से प्यार कर ले

**लेखक:—आनन्द प्रकाश सचदेव "आनन्द"**

[आज मानव पत्थरों को पूजता-पूजता स्वत: भी पत्थर समान हो गया है। प्रेम का स्थान घृणा ने, अहिंसा का हिंसा ने और सत्य का स्थान असत्य ने ले लिया है और मानव प्रेम के सुखद पथ से दूर भ्रम के पथ पर जा खड़ा हुआ है और अपने अस्तित्व को भूल रहा है।]

आज मुझको यही कहना है, मनुज सुन ध्यान देकर
तू मनुज है आज मानव को हृदय से प्यार कर ले

आज मानव प्यार करता पत्थरों से
है बडों को पूजता चेतन करों से
सत्य को इक ओर रख क्या खोजता है
भ्रम की दीवार पीछे तू खड़ा क्या सोचता है

छोड़ भ्रम को आज तू भी सत्य का दीदार कर ले
छोड़ जड़ को आज तू भी चेतनों से प्यार कर ले

आज हिंसक तुम बने हो बढ़ रहे सबको कुचलते
क्या कभी देखे हैं तुमने घोर आँसू के निकलते
तेरे ही भाई बिलखते दाने दाने के लिये हैं
हाँ! तेरे खातिर उन्होंने खून के आँसू पिये हैं

छोड़ दे यह चाल मानव प्रेम पथ स्वीकार कर ले
सत्य का इतिहास पाने हेतु सबको प्यार कर ले

ज्ञान की गरिमा सजा कर क्यूँ खुशी से तुम न फूलो
आज सब कुछ साथ ले लो एक सच फिर भी न भूलो
एक दीपक की अगन से दूसरा है दीप जलता
ज्ञानपति से ज्ञान लेकर ज्योतिर्मय हो जीव चलता

पाना है "आनन्द" कुछ, तो प्रेम का संचार कर ले
और शुचिता दीप लेकर, मनुज से तू प्यार कर ले

# आर्य समाज के इतिहास का एक पृष्ठ

★ श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

सेठ रग्घूमलजी अपने समय के प्रसिद्ध दानी थे। आर्यसमाज में उनकी श्रद्धा कैसे उत्पन्न हुई, इसका भी एक छोटा-सा इतिहास है। जो सेठजी ने स्वयं मुझे (श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति) सुनाया था—

यह तो आपने देखा ही है कि दिल्ली में मेरी दुकान चावड़ी बाजार में है, उससे आर्यसमाज मन्दिर बहुत समीप है। मैं कभी-कभी आर्य समाज के साप्ताहिक अधिवेशनों में अपने मित्रों के साथ चला जाया करता था। एक दिन सुना कि गुरुकुल काँगड़ी के संस्थापक महात्मा मुँशीरामजी का उपदेश होगा। मैं साप्ताहिक सत्संग में चला गया। महात्माजी ने सदाचार की व्याख्या करते हुए इस बात पर बहुत खेद प्रकट किया कि जिस बाजार में आर्यसमाज मन्दिर है उसी में वेश्याओं का अड्डा है। शहर भर की प्रसिद्ध वेश्यायें चावड़ी बाजार में रहती हैं, जिस कारण यह बाजार दुराचार का गढ़ बना हुआ है। जिन चौबारों में वेश्यायें रहती हैं, वे सब व्यापारियों की जायदाद के हिस्से हैं। "यह निश्चय है कि पाप की कमाई कभी सफल नहीं हो सकती। जो व्यापारी वेश्याओं को मकान किराये देकर धन कमाते हैं उनका अपना जीवन बिगड़ता ही है, उनकी सन्तानें भी अच्छे चरित्र वाली नहीं रह सकतीं और चरित्रहीन के पास सम्पति कैसे बच सकती है। मैं देखता हूं कि यहां कई ऐसे व्यापारी बैठे हुए हैं जिनकी जायदाद में वेश्यायें बसी हुई हैं। मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूं कि वे अपनी जायदाद में से वेश्याओं को निकाल दें तो उनकी आय बढ़ेगी, घटेगी नहीं। मेरे कहने से वे यह परीक्षा कर देख लें।

सेठजी ने कहा—मैं समाज से

[शेष पृष्ठ २१ पर ]

# हिन्दी काव्य में नारी भावना

★ शील रस्तोगी 'विदुषी'
सी० शास्त्री स्याना बुलन्दशहर

[ नवम्बर मास का शेषांश ]

ही हैं। नारियाँ उसी प्रकार दृढ़-चरित्र, रण में लड़ने के लिये उत्तेजित करना तथा अपने कर्त्तव्यों पर दृढ़ रहना इत्यादि गुण पूर्ण रूपेण विद्यमान हैं, उस समय की स्त्रियाँ अपने पतियों को किस प्रकार कर्त्तव्य-दृढ़ता का आदेश देकर उन्हें उत्साहित करती हैं, इसका दिग्दर्शन हम निम्न दो पंक्तियों में ही कर सकते हैं।

**"पाछा फिर आव्यों, पग मत दीज्योहार। कट मर जाज्यो खेत में, पर मत भाज्योहार॥**

पति के मरने पर वह साधारण स्त्रियों की भांति रोने नहीं बैठतीं बल्कि वे कह उठती हैं।

**भल्ला हुवा हुवा जु मारिया वहिणी महाराकतु । लज्जेऊँ तु क्यारी अहु, जई मग्गा घरु एन्तु॥**

अर्थात् हे सखी यह बहुत ही अच्छा हुआ जो मेरा पति युद्ध में मारा गया। यदि कहीं भाग कर जान बचा कर घर आता तो आपके सामने मुझे लज्जित होना पड़ता, यह कह कर वह पति के साथ जीवित जल कर पतिव्रत धर्म का परिचय देती है।

इसी प्रकार भक्ति काल में भी नारी की महत्ता को स्वीकार किया है। इस काल के कबीर नारी को अधिक महत्त्व नहीं देते उन्होंने एक दोहे में लिखा है।

**"नारी तो हम भी करी, पाया नहीं विचार। जब जानी,तब पर हरो, नारी बड़ा विकार॥"**

इस प्रकार नारी को ईश्वर की प्राप्ति में एक बड़ा विकार समझते हैं। परन्तु जायसी तथा

अन्य सूफी कवियों ने नारी को अपने सिद्धान्तों के प्रचार का माध्यम बनाया, इनमें सामन्य लौकिक प्रेम द्वारा आध्यात्मिक प्रेम का सन्देश है। जायसी ने नारी का रति या प्रेम भाव दिखाने के साथ साथ स्वामिभक्ति, पतिव्रत तथा छोटे-छोटे भावों का बड़ी विशदता के साथ वर्णन किया है। सूर ने भी गोपिकाओं का वर्णन पत्नी व पति प्रेम की भांति किया है। तथापि वे कृत्रिमता को प्राप्त नहीं हुए। लेकिन तुलसी पर बहुत से मनुष्य यह आरोप लगाते हैं कि वे नारी को तुच्छ समझते हैं। परन्तु यह ज्ञात होना चाहिये, कि तुलसोदास ने केवल उच्छृङ्खल स्त्रियों की ही निन्दा की है जो उन जैसे मर्यादावादी के उपयुक्त ही है। उन्होंने ऐसा "जिमि स्वतन्त्र होइ बिगरहिं नारी" केवल असत् वृत्तियों की स्त्रियों को ही कहा है। हम यह भी दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि ऐसा महात्मा जो सीता को, जगत जननी के रूप में अंकित कर सकता है, वह कभी स्त्रियों की निन्दा नहीं कर सकता। उन्होंने स्त्रियों की निन्दा विरक्ति पथ में बाधक होने के ही कारण की है। प्राय: मनुष्य स्त्रियों के स्तर को समझने के लिये तुलसीदास जी के इस कथन को अपनाते हैं।

**"ढोल गँवार, शूद्र पशु नारी।**
**ये सब ताडन के अधिकारी"॥**

सिद्धान्त: ये शब्द उनके स्वयं के नहीं, वरन् वे अन्य पात्रों द्वारा कहे गये हैं। यह युक्ति समुद्र द्वारा दीनता के लिये कही गई है।

इसके अतिरिक्त रीतिकाल में नारी को एक विलासिता की वस्तु माना है। यद्यपि प्रेम-गाथाएँ तो सूफी सन्तों द्वारा भी कही गई थीं। तथापि यह काल अधिक विलासिता का समय माना जाता है। राजदर्बारों में वेश्याएँ रहा करती थीं, चारण व भाट आदि शृङ्गारिक कवितायें लिखा करते थे। इस प्रकार ये अपनी जीविका का उपार्जन करते थे। केशव, भूषण, बिहारी, देव आदि ऐसे ही कवि थे। इस काल में नारी को केवल विलासिता की वस्तु ही माना है इसके विभिन्न प्रकार से वर्णन किये हैं। अनेकों कल्पनायें व उपमायें उपस्थित की गईं। बिहारी ने प्रिय के साथ खेलना, विनोद करना, चुभती बात

करना, चिढ़ाना आदि प्रसंग लेकर उसमें अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। इसके कुछ निम्न उदाहरण हैं :—

पहले दोहे में नायिका अपने आँगन में नायिक के पतंग की छाया पकड़ने दौड़ती दिखाई गई है तथा दूसरे में मुरली को छिपाने वाली नायिका का कृष्ण को छकाना दिखाया है।

**उड़ति गुड़ी लखि ललन की,**
**अंगना अंगना माहि ।**
**पीरी लौं दौरी फिरत,**
**छुवति छबीली छांहि ॥**
**बतरस लालच लाल की,**
**मुरली धरी लुकाय ।**
**सोहें करें, भोहें हँसें,**
**देन कहै नटि जाय ॥**

इसके अतिरिक्त इस काल में जितने भी कवियों ने रचनाएं लिखीं उन सब में नारी को भोग-विलास की वस्तु माना है।

इसके बाद काव्य में आधुनिक काल आता है। इसी समय भारत में स्वतन्त्रता की चेतना उत्पन्न हो गई थी, मुगलों के विलासी शासन नष्ट प्रायः हो गये थे। प्राचीन संस्कृति के सिद्धान्तों के आधार पर नव जाग्रति उत्पन्न होने लगी थी। इस जाग्रति का उत्पन्न करने के लिये यह नितान्त आवश्यक था कि शृङ्गारिता व विलासता को छोड़कर सामाजिक बुराइयों को दूर करे। सबको संगठित करना एक आधार मूल था। अतः कवियों ने अपने भारत की प्राचीन संस्कृति को जगाने के लिये नारी को समान अधिकार दिये। प्रचलित प्रथाओं की कटु आलोचना करने लगे, इस काल में मैथिलीशरण गुप्त, निराला, महादेवी वर्मा इत्यादि ऐसे कवि हुए जिन्होंने नारियों में एक-नव चेतना संचार की। प्रसाद की नारी के प्रति भावना को भी हम निम्न पंक्तियों में देख सकते हैं।

**नारी तुम केवल श्रद्धा हो,**
**विश्वास रजत नव पगतल में।**
**मानस पीयूष बहा सी करो,**
**जीवन के सुन्दर समतल में ॥**

इसके अतिरिक्त प्रसाद ने नारी की प्रतिष्ठा कामायनी में भी दिखाई है श्रद्धा मनु को कर्तव्योपदेश देते हुये कहती है।

**तुम भूल गये क्या इस जीवन में,**
**कुछ सत्ता है नारी की।**

इस प्रकार कामायनी में नारित्व

समता कूट २ कर भरी है। गुप्त जी ने भी नारी के प्रति उच्च भावों का दिग्दर्शन कराया है, वास्त में गुप्तजी ने नारी को गृहक्षेत्र में ही महान् माना है उन्होंने काव्यों को लिखकर यह शिक्षा प्रदान की है कि किस प्रकार नारी को अपने पतिव्रत धर्म वात्सल्य, स्वाभिमान, आदर्श आर्य वधू तथा आदर्श आर्य माता के गुणों को स्थिर रख सके। इन सबका संकेत हमें यशोधरा नामक पुस्तक में मिल जायेगा जो १९३३ या ३६ ई० के लगभग लिखी गई। इसके साथ २ महादेवी वर्मा ने तो नारियों के प्रति एक महान् सेवा समर्पित की है। जिससे कि अवनत पथ-गामी स्त्रियाँ पुनः भारत में वह स्थान प्राप्त कर सकें जैसा कि प्राचीन भारत में इनका महत्व समझा जाता था।

इस प्रकार हम देखते है कि काव्य के मध्यकाल में जो नारियों की अवनति हुई उसका मुख्य कारण विदेशी राज्य का होना ही हुआ। अब सौभाग्य से भारत एक वही प्रजातन्त्र राज्य है जैसा कि वेदों के काल में पाया जाता था। वैदिक काल में यद्यपि छोटे २ राज्य ही थे परन्तु सभी का प्रबन्ध प्रजातन्त्रात्मक रूप से ही होता था। वर्तमान सरकार ने भी स्त्रियों को पुरुषों की तरह समान अधिकार प्राप्त कराये हैं यद्यपि समाज में अभी कुछ नारियों के प्रति तुच्छ भावनाएँ हैं तो भी ये शनैः २ लुप्त हो जाएँगी और एक दिन ऐसा चमकेगा जब कि नारी के प्रति ऐसी सद्भावनायें उत्पन्न होंगी जैसी कि प्राचीन काल में।

---

[शेष पृष्ठ १७ का]

उठकर सीधा दुकान पर गया और न केवल अपनी जायदाद में रहने वाली वेश्याओं को एक महीने का नोटिस दे दिया अपितु दुकान की बही में लिख दिया कि इस पीढ़ी की कोई जायदाद कभी किसी वेश्या को किराये पर नहीं दी जाये।

मेरे इस कार्य का मुझ पर मेरी दुकान पर और सम्पूर्ण व्यापार पर अद्भुत असर पड़ा। मुझे मालूम नहीं उसके बाद मुझ पर धन की वृष्टि कहाँ से हो गई। हजारों से लाखों और लाखों को करोड़ों में बदलते देर न लगी।

---

# ईश्वर-विश्वास से लाभ

★ प्रोफ़ेसर विष्णुदयाल एम० ए०, मारीशस

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर को अचानक नोबेल पुरस्कार मिला। जो समालोचक छिद्रान्वेषण करते कभी नहीं अघाते थे वे भी रेल गाड़ी से बोलपुर पहुँचे और कवि-सम्राट की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

भौतिकवादियों ने एक ईश्वर-भक्त को पुरस्कृत किया था। पश्चिम ने पूर्व के ईश्वर-विश्वास की सराहना की थी।

यद्यपि गुरुदेव के गीति-काव्य के सामने अन्य आधुनिक कवियों की कृतियाँ नगण्य हैं एक मात्र काव्य की भाषा के कारण वे पुरस्कृत नहीं हुये।

उनके विचारों ने पश्चिम को सजग किया। बहुत दिनों से पश्चिमीय लांछित करके सुनाते रहे कि भारत में कर्मण्य बनने की शिक्षा नहीं दी जाती।

"गीतांजलि" में कवि सम्राट ने स्पष्ट लिखा था :—

"जहाँ अनर्थक उद्यम पूर्णता के आलिंगन के लिये ही भुजाएँ पसारता है।

प्रभु उस दिव्य स्वतन्त्रता के प्रकाश में मेरा देश जाग्रत हो।"

इन पंक्तियों को पढ़कर पाठक कहता है यही तो मानव की अभिलाषा है।

पाश्चात्यों को अवगत हुआ कि कर्मण्य बन कर के ही सच्चे भारतीय ईश्वर के पास जाने की तैयारियाँ करते हैं। जो लोग अकर्मण्य बन कर समाज को कलंकित करते हैं उनकी स्तुति नहीं होती।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है कि गाते-गाते मैं इतना आनन्द विभोर होता हूँ कि हे नाथ मैं अपने को भूल जाता हूँ और तुझे स्वामी न कहकर मित्र कहने लग जाता हूँ।

"गीतांजलि" में कौन ऐसा गीत होगा जिस में ईश्वर का स्पष्ट या अस्पष्ट उल्लेख न हो? कर्मण्य जन ईश्वर भक्त हैं वे कार्यरत हैं क्योंकि

वे अपने धर्म का पालन करते हैं। मान हुआ तो धर्म विषयक ग्रन्थ का हुआ। इस ग्रन्थ के अंगरेजी अनुवाद ने ठाकुर को नोबल पुरस्कार का प्राप्तकर्ता बनाया।

पश्चिमीय अपने धर्म से व्याकुल हो उठे और उन्होंने धर्म और ईश्वर से मानव जीवन को रिक्त करने का भयंकर निर्णय किया।

ईश्वर विश्वास मनुष्य जीवन को नन्दनवन बनाता है। मनुष्य कहलाने का अधिकार उसी को प्राप्त होना चाहिए जो अनुचित लाभ उठाने का अवसर आते देखकर मन में विकार आने नहीं देता और पदच्युत नहीं होता।

हम प्रवासियों को वेद शास्त्र का अध्ययन करने की प्रबल इच्छा हो तो हम भारतीय पुस्तक विक्रेता के पास मनिआर्डर भेजते हैं। यदि वे महानुभाव हमें अपने स्टाक में से सब से सुन्दर ग्रन्थ निकाल कर अतिशीघ्र भेजें तो हम यहाँ अनुगृहित होंगे परन्तु हमें दूर में पड़े प्रवासी समझ कर वे फटे-पुराने ग्रन्थ भेजने लग जायें और वह भी ६ मास के पश्चात् तो हम यही समझेंगे कि हमें 'अनुपस्थित' मित्र समझ कर ही वे हमारी उपेक्षा करते हैं, वे उस दशा में सुसंस्कृत जन अपने को बता न पायेंगे।

नास्तिकों ने ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं किया तो इसी कारण से नहीं किया कि वे उनकी भाषा में 'अनुपस्थित' रहते हैं।

रवीन्द्रनाथ के लिए वे अनुपस्थित नहीं होते। वे देख सकने वाले से सीखते हैं कि जो अनुपस्थित है वह उपस्थित से भी अधिक हमारी सेवा के अधिकारी हैं।

अनुपस्थित को उपस्थित करने के लिये अथक परिश्रम किया जाता है, वृक्ष कई वर्षों से यथासमय पुष्पित होता है, उसके फूल फल होते हैं आंधियों का सामना करके वह अपना मस्तक गर्व से ऊँचा रखता है, उसे इतना बल कहाँ से मिलता? जो मेहनत करके उसके इर्द-गिर्द पड़ी जमीन को गोड़े। उसे ज्ञात होगा कि वृक्ष की जड़ें जमीन में दूर तक चली गई हैं। वृक्ष का सुदृढ़ आधार उसका मूल है। इसी तरह संसार का सुदृढ़ आधार ईश्वर है जिसे पाने के लिए परिश्रम करना पड़ता है।

जो आज अनुपस्थित है वह कल

उपस्थित था। गाँधी जी की विद्यमानता में तब तक सन्देह नहीं हो सकता जब तक कि भारत स्वतन्त्र रहता है। ऋषि दयानन्द के किसी युग में उपस्थित हुए होने का प्रमाण यह है कि जन-जन में वेदों के गूढ़ रहस्य को समझने की लालसा रहती है। हम इस पीढ़ी के हैं, हम ने उनके दर्शन नहीं किये। जो उनकी पीढ़ी के थे उन्हें उनके दर्शन सुलभ थे। इसी भाँति जो परिश्रमी हैं, जिसे उद्देश्य की सत्ता के प्रमाण मिल गये, वे हमें सुनाते हैं कि ईश्वर वर्तमान हैं। द्रष्टाओं को वे सुविधा प्राप्त है जिससे अन्य लोग वंचित हैं।

संसार के जिस भी भूखण्ड में मनुष्य-मनुष्य के प्रति न्याय करता है वहां ईश्वर विद्यमान है। साम्राज्यवाद इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है कि नास्तिकता ने मानव का स्तर गिरा दिया। साम्राज्यवाद अपने आधीन आये हुए को अपने से निकृष्ट मान कर वहाँ उसके साथ अमानुषिक व्यवहार करता है।

साम्राज्यवाद बाधक सिद्ध हुआ क्योंकि उसने कभी नहीं माना कि कोई शक्ति है जो सब को अपनी छत्र-छाया में लाती है, कोई ज्योति है जो सब को अपने आलोक से आलोकित करती है। ईश्वर पूजक मानते आये हैं कि ईश्वर सब लोगों का पिता है जिसके प्रति हृदय में पूरी भक्ति होनी चाहिए। ऋग्वेद के एक मन्त्र ने इस विचार को सम्यक् रूपेण पेश किया है वह इस प्रकार है—

**तइद्देवानां सधमाद आसन्नृतावान: कवय: पूर्व्यास:।**
**गूळहं ज्योति: पितरो अन्वविन्दन्त्सत्यमन्त्रा अजनयन्नुषासम्॥**

वे ही देवताओं से मिलकर आनन्द उपलब्ध करने वाले हैं जो ऋतावान: अर्थात् सत्य के अनुसार आचरण करते हैं, तत्वदर्शी विद्वान् हैं। सर्व गुणों में सबको सत्यानुकूल चलने का परामर्श देने वाले पिता जैसे बन कर छिपी हुई परमात्मरूपी ज्योति को प्राप्त कर लेते हैं और इस प्रकार जगत् में आध्यात्मिक उष: काल को प्रकट कर देते हैं।

पिता अपने पुत्र-पुत्रियों में भेद नहीं करता। पिता की जो भावना होती है उससे साम्राज्यवादी शून्य हैं। न वह सत्य का आश्रय लेता है और न ही ज्ञानी है। वह अपने को पूर्ण बना ही नहीं सकता। अपूर्ण

रहकर वह जगत् में द्वेषाग्नि प्रज्वलित कर रहा है।

साम्राज्यवादी तो उस नास्तिक से भी गया गुजरा है जो 'अनुपस्थित' की सत्ता को मानने के लिए तैयार नहीं होता। अनुपस्थित के साथ अन्याय करने के आदी उपस्थित के साथ भी अन्याय करने लगते हैं।

उन्हें आस्तिकों की ओर दृष्टिक्षेप कर देखना चाहिए था, जो कृतज्ञता से पूर्ण हैं और जिन के एक-एक कृत्य और विचार से यह ज्ञात होता है कि उनमें ईश्वर विश्वास का अभाव नहीं है।

पुनर्जन्म के सिद्धान्त का प्रचलन करके आर्यों ने मनुष्य को स्खलित होने से बचाया है। हम मर-मर के फिर जन्मेंगे, यह सुनकर हमारे देश वाले नाक भौं चढ़ाते हैं ताकि वे कट्टरपंथी न बताये जाएँ। पर यह ऐसा उन्नत विचार है जिसे स्वीकार करके हम वास्तविक दृष्टिकोण को अपनाते हैं।

ईश्वर से घृणा हुई तो कारण यह था कि पढ़ लिखकर, शिक्षित हो कर लोग पूछने लगे कि अगर ईश्वर है उसे क्या न्यायकारी नहीं होना चाहिए? उसने एक घर में एक माँ-बाप के दो प्रकार के बच्चे होने कैसे दिये? एक लड़का अंधा कैसे हो गया है जब दूसरे के दोनों नेत्र हैं, एक दूसरे से विभिन्न क्यों है जब दूसरा पहले का सहोदर भाई है? आर्यों ने ठीक समझाया कि पूर्व जन्म का फल भोगते हुए हम इस जीवन को व्यतीत कर रहे हैं।

भिन्न प्रकार के शिशुओं को एक घर में पाकर हम सोचने लगते हैं कि एक न्यायकारी ईश्वर ने न्याय करके इन्हें इस रूप में यहाँ भेजा भाइयों में न जलन होती, न घृणा। इस सत्य को मानकर हम जीवन में जो मनोमालिन्य, द्वेष आता है उसे सहज में दूर कर छोड़ते हैं।

इसके तो हमें प्रमाण भी मिलते हैं कि हम एक लम्बी यात्रा करते जा रहे हैं। हम कभी रंक थे तो आज राजकुमार बन गए हैं। पूर्व जन्म को याद कर के कई लोगों ने बता दिया कि पूनर्जन्म सचमुच होता है।

आर्य एक सत्य को मानते हैं तो वे उसकी सच्चाई अपने आचरण से दर्शा भी दिया करते हैं। आर्यों ने द्वेष फैलाया नहीं, वे सदा परितुष्ट रहे। एक पुनर्जन्म के सिद्धान्त में

विश्वास करके उन्होंने ईश्वर का विद्यमान होना सिद्ध कर दिया। उन्होंने साम्राज्य विस्तार नहीं किया। विश्व शान्ति के सच्चे प्रचारक ये ही हो सकते हैं—

इन्होंने प्रेम को फैलाया। ईश्वर को इन्होंने प्रेम की मूर्ति के रूप में देखा। सन्त विनोबा ने लिखा है— 'जब प्रसन्न परमेश्वर कर्म की पीठ पर प्रेम की थपकी लगाता है, तो वहाँ सौन्दर्य उत्पन्न हो जाता है।'

आर्यों ने विश्व को सुन्दर बना कर छोड़ा है। वेद में हमें वह आदेश मिलता है जिस पर ध्यान देने से प्रेम का अखण्ड राज्य स्थापित हो सकता है—

**'सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं**
**कृणोमि वः।**
**अन्यो अन्यमभि हर्यत**
**वत्सं जातमिवाघ्न्या'॥**

(अथर्व० ३। ३०।१)

(भगवान कहता है)—सहृदयता उत्तम मन का भाव, निर्वैरता तुम्हारे लिए करता हूँ। एक दूसरे के ऊपर ऐसी प्रीति करो, जैसी नवीन उत्पन्न बछड़े के ऊपर गौ प्रेम करती है।'

परमात्मा की यह आज्ञा साम्राज्यवादियों को स्वीकार्य नहीं। जिस धर्म को वे ठौर-ठौर पर लोगों पर थोपते हैं, वह मानव के मध्य प्रेम का नाता जोड़ता नहीं है। पादरी शासक, सम्पन्न लोगों का साथ देते हैं, जंगी जहाजों का 'पवित्रीकरण' करते हैं। जहाँ वे पहुंचे वर्णभेद का बखेड़ा खड़ा हुआ। उन्हें कभी-कभी वर्णभेद की नीति की निन्दा करनी पड़ी तो भारत के महात्मा के प्रभाव को मानकर ही। दक्षिण अफरीका में दो पादरियों ने इस नीति को स्वीकार नहीं किया है क्योंकि वह वही देश है जहाँ परम भक्त गाँधी ने बीस साल प्रवासियों के मध्य कार्य किया था। उन्होंने अपनी छाप अप्रवासियों तक पर छोड़ी।

भारत में साम्राज्यवाद के गीत गाने वाले पादरियों ने मानवोचित व्यवहार नहीं किया। उन्होंने किसी को दवाई दी, किसी को कुछ पैसे दिए तो बदले में उन्होंने चाहा कि उपकृत बन ईसाई बन जाय। यह व्यवहार उस आदमी के व्यवहार के समान है जो अनुपस्थित मित्र को धोखा देता है। इस व्यवहार से

नास्तिकता की गंध आती है। दान उनको दिया जाता है जिससे बदले में कुछ प्राप्त करने की आशा न हो। (गीता १७। २०)

पादरी का सामना करना पड़ता है तो उनके उत्थान के लिए ही ऐसा करने को हम बाध्य हैं। उनके चेलों ने मनुष्य के पतन का ज्वलन्त उदाहरण बार-बार भारत में दिया। जब-जब वे भारतीयों को दुतकारते थे व्यथित लोग मन ही मन ऋग्वेद के शब्दों में कह उठते थे 'मा नो दुःशंस ईशत' इस मूक वाणी को परमात्मा ने आखिर सुन लिया और भारत स्वतन्त्र हुआ। दुतकारने वाले का ईश्वर विश्वास दिखावा मात्र होता है। संसार के बड़े-बड़े देशों में अब पादरियों की आवश्यकता नहीं पड़ती उनका अब बहिष्कार हो रहा है। आस्तिक और नास्तिक दोनों को मानव का व्यवहार देखना पड़ता है। पादरी आस्तिक हैं तो सही पर उनका आचरण उन लोगों के आचरण से मिलता जुलता है जो नास्तिक होने के कारण अनुचित लाभ उठाने पर तुले हैं। वे मनुष्य से मनुष्यतापूर्वक कार्य लेना नहीं चाहते।

यदि भारत में साम्राज्यवाद से लोहा लेकर कुछ भाई नास्तिकता में सब प्रकार के गुण नहीं देखते, तो पादरियों को अपने दुर्व्यवहार को त्यागना पड़ता। संघर्ष में लगे हुए सेनानियों ने अधूरा संघर्ष किया उनमें वह बल न आया जो परम आस्तिकों में पाया जाता है। काश कि ऋषि-मुनि के वंशज होकर वे समझ पाते कि ईश्वर विश्वास विनाशक नहीं, प्रत्युत फलदायक होता है। दूसरों की देखा देखी आचरण करने वाले मौलिक विचार नहीं रखते। सर विल्यम टैम्पल ने कहा है—

"ऐसा व्यक्ति जो केवल अन्यों के चित्रों के आधार पर चित्र बनाता है कभी चित्रकार या कलाकार नहीं बन सकता।"

---

## अहिंसा द्वारा सुख प्राप्ति

**यो बन्धनबधक्लेशान्,**
**प्राणिनां न चिकीर्षति।**
**स सर्वस्य हितप्रेप्सुः,**
**सुखमत्यन्तमश्नुते ॥**

जो मनुष्य सब जीवों का हित चाहता है और किसी जीव को बन्धन में रखने, मारने अथवा किसी प्रकार का कष्ट पहुँचाने की इच्छा नहीं करता, उसे सब प्रकार के श्रेष्ठ सुख उपलब्ध होते हैं।

# खजूर

★ कविराज माधव प्रसाद शास्त्री

शीत काल में सम्पन्न व्यक्ति तो बादाम, काजू एवं दाख आदि कीमती मेवों का उपयोग कर स्वास्थ्य लाभ करते हैं, किन्तु साधारण जनता के लिए खजूर एक उत्तम खाद्य और पौष्टिक रसायन है। उपयोगिता की दृष्टि से यह अमीर एवं गरीब सभी के लिए समान रूप से हितकारी है। सुस्वादुता, पचनीयता तथा सस्तेपन के अलावा सर्वत्र प्राप्त इस फल की उपयोगिता का पहचान लिया जाय तो कई बीमारियों से छुटकारा पाने के साथ ही शरीर को शीघ्र ही स्वस्थ व कार्यक्षम बनाया जा सकता है।

इसके वृक्ष भारतवर्ष में विशेषत: रेगिस्तान प्रदेश में पाये जाते हैं। दक्षिणी पंजाब तथा सिन्ध में यह पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होता है। पश्चिमी एशिया, अफ्रीका, स्पेन, इटली, यूनान, सिसली आदि स्थानों में यह बहुतायत से पैदा होता है। इसका वृक्ष नारियल के वृक्ष के समान लम्बा, किन्तु छोटा होता है। पत्ते छोटे २ होते हैं। फल पकने पर थोड़े लाल या बादामी रङ्ग के मीठे होते हैं। खजूर के वृक्ष की चर्चा करते हुऐ तभी तो कवि ने ठीक ही कहा है—

साईं का घर दूर है, जैसे लम्बी खजूर।<br>चढे तो चाखे प्रेम रस, पड़े तो चकनाचूर॥

•

खजूर का गुड़—बंगाल के यशोहर आदि कई स्थानों में खजूर की अच्छी उपज की जाती है। वहाँ के लोग खजूर से गुड़ और चीनी बनाते हैं जिसका निर्यात विभिन्न देशों को किया जाता है। इससे सेंधी नामक एक मादक पेय भी बनाया जाता है जिससे थोड़े खर्च में ही चीनी बन सकती है। इसके रस को खजूरी भी

कहते हैं, जिसे सड़ाने से अम्लत्व और मद्य तैयार होता है। इसको भपके में खींच कर उत्तम मद्य बनाते हैं। यह मद्य दीपक, पाचक, और उत्तेजक होता है। विदेशी मद्य से यह मद्य विशेष गुण दायक माना गया है। खजूर छुहरा या खराक एक ही वृक्ष की उपजातियाँ हैं।

आयुर्वेद के मतानुसार खजूर स्निग्ध, रुचिकर, हृदय के लिए हितकारी तथा उरःक्षत और क्षय (टी.बी.) को नष्ट करने वाली है। तर्पक होने के साथ ही यह रक्तपित नाशक भी है। पौष्टिकता विष्टम्भता तथा शुक्र प्रदायक है। कोष्ठस्थित वायु, वमन, मद, कफ, ज्वर, अतिसार, भूख, प्यास, कास, श्वास, मद, मूर्च्छा आदि सभी को यह नष्ट करती है, तभी तो भाव मिश्र ने कहा है—

**स्निग्धं रुचिकरं हृद्यं क्षतक्षयहरं गुरुः। तर्पणं रक्तपित्तघ्नं पुष्टिविष्टम्भ शुक्रदम् ॥ कोष्ठमारुत्हृद्बलयं वान्ति वातकफापहम्। ज्वरातिसारक्षुत्तृणा कासश्वासनिवारकं ॥ मदमूर्च्छा मरुत्पित्तमद्योद्भूत गदान्तकृत्। महतीभ्यां गुणैरल्पा स्वल्प खर्जूरिका स्मृता ॥**

पत्ते और फूल—यूनानी हकीमों के मत से खजूर के पत्त कामोद्दीपक और यकृत् के लिए लाभदायक होते हैं। इसके फूल कटु, विरेचक, कफ निस्सारक और यकृत् को पुष्ट करने वाले माने गये हैं। ज्वर तथा रक्त सम्बन्धी व्याधियोंमें इसका सेवन अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुआ है। इसका फल भी कामोद्दीपक और पौष्टिक होता है। खजूर गुर्दा और मूत्राशय को मजबूत बना कर रक्त-वर्धक भी है। लकवा फेफड़ों की बीमारी में इसका आश्चर्यजनक गुण सुप्रसिद्ध है। इसका गोंद अतिसार रोग की रामबाण दवा है।

आयुर्वेद ग्रन्थों के अनुसार खजूर का फल राजयक्ष्मा की व्याधि को मिटाने में प्रभावोत्पादक असर रखता है, क्योंकि राजयक्ष्मा (टी. बी.) में प्रधान रूप में कफ दुष्ट होकर फुपफुसों को आवृत कर उनमें विकृति उत्पन्न कर देता है। खजूर का गुण कफ निस्सारक होने के कारण ही इस रोग में प्रशस्त माना गया है। इसके सिवा यक्ष्मा रोगी दिनों-दिन कृश होता चला जाता है। खजूर सभी धातुओं को बढ़ाने वाली मानी गई है इस कारण भी इसका

उपयोग इस व्याधि में हितावह है। इसी हेतु से महर्षि चरक ने स्पष्ट कहा है—

**"मधुरं बृंहणं बल्यं**
**खर्जूरं गुरु शीतलम्।**
**क्षयेऽभिघाते दाहे च**
**वातपित्ते च तद्धितम्॥**

(च. सू. अ. २७)

यक्ष्मा ग्रस्त रोगितों को अन्य औषधियों के साथ १० खजूर का प्रयोग अवश्य करना चाहिये। कई चिकित्सकों ने तो अनुभव द्वारा यह ज्ञात किया हैं कि यक्ष्मा के रोगी को नियमित १ मास तक खजूर और दूध का इच्छित प्रयोग कराया जाय तो अवश्य लाभ हो जाता है।

प्रमेह रोग पर—आज के युग में स्वप्नदोष शुक्रपात या पौरुष शक्ति अभाव आदि विकार भी प्राय: लोगों में मिलते हैं। इस कारण उनके शरीर में ओज तथा तेज सर्वदा लुप्त ही रहता है। साँसारिक कार्यों से ऐसे व्यक्ति घृणा करने लग जाते हैं। लेखक के पास ऐसे अनेकों पत्र आते हैं जिनमें लिखा रहता है कि "यदि स्वप्नदोष आदि व्याधियों से हमारा छुटकारा नहीं हुआ तो आत्म हत्या का आश्रय ढूंढना पड़गा"। ऐसे महापुरुषों को विनाशकारी पथ का अनुसरण न कर निम्न प्रयोग का सेवन आज ही शुरु कर देना चाहिए। उन्हें इन व्याधियों से अवश्य छुटकारा मिल जायेगा।

पिण्ड खजूर, आंवले के बीज, पीपर, शिलाजीत, छोटी इलायची के दाने, मुलहटी सत, पाषाण भेद, सफेद चन्दन, खीरा ककड़ी का मगज और धनियां इन १० औषधियों को समान भाग लेकर सब के बराबर मिश्री मिला लेवें। पिण्ड खजूर और शिलाजीत को छोड़ शेष औषधियों का कपड़ छन चूर्ण करें। फिर पिण्ड खजूर को अलग कूटें। पश्चात् उसके साथ मिश्री चूर्ण और शिलाजीत मिला कर एक जीव बना लेवें।

मात्रा-६ माशे से १ तोला तक प्रात:काल गाय के दूध के साथ सेवन करें। बल, वीर्य और ओज के बढ़ाने में यह प्रयोग अद्वितीय है-(आयुर्वेद संग्रह) कैयट निदान में भी खजूर के शुक्र वर्धक गुण का वर्णन करते हुए लिखा है—

**खर्जूरिका वृक्षतोयं**
**मदत्तिकरं परम्।**

[शेष पृष्ठ ३२ पर]

# हमारे बच्चों का स्वास्थ्य

★ श्री कृष्ण गोपाल वाजपेयी वैद्य, ग्राविडरोड-हैदराबाद

यह निर्विवाद सिद्ध है जिनके माता पिता धर्मनिष्ठ तथा सदाचारी हों उन्हीं बच्चों का स्वास्थ्य ग्रच्छा रहता है। राज्य-व्यवस्था स्वास्थ्य संपन्न करने के लिये प्रत्येक प्रकार के साधन दें। पयः स्रावी गौवंशादि पशुग्रों की रक्षा राजकीय हो। ग्रायुर्येद चिकित्सकों को विशेषाधिकार दिये जायं क्योंकि ग्रायुर्वेद पद्धति ही इस देश के स्वास्थ्य निर्माण में श्रेष्ठ है।

ग्रतः यदि कोई राष्ट्र चाहे कि हमारे नागरिक बलिष्ठ एवं उत्साहसंपन्न हों, तो उसका प्रथम कर्तव्य होगा कि देश वासियों की समग्र सुचेष्टाग्रों को फूलने-फलने में सहायता दे। समाज को सच्चरित्र बनाने के लिए ऐसे २ ग्रंकुश रूपी विधान लागू करे जिससे समस्त नागरिक उन्नति मार्ग में ग्रग्रसर हों। सिनेमा घरों में ऐसे २ दृश्य दिखाये जायं जिससे नागरिकों के हृदय में सच्चरित्रता तथा भावपूर्ण विचारों के केन्द्र स्थल विस्फारित हों। विद्या मन्दिरों में ऐसी शिक्षा प्रदान की जाये जैसी वैदिक काल में थी। शिक्षित ग्रध्यापक समूहों को मनोवैज्ञानिक रूप से शिक्षा देकर ग्रध्यापन कार्य देवें।

खाद्य उत्तम जल-वायु का उत्पन्न हुग्रा हो। जैसा ग्रन्न होगा वैसा ही विचार तथा शारीरिक सृजन-शैली निर्मित होगी। ग्रवैधानिक बिकने वाले स्नेहों, डालडा वनस्पति ग्रादि पर ग्रंकुश लगाया जाये तभी हमारे देश तथा बच्चों का स्वास्थ्य ग्रच्छा रह सकता है।

साथ ही देश की पुरानी नागरिक गृह प्रणाली इतनी दूषित है जिसे सुधारना राज्य तथा समाज का मुख्य ध्येय होना चाहिये। यद्यपि ऐसे राजकीय नियम हैं जिनसे गृह निर्माण पद्धतियां सुधर सकती हैं लेकिन सुचारु रूप से कार्य नहीं हो रहा है। यह नगर पालिकाग्रों का कर्तव्य है कि प्रत्येक गाँव में कार्य कर्ताग्रों को भेजकर नागरिकों को स्वस्थ रहने के उपाय समझावें।

इसी प्रकार के आयुर्वेद उपदेशक हर एक गाँव में भेजकर दिनचर्य्या सम्बन्धी नियमों को बतलायें।

ऐसी पत्रिकायें प्रसारित की जावें जिसमें स्वास्थ्य सम्बन्धी वैज्ञानिक नियम, उत्तम लेखकों द्वारा लिखित हों। और लेखकों को पुरस्कार दिया जावे। जिन माताओं का स्वास्थ्य दूषित हो उन्हें उत्तम कृष्ण-वर्ण की गौवों तथा अन्य रंगों वाली गौवों का दूध पिलावें। बालक की प्रथमावस्था दूध पर ही है। बच्चों का क्रीडा स्थल समभूमि पर हो, बालकों के अंग-रक्षक सच्चरित्र तथा बालक के भावी जीवन को समझने वाले हों, चरित्रवान हों और आर्य संस्कृति के पूर्ण विज्ञ हों। परन्तु ऐसे अंग रक्षक बिना राजकीय व्यवस्था के नहीं बन सकते। सौम्य-बालिकाओं के लिये सौंदर्य पूर्ण धायों को नियुक्त करना चाहिए। धायें भी ऐसी हों जिनके सुन्दर २ बालक बालिकाय हों, कठोर हृदया धायें न हों।

तत्पश्चात् शिशु अंग रक्षक बालक-बालिकाओं को प्रभात काल में उत्तम मृदु वाहनियों पर शिशुओं को बैठाल कर भ्रमण करायें। इसी प्रकार सायंकाल भी। अत: अन्तिम यही कहना है यदि इसी प्रकार के नियम प्रत्येक नागरिक को समझाये जायें और देश वासी उसी रास्ते पर चलें तो देश तथा हमारे होनहार बालक बालिकाओं का स्वास्थ्य बढ़ सकता है।

---

[ शेष पृष्ठ ३० का ]

**वातश्लेष्म हरं रुच्यं**
**दीपनं बलशुक्रकृत् ॥**

बादाम की तरह इसमें पौष्टिकता तो है ही, रक्ताणु वृद्धि तथा अग्नि को तेज करने की शक्ति उससे भी बढ़कर है; अत: यह निश्चित है कि खजूर बादाम से कई गुणा बढ़कर स्वास्थ्य संरक्षक है।

रक्त बन्द करने के लिए—

साधारण सी चोट के लग जाने से जब रक्त स्राव बन्द न होता हो तो खजूर की गुठली का चूर्ण बना कर उसे लगाने से तत्काल ही आराम हो जाता है। विलायती टिंचर बेन्जोइन से यह कहीं अच्छी और सस्ती दवा है, मगर सरकारी अस्पतालों में इसका प्रयोग इस

[ शेष पृष्ठ २ पर ]

## महर्षि दयानन्द कृत पुस्तकें

| पुस्तक | मूल्य |
|---|---|
| सत्यार्थ प्रकाश | १२-०० |
| आत्म कथा | ०-४० |
| स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश | ०-१० |
| वेदान्तिध्वान्त निवारण | ०-१९ |
| वेद विरुद्ध मत खण्डन | ०-३७ |
| शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण | ०-३७ |
| आर्याभिविनय | ०-७५ |
| आर्योद्देश्यरत्नमाला | ०-१० |
| ऋग्वेद भाष्य का प्रथम सूक्त | ०-२५ |
| भ्रान्ति निवारण | ०-३७ |
| व्यवहारभानु | ०-२५ |
| भ्रमोच्छेदन | ०-२५ |
| गोकरुणानिधि | ०-२० |
| गृहस्थाश्रम | ०-६२ |
| काशी शास्त्रार्थ | ०-२० |
| सत्यधर्म विचार | ०-२५ |
| आर्यसमाज के नियमोपनियम | ०-१० |
| ईशोपनिषद | ०-२५ |
| बालशिक्षक | ०-३७ |
| यजुर्वेदमूल संहिता सजिल्द | २-५० |

## अन्य विद्वानों की पुस्तकें

| पुस्तक | मूल्य |
|---|---|
| ईश, केन, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरीब, तैतरीय, | ४-२५ |
| वैदिक सिद्धान्त व्याख्यान माला | २-०० |
| व्याख्यानमाला (अच्युतानन्द) | २-५० |
| अष्टाध्यायी प्रकाशिका | ८-०० |
| आर्य राजनीति के तत्त्व | ०-३० |
| दो सनातन सत्ताएँ | १-०० |
| बृहदारण्यक उपनिषद कथा | ३-०० |
| दर्शनान्द ग्रन्थ सँग्रह उत्तरार्द्ध | २-५० |
| वेद परिचय (वेदानन्द) | ०-३७ |
| दयानन्दा चित्रावली | २-५० |
| स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग | ३-०० |
| विवाह और विवाहित जीवन | २-५० |
| आर्य समाज क्या है ? | ०-७५ |
| वैदिक सन्ध्या रहस्य | ०-३७ |
| वैदिक यज्ञ रहस्य | ०-३७ |
| आर्य सिद्धान्त दीप | १-२५ |
| महर्षि दयानन्द | ०-७५ |
| स्वामी श्रद्धानन्द | ०-३७ |

**गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८, नई सड़क, दिल्ली-६**

मुद्रक, प्रकाशक, विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली में मुद्रित कर वा वेदप्रकाश कार्यालय ४४०८ नई सड़क दिल्ली से प्रकाशित किया।

# वेद प्रकाश

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

वर्ष १६ अङ्क ७ } संस्थापक—**गोविन्दराम हासानन्द** मार्गशीर्ष २०२४, फरवरी १९६८ { वार्षिक मूल्य ५-०० इस अङ्क का ४० पैसे

## स्वर्गीय पं० रामचन्द्र जी देहलवी शास्त्रार्थ महारथी

आर्य जगत् के महान् नेता शास्त्रार्थ समर के विजेता, अद्भुत तार्किक, उद्भट विद्वान्, मधुर भाषी, बाईबल और कुरान के मर्मज्ञ पं० रामचन्द्र जी देहलवी ३ फरवरी १९६८ को ९॥ बजे परलोक सिधार गये।

आप आर्य जगत् की महान् विभूति थे। आप का कुरान का उच्चारण इतना शुद्ध होता था कि मौलवी लोग आपका उच्चारण सुनने के लिये आप के व्याख्यानों में आते थे।

परमात्मा से प्रार्थना है कि वह दिवंगत आत्मा को संगति और पारिवारिक जनों को इस कष्ट को सहन करने की सामर्थ्य प्रदान करे।

'विद्यार्थी'

॥ ओ३म् ॥

सम्पादक—विजयकुमार
फो० न० २६२७६५

आदरी सहसम्पादक—ब्र० जगदीश विद्यार्थी
फो० नं० २२१३२८

## "यज्ञ की दक्षिणा"

★ श्री पं० वीरसेनजी वेदश्रमी

यज्ञ की दक्षिणा यज्ञ के विविध अंगों में से एक प्रधान अंग है। आहुति से विश्व के दैवत तत्व की पुष्टि होती है और दक्षिणा से मनुष्य देवों की, वैदिक विद्वानों की तृप्ति और पुष्टि होती है। इस प्रकार पृथिवीस्थ एवं अन्तरिक्षस्थ दोनों प्रकार के देवों की तृप्ति से यजमान की कामनाओं की पूर्त्ति होती है तथा कीर्ति का विस्तार होता है। ऋग्वेद में—"उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुः"—यह मन्त्र आता है अर्थात् जो दक्षिणा देते हैं वे उच्च प्रतिष्ठा को प्राप्त करते हैं। क्योंकि जैसी दक्षिणा होगी वैसी ही प्रतिष्ठा देने और लेने वाले की होती है तथा वैसा ही फल भी प्राप्त होगा। जो श्रद्धापूर्वक, आदर सत्कार से विद्वानों को उत्तम दक्षिणा प्रदान करते हैं, उनको उत्तम फल की प्राप्ति होती है।

### दरिद्र दक्षिणा से दुःख प्राप्ति

कठोपनिषद् में नाचिकेतोपाख्यान में दक्षिणा के एक प्रसंग का वर्णन आता है। नचिकेता के पिता उद्दालक ने विश्वजित यज्ञ किया।

इस यज्ञ में सब कुछ ऋत्विजों को तथा यज्ञ में आगत ब्राह्मणों को देना पड़ता है। महाराजा दिलीप ने भी यह यज्ञ किया था। कविश्रेष्ठ कालिदास ने रघुवंश में लिखा है कि— 'तमध्वरे विश्वजितक्षितीशं निःशेषविश्राणितकोशजातम्"—अर्थात् उस समय विश्वजित यज्ञ में महाराजा दिलीप ने अपना समस्त कोष दान कर दिया था। इसी प्रकार उद्दालक ने भी यज्ञ के पश्चात् सब कुछ देना प्रारम्भ किया। परन्तु जब वे दक्षिणा में बूढ़ी, दूध देने में असमर्थ, पाचनशक्तिरहित, देखने, सुनने एवं चलने में भी असमर्थ गौवों को ऋत्विजों को देने लगे तो इस अश्रद्धायुक्त कर्म को देखकर नचिकेता को श्रद्धा उत्पन्न हुई और वह सोचने लगा :—

**पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः । अनन्दा नाम ते लोकास्तान्स गच्छति ता ददत् ॥**

अर्थात् भूख से व्याकुल, जल से ही पेट भरने वाली, जिनसे तृण का चर्वण भी नहीं हो पाता है और दुग्ध देने की सामर्थ्य से रहित, चेष्टा रहित, बूढ़ी दरिद्र गायों को नचिकेता का पिता दक्षिणा में देने लगा तो नचिकेता को श्रद्धा-आस्तिक बुद्धि उत्पन्न हुई और वह सोचने लगा कि मेरे पिता ऐसी दरिद्र दक्षिणा दे रहे हैं, ऐसी दरिद्र दक्षिणा देने वाले तो दुःखरूप योनियों को प्राप्त होते हैं। अतः नचिकेता ने अपने पिता के पास रहना उचित न समझ कर कहा—"कस्मै मां दास्यतीति"—अर्थात् मुझे किस को दोगे ?

**दक्षिणा न देना अश्रद्धायुक्त कर्म है**

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि दरिद्र दक्षिणा देना या दक्षिणा न देना अश्रद्धायुक्त कर्म हैं। और ऐसी दरिद्र दक्षिणा देने से दुःखयुक्त योनियाँ प्राप्त होती हैं। परंतु जो दक्षिणा नहीं देते, उनको तो और भी निकृष्ट फल की प्राप्ति होती है। ऐसा स्वतःसिद्ध हो जाता है। इसीलिये—"हतो यज्ञस्त्वदक्षिणः" बिना दक्षिणा का यज्ञ नष्ट हो जाता है ऐसा भी तत्वचिन्तकों को निर्णय देना पड़ा। इसी बात की पुष्टि वेद से भी होती है। वेद में लिखा है कि—"यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्"—जिस-जिस कामना के लिये हम यज्ञों में आहुति दें वह हमारी पूर्ण हों और हम धनैश्वर्यों के स्वामी हों। यज्ञ

द्वारा कामनाओं की पूर्ति के लिये वेद में मन्त्र है—"भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सर-सस्तावा नाम। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु......।" अर्थात् यज्ञ समस्त संसार का पालनकर्त्ता है, सुखों को देने वाला है, वह गन्धर्वरूप है, वह वेदवाणी का धारणकर्त्ता है, उस गन्धर्व की अप्सरा स्तावा नाम की दक्षिणा है। इन दोनों के साहचर्य से इस ज्ञान एवं कर्ममय प्रजापति के राष्ट्र का पालन होता है तथा रक्षा होती है।

### दक्षिणा से फल प्राप्ति

शतपथ में इसी मंत्र के बारे में लिखा है कि—"यज्ञो ह गन्धर्वो दक्षिणाभिरप्सरोभिर्मिथुनेन सहोच्च-क्राम। दक्षिणाभिर्हि यज्ञः स्तूय-तेऽथो यो वै कश्चन दक्षिणां ददाति स्तूयत एव स"—अर्थात् गन्धर्व रूपी यज्ञ, अप्सरा रूपी दक्षिणा के साथ–कीर्ति के साथ संयुक्त होकर ऊपर को जाता है। दक्षिणा से यज्ञ की प्रशंसा होती है। जो कोई दक्षिणा देता है उसकी प्रशंसा की जाती है। महर्षि दयानन्द जी पूर्वोक्त मंत्र के भावार्थ में लिखते हैं कि—"हे मनुष्यो! जो सुखों के भोगने और उत्तम पालन का हेतु, वाणी को धारण करने वाला, संगति करने योग्य यज्ञ कर्म है, उसकी जो सुपात्र अच्छे-अच्छे धर्मात्मा विद्वानों को दक्षिणा दी जाती है वे प्राणों में पहुँचने वाली जिनकी प्रशंसा की जाती है ऐसी प्रसिद्ध हैं, उन दक्षि-णाओं के लिये उत्तम रीति से उत्तम क्रिया संयुक्त करो।" महर्षि के इन वाक्यों से प्रकट होता है कि यज्ञ में दक्षिणा देना वेदविहित है और वह दक्षिणा दरिद्र न हो, अपितु अच्छी ही होनी चाहिये, जिसकी प्रशंसा हो सके तथा उन दक्षिणाओं को निरा-दर भाव से या छिपाकर नहीं देना चाहिए, अपितु बड़े श्रद्धा, आदर एवं शोभायुक्त कर्म के साथ देना चाहिये। वह दक्षिणा इतनी मात्रा में होनी चाहिये कि जीवन की, प्राणों की अच्छे प्रकार तृप्ति, पुष्टि और रक्षा करने वाली हो।

### दक्षिणा से अचल कीर्ति

यजुर्वेद अ० ७ के ४६वें मन्त्र "ब्राह्मणमद्यविदेयं .." में दक्षिणा के लिए—"सुधातु दक्षिणम्। अस्म-द्राता देवत्रा गच्छत..." ये शब्द आते हैं। महर्षि दयानंदजी सरस्वती इस मंत्र के भावार्थ में लिखते हैं

कि—"जो देने वाले दक्षिणा में प्रशंसनीय पदार्थ सुपात्र, धार्मिक सर्वोपकारक, विद्वानों को देते हैं, उनकी अचल कीर्ति क्यों कर न हो" यह वाक्य बताते हैं कि दक्षिणा में प्रशंसनीय पदार्थ देने चाहिए, अर्थात् दरिद्र दक्षिणा नहीं होनी चाहिये। क्योंकि प्रशंसनीय दक्षिणा से अचल कीर्ति होती है। तथा इसके विपरीत जो दक्षिणा नहीं देते या दरिद्र दक्षिणा देते हैं उनकी निन्दा भी होती है, यह भी प्रकट होता है। जो लोग यज्ञ की दक्षिणा लेने देने के विरुद्ध हैं या दक्षिणा न लेने देने को ही बड़ा त्याग या धर्म कर्म समझते हैं वे अवैदिक कार्य करते हैं और महर्षि दयानन्दजी सरस्वती के आदेश के भी प्रतिकूल आचरण करते हैं।

## दक्षिणा देना धर्म है

यजुर्वेद अ० ७ के ४५वें मंत्र में "चन्द्रदक्षिणा" शब्द आता है। इसका अर्थ करते हुए महर्षि लिखते हैं कि—"हे सुवर्ण के दान करने वालो! तुम लोग धर्म को विशेषता से प्राप्त होओ।" अर्थात् दक्षिणा में सुवर्णादि उत्तम पदार्थ देने चाहिये और इस क्रिया से धर्म की विशेष रूप से विद्वानों के द्वारा सत्संगति से, ज्ञान एवं उत्तम कर्मों की वृद्धि सभी प्राप्ति होती है। यजुर्वेद के अ० २६ के मन्त्र २ में आता है—"प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासं मे कामः समृध्यताम्"—अर्थात् विद्वानों के लिये प्रिय, उत्तमोत्तम दक्षिणा देने वाला मैं बनूं जिससे मेरी कामनाएँ पूर्ण हों। यहाँ पर भी वेद का यही आदेश है कि दक्षिणा देनी चाहिए और वह ऐसी हो जिसको देवें उसको भी प्रिय प्रतीत हो। ऐसी दक्षिणा जिसको लेने से प्रसन्नता न हो, वह प्रिय दक्षिणा नहीं, अपितु अप्रिय दक्षिणा है। प्रिय दक्षिणाओं से कामनाओं की पूर्ति होती है ऐसा वेद कहता है। इसका यह भी तात्पर्य हुआ कि अप्रिय दक्षिणा देने वाले की कामनाओं की पूर्ति नहीं होती है, अर्थात् कर्म निष्फल हो जाता है। वेद का इतना स्पष्ट आदेश होने पर भी यज्ञ की दक्षिणा देने के बारे में निरोध या उपेक्षा अथवा दरिद्र दक्षिणा देकर टाल देने वाली वृत्ति वेदविरुद्ध है। यज्ञ से धन प्राप्ति का विधान वेद करता है। यजुर्वेद के अ० ८ के मंत्र ६० में यज्ञ से धन-

प्राप्ति की प्रार्थना है। यजुर्वेद अ० ४ के प्रथम मंत्र—"ऋक्सामाभ्यां सन्तरन्तो यजुर्भिरायस्पोषेण समिषा मदेम"—इसमें भी वेद से धन, पुष्टि आदि को सुखपूर्वक प्राप्त करने की प्रार्थना है। "यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्"—इसमें भी यज्ञ से ही हमारी कामनायें पूर्ण हों, जिससे हम धनैश्वर्यों के स्वामी बनें—कहा गया है। तो क्या ऋत्विजादि को यज्ञों के द्वारा यजमानों ने अच्छी दक्षिणा देकर समृद्ध नहीं बनाना चाहिये ?

**दक्षिणा से धर्म की प्राप्ति**

"व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्। दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते" ( यजु० अ० १९ मंत्र ३० )—इस मंत्र में बताया गया है कि व्रत से दीक्षा की प्राप्ति होती है। यज्ञादि से दीक्षित व्यक्ति से ऋत्विजों को दक्षिणा अर्थात् प्रतिष्ठापूर्वक धन की प्राप्ति होती है। उस प्रतिष्ठापूर्वक धन की प्राप्ति से विद्वानों की वेदादि सत्य शास्त्रों के अभ्यास एवं धारण में प्रीति रूप श्रद्धा उत्पन्न होती है जिससे वे वेदादि के अध्ययन में निरन्तर श्रद्धा से लगे रहने में समर्थ हो पाते हैं तथा इस दक्षिणा से अर्थात् प्रतिष्ठापूर्वक धन की प्राप्ति विद्वानों को होने से अन्यजनों को तथा शिष्यों को भी इस सत्य रूप वेद विद्या के धारण के लिए प्रीति वा श्रद्धा होती है। यदि दक्षिणा से प्रतिष्ठापूर्वक धन प्राप्ति नहीं होगी तो विद्वान् भी वेदादि सच्छास्त्रों को छोड़कर अन्य ग्रन्थों का अध्ययन करेंगे, जिससे कि उन्हें धनैश्वर्य प्राप्त हो और उनके शिष्य भी पुनः उसी पर चलेंगे। वेदादि सच्छास्त्रों के अध्ययन में श्रद्धा वा प्रीति से परमात्मा वा धर्म को प्राप्ति होती है और सुख प्राप्त होता है। वेदादि सच्छास्त्रों से दक्षिणा प्राप्ति के अभाव में उनके प्रति प्रीति न होने से उनके पठन-पाठन का लोप हो रहा है तथा धर्म एवं परमात्मा से लोग विमुख होते जा रहे हैं। इस प्रकार दक्षिणा न देने का मार्ग या दरिद्र दक्षिणा देने से वेद धर्म एवं परमात्मा से विमुखता का प्रसार होता है।

**अदानशीलता कुटिल वृत्ति है**

यज्ञ में यजमान के अन्दर त्याग की भावना दृढ़ बनी रहनी चाहिये।

कृपणता की भावना से यज्ञ की भावना का ही नाश हो जाता है। यजमान को यज्ञ की इस त्यागमय भावना का यज्ञ के अंत तक भी त्याग नहीं करना चाहिए। इसलिये यजुर्वेद के अध्याय १ के मन्त्र २ में कहा है कि—"मा ह्वार्मा ते यज्ञ-पतिर्ह्वार्षीत्"—इस यज्ञ की त्याग-मय भावना का त्याग मत करो, इसको कृपणतादि वृत्ति से कुटिल, वक्र या विकृत मत होने दो। यज्ञ-पति यजमान भी किन्हीं हीन वृत्तियों या स्वार्थ वृत्तियों के आश्रित होकर यज्ञ को कुटिल न करे, इसका त्याग न करे। क्योंकि यह जो अदान-शीलता है वह दुष्ट वृत्ति है। इस दुष्ट वृत्ति का नाश करना चाहिए तथा जो अदानशील, दुष्ट स्वभाव वाले व्यक्ति हैं वे राक्षस हैं, उनका भी उन्मूलन होना चाहिए। इसी-लिए यजुर्वेद अ० १ के ७वें मंत्र में—"प्रत्युष्टꣳरक्षः प्रत्युष्टा अरातयः"—कहा गया है। अर्थात् दुष्ट स्वभाव निश्चय से निर्मूल करना चाहिए और जो अदानशीलता है वह भी नष्ट करनी चाहिए। यज्ञ को स्वी-कार करने वाला कहता है कि—"भूताय त्वा नारातये"—( यजु० अ० १ मंत्र ११ ) अर्थात् तुझ यज्ञ को प्राणियों के सुख के लिए ग्रहण करता हूँ, अदानशीलता के लिए नहीं। इसीलिए यज्ञ करने वाले यजमान के द्वारा दक्षिणादि न देने की या दरिद्र दक्षिणा देने की या यज्ञ के लिए कृपणता की वृत्ति कदापि अंगीकार नहीं करनी चाहिये। कुछ लोगों ने वेद विरुद्ध ऐसी भी विचारधारा फैला रखी है कि यज्ञ तो वही उत्तम है जिसमें दक्षिणा न दी जावे और वही ऋत्विज श्रेष्ठ हैं जो दक्षिणा न लें, फिर चाहे वे वेद का एक मन्त्र भी शुद्ध न उच्चारण कर सकते हों।

**अदानशीलता को त्यागें**

यज्ञादि के अनुष्ठानकर्त्ता यज-मान को यज्ञ के लिए दीक्षित करते हुए उनसे अदानशीलतादि दोषों को दूर करना चाहिए। यजुर्वेद के अ० १ के मंत्र १३ के—"दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि"—इन शब्दों का तात्पर्य यह है कि यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के लिए अपने को शुद्ध करो। जो यजमान में अशुद्धि दोषादि हैं उनको मैं ऋत्विक् दूर करता हूँ। ये अशुद्धियाँ कौन सी हैं जिनको यजमान से दूर कराना है, उसका वर्णन अगले मन्त्र में स्पष्ट

आ जाता है। १४वें मन्त्र में आता है—"अवधूतं रक्षोऽवधूता अरातयः" अर्थात् दुष्ट स्वभाव और अदानशीलतादि दोष दूर करने योग्य हैं उनको यजमान को छोड़ना होता है। देवत्व की भावना दानशीलता, है और इसके विपरीत अदानशीलता कृपणता, परिग्रह या स्वार्थ ही का भाव है। यही रक्ष, रक्षसः, राक्षस अर्थात् आसुरभाव है। यज्ञ की त्यागमयी भावना के प्रतिकूल अदक्षिणा का भाव या अदानशीलता की वृत्ति है, जिसे वेद पुनः पुनः छोड़ने का आदेश देता है।

### अदानशील धूर्त्त हैं

ऋग्वेद में मंत्र आता है—"पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः" अर्थात् हे परमेश्वर ! आप दुष्ट स्वभाव वालों से और जो अराव्ण हैं अर्थात् अदानशील हैं ऐसे धूर्त्तों से रक्षा कीजिये। धूर्त्त शब्द का प्रयोग मायावी, छली, चालबाज एवं धोखा देने वाले के लिए प्रयुक्त होता है। वेद के शब्दों में अदानशील, दानदक्षिणादि न देने वाले व्यक्ति धूर्त्त हैं, राक्षस स्वभाव वाले हैं। उनसे बचने की प्रार्थना की गई है। क्योंकि अदानशीलों की धूर्त्तता से यज्ञादि का लोप होता है। वेदादि शास्त्रों के पठन-पाठन से लोग विमुख हो जाते हैं और स्वार्थ में तल्लीन रहकर धर्म एवं परमात्मा को भी भूल जाते हैं। अतः अदानशीलता, यज्ञादि में दक्षिणा न देना या दरिद्र दक्षिणा देना वेद विरुद्ध होने से अधर्म है। इसीलिए यजुर्वेद के अ० १ के मन्त्र १६वें में—"परापूता अरातयोऽपहतं रक्षः"—कहा गया है। अर्थात् दान धर्मादि रहित, वेदादि शास्त्रों, यज्ञादि कर्मों तथा सब प्रकार के धर्मानुष्ठानों के व्यावहारिक रूप में शत्रु ही हैं। जब तक इस वृत्ति के व्यक्ति समाज में या राष्ट्र में रहेंगे, समाज या राष्ट्र का उत्थान नहीं हो सकता। अतः ऐसे व्यक्तियों की वृत्तियों को दूर करना चाहिये एवं जिनकी वृत्तियाँ सुधर नहीं सकतीं और जो विपरीत आचरण पर ही दृढ़ हैं उनका अवश्य उन्मूलन करना चाहिये।

### अदानशील आर्यत्व के शत्रु हैं

ऋग्वेद में—"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" का उच्चघोष जिस मन्त्र में आया है उसका अगला पद ही इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए क्या प्रयत्न करना चाहिए उसको भी बताता

है। लोग उसे ओझल किये हुए हैं। उसके बिना "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" का लक्ष्य पूर्ण नहीं हो सकता है। मन्त्र का अगला पद है—"अपघ्नन्तो अराव्ण:"—अर्थात् जब तक अदानशीलता या अदानशीलों को नष्ट नहीं करेंगे, अथवा कंजूस वृत्तियाँ कृपणता नहीं छोड़ेंगे, तब तक समस्त विश्व को आर्य नहीं बना सकते। आज हम बड़े जोर-जोर से वैदिक धर्म की जय बोलते हैं, परन्तु वेद हमसे ओझल होता जा रहा है। हमारे कण्ठ, हृदय एवं मस्तिष्क में तो वेद है ही नहीं, तो जीवन में कहाँ से आवें। हमारे वंश में वेद का पठन-पाठन नहीं तो कैसे दूसरों को वेद पढ़ने की हम प्रेरणा दे सकते हैं। हमारे घरों में भी वेद की पुस्तकें नहीं तो फिर ऐसी घोर उपेक्षा से एवं वेद के प्रति ऐसी अश्रद्धा तथा अदानशीलता से क्या—"कृवन्तो विश्वमार्यम्"—लक्ष्य पूर्ण हो सकेगा? ऐसी स्थिति में तो आप इस लक्ष्य पूर्त्ति का स्वप्न भी नहीं ले सकते हैं। अतः यज्ञादि में तथा वेदादि रक्षा के सत्कार्यों में संलग्न सुपात्र विद्वानों को सदा अच्छी दक्षिणा देनी चाहिये।

## महर्षि दयानन्द का अनुसरण करो

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्वयं सस्वर वेदपाठी थे। परन्तु जब कोई वेदपाठी विद्वान् उन्हें मिलता तो उससे कुछ मन्त्र सुन कर वेदश्रवण के परम धर्म की पूर्त्ति भी करते थे, पश्चात् उस वेदपाठी को १ अशर्फी और १ दुशाला, जो उस समय की प्रतिष्ठित दक्षिणा मानी जाती थी, उसे भेंट करते। अपने द्रव्य से अनेक पंडितों को बुला कर यज्ञ करवाते और पण्डितों को दक्षिणा भी देते थे। वे यह अनुभव करते थे कि यदि वेदादि पठनकर्त्ताओं का उचित सम्मान नहीं किया जावेगा तो वेदों का पठन-पाठन लुप्त हो जायगा और आज भी इसी कारण वेदों के पठन-पाठन को परम धर्म मानने वालों के समाज में या वंश में वेदों को कोई नहीं अपनाता, क्योंकि इसके पठन-पाठन से उचित सत्कार एवं धन की प्राप्ति नहीं होती है। उचित दक्षिणा तो दूर रही, किराया देने की भी नहीं सोचते। कोई किराया दे दे तो दक्षिणा देने में असमर्थता प्रकट करते हैं, देते हैं तो ऐसी दरिद्र दक्षिणा, कि क्या कहा जावे? जिन वस्त्रों को स्वयं यजमान पहनना

पसन्द नहीं करे, ऐसे वस्त्र भी दे देते हैं और पात्र भी बाजार से ऐसे सस्ते खरीदकर लाते हैं जो केवल देखने मात्र के हों, फिर चाहे वे फूटे ही क्यों न हों ? यज्ञ की दक्षिणा इतनी भी पर्याप्त नहीं होती कि उतने दिन का ऋत्विजों के घर का व्यय भी चल सके। तो फिर कौन, किस लिए वेद पढ़ेगा ? क्या ऐसा वैदिक समाज अपने पैर पर ही कुठाराघात करके नष्ट नहीं होगा ? फिर जो लोग दक्षिणा न देने में ही अपनी चतुराई समझते हैं, वे वेदप्रेमी होते हुए भी व्यवहार रूप से वेदद्रोही हैं, ऐसा अनुभव होने लगता है।

### उन्नति का मूलक आदान-प्रदान व्यवहार

वेद का आदेश है कि हम लोग आदान-प्रदान व्यवहार से उन्नति करें। यह व्यवहार यज्ञ की प्रक्रिया में मूल रूप से विद्यमान है। उसको व्यवहार रूप में करना श्रेयस्कर है। यजुर्वेद अ० ३ के ४६ वें मन्त्र में इस प्रक्रिया का सुन्दर वर्णन है—"पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत। वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्जꣳशत-क्रतो॥"—अर्थात् हे जगदीश्वर ! यज्ञ में हम होतव्य द्रव्यों से जो हवि स्रुवादि द्वारा देते हैं, वह हम लोगों के लिए पुनः पृथिवी पर आ जाती हैं। वैश्यों के लेन देन रूप व्यवहार के तुल्य हम यज्ञ द्वारा अन्न और पराक्रम को प्राप्त करें।"—इसका स्पष्ट तात्पर्य है कि परस्पर आदान-प्रदान क्रिया होनी चाहिये। जिस विद्वान् का उपयोग हम अपने यज्ञा-नुष्ठान आदि कर्मों में लेते हैं, उसको दक्षिणादि भी अच्छी प्रकार देनी चाहिए। "पूर्णा दर्वि"—का तात्पर्य परिपूर्ण, भरी हुई करछी, चम्मच या स्रुवा होता है। वह भौतिक श्रेष्ठ पदार्थों से पूर्ण हों, जिसमें पुष्टिकारक, सुगन्धित, मिष्ठ, सुमधुर एवं रोग नाशक सामर्थ्य हो। इसी प्रकार दक्षिणा की भी आहुति ऋत्विजों को "पूर्णा दर्वि"—के तुल्य पूर्णा पात्र में उत्तमोत्तम द्रव्यों के साथ जो ऋत्विजों और उनके परिवार को एवं शिष्य वर्ग को भी पुष्ट कर सकें, जो उनको आरोग्यता प्रदान कर सकें, जो पदार्थ मधुर हों अर्थात् ऋत्विजों के लिए प्रिय हों और यजमान की शोभनगन्ध—सुगन्धि अर्थात् कीर्ति के विस्तारक हों—देना चाहिये। ऐसी दक्षिणा की आहुति—"सुपूर्णा पुनरापत"—

अर्थात् वह यजमान को पूर्ण रूप से फलवती होती है। यदि यज्ञ में—"पूर्णा दर्वि"—की आहुति न हो, अपूर्ण हो, न्यून हो या खाली ही चम्मच से आहुति दी जावेगी तो उसका परिणाम भी अपूर्ण या शून्य ही होगा। वेद के प्रति कुछ न देने की भावना से ही हमारी संस्थाओं में भी वेद का यथार्थ में अभाव दृष्टिगोचर हो रहा है। जैसे वैश्यों का व्यवहार आदान-प्रदान का प्रत्यक्ष फल युक्त होता है, वैसे ही यज्ञ का व्यवहार भी निश्चित फल-दायक है। अतः अपने यज्ञरूप व्यवहार को पूर्ण रूप से फलयुक्त बनाने के लिए यज्ञों में ऋत्विजों को अच्छी प्रकार दक्षिणादि देना आवश्यक है।

### आदान-प्रदान व्यवहार प्रचलित करो

उपर्युक्त बात को और भी स्पष्ट करने के लिये वेद का अगला मन्त्र और भी मनन करने योग्य है—"देहि मे ददामि ते नि मे देहि नि ते दधे। निहारं च हरासि मे निहारं निहराणि ते।" (यजु० अ० ३ मन्त्र ५०) अर्थात् सृष्टि के अन्दर आदान-प्रदान की क्रिया से कार्य चलता है। कृषक भूमि में बीज बोता है तो भूमि उस बीज को फलवान् करके समृद्ध करती है। यह सृष्टि की यज्ञ की प्रक्रिया है। इसी प्रकार मनुष्यों के जीवन व्यवहार में भी आदान-प्रदान की यज्ञीय भावना से परस्पर उन्नति होती है। जिस भूमि में बीज डालने से उत्पत्ति की क्रिया का अभाव है वह वन्ध्याभूमि बीज को भी नष्ट कर देती है। उस वन्ध्याभूमि को सुधारने के लिए उत्तम मृत्तिका, खाद आदि द्रव्यों से उसे पुष्ट किया जा सकता है तत्पश्चात् उसमें उत्पत्ति एवं वृद्धि के लिए जलादि सींचना एवं रक्षणादि क्रिया की जाती है, जिससे उत्पति होती है और फलों की प्राप्ति होती है। किसी वस्तु की उत्पत्ति एवं उसके फल की प्राप्ती १ मास में ही हो जाती है। किसी से २ मास में, किसी से तीन, छः वा १२ मास या अधिक समय में होती है। इसी प्रकार इष्ट यज्ञ का फल भी तभी होता है जब यज्ञ की आधार भूमि को फलवती बनाने के लिए ऋत्विजों का यज्ञ में वरण करते समय उन्हें सुवर्ण, वस्त्र, आसन, पात्रादि दिए जाते हैं। पुनः यज्ञ किया जाता है जो इष्ट फल का बीज रूप है। यज्ञानन्तर जो दक्षिणा

प्रदान है वह पुनः बीज को मृत्तिका से ढँकने के तुल्य है और तत्पश्चात् की भूयसी आदि दक्षिणायें एवं भोजन तथा भोजनोपरान्त की दक्षिणायें एवं दानादि जल सिंचनादिवत् क्रिया हैं, जिससे बीज उत्पन्न होकर वृद्धि को प्राप्त हो समय पर फलयुक्त हो जाता है। इसीलिए दक्षिणाओं के बारे में शतपथ में आता है कि जितनी मात्रा का यज्ञ हो, उतनी मात्रा की दक्षिणा देनी चाहिए। इसका यह भी तात्पर्य हो सकता है कि दैनिक यज्ञ की दक्षिणा इतनी होनी चाहिए कि ऋत्विक् पुरोहितों के परिवारों का कम से कम एक दिन का निर्वाह हो सके। पाक्षिक यज्ञ की दक्षिणा ऐसी हो जिससे कम से कम एक पक्ष का ऋत्विक् पुरोहितों के परिवार का निर्वाह हो सके। चातुर्मास्येष्टि या नवान्नेष्टि यज्ञों की दक्षिणा ऐसी हो कि एक फसल से दूसरी फसल तक निर्वाह हो सके और आग्रायणेष्टि आदि वार्षिक यज्ञों की दक्षिणा ऐसी हो कि एक वर्ष का निर्वाह हो सके और राजसूय अश्वमेधादि यज्ञों की दक्षिणा ऐसी हो कि पुरोहितों के परिवार का निर्वाह वंश परम्परागत करने में समर्थ हो।

### दक्षिणा से महान् फल की प्राप्ति

यजुर्वेद के चतुर्थ अध्याय का प्रथम मन्त्र है—"एदमगन्म देवयजनं पृथिव्याः"—अर्थात् मैं अच्छे प्रकार पृथिवी के मध्य में विद्वानों को पूजन सत्कार एवं दानादि द्वारा प्राप्त करूं। यदि विद्वानों का पूजन सत्कार आदि नहीं होगा और उनको धन, वस्त्रादि नहीं दिये जावेंगे तो विद्वानों का निर्वाह कैसे होगा और उनके परिवार का भी पोषण कैसे होगा? उनको सन्तान सुशिक्षित कैसे होगी? उनकी शिष्य परम्परा भी कैसे चलेगी? और वेद कैसे सुरक्षित रह सकेंगे? विद्वानों को दीन, हीन दरिद्र रखने से आपका उद्धार कैसे होगा? विद्वान् सब प्रकार से पवित्र करने वाले होते हैं अतः उनका धनादि से अच्छी प्रकार सत्कार करना चाहिए। ऋग्वेद में मन्त्र आता है—"उरुः पन्था दक्षिणया अदर्शि"—अर्थात् दक्षिणा के द्वारा महान् उन्नति एवं सुख के पथ का दर्शन प्राप्त होता है। "विश्वं जीवं तमसो निरमोचि"—इस दक्षिणा के द्वारा समस्त जीवन अन्धकार से उन्मुक्त होते हैं।—"हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते"—जो दक्षिणा में सुवर्ण

देते है वे मोक्ष सुख, अविनाशी सुख को प्राप्त होते हैं।

### दक्षिणा से यज्ञ की पूर्ति

ऋग्वेद में दक्षिणा के बारे में मन्त्र आता है, उसके निम्न शब्द विचारणीय हैं—"दैवी पूर्तिर्दक्षिणा देवयज्या"—अर्थात् यज्ञ की दक्षिणा देना, दैवी कर्मों की पूर्ति करने वाली है और जो लोग दक्षिणा नहीं देते हैं उनको इस मन्त्र से समझना चाहिए कि दक्षिणा न देने से उनके यज्ञ की जो दैवीरूप से पूर्ति होनी है, वह नहीं होगी। दक्षिणा देना यज्ञ का महत्वपूर्ण एवं श्रेष्ठ भाग है। वह अर्धांगी के तुल्य है जिस प्रकार यज्ञ कर्म में पत्नी का होना आवश्यक है उसी प्रकार यज्ञ में यज्ञ की पत्नी दक्षिणा का होना भी आवश्यक है। इसीलिए वेद ने कहा है—"अथा नरः प्रयत दक्षिणासः"—हे मनुष्यो! यज्ञ के साथ उत्तमोत्तम दक्षिणा देने का प्रयास करते रहो। जो मनुष्य दान दक्षिणा देने में अग्रसर रहता है उसकी सर्वत्र प्रतिष्ठा होती है। उसी को सब देव, विद्वान् आदि चाहते है। "दक्षिणावान्प्रथमो हूत एति" (ऋग्वेद) सब कार्यों में ऐसे दाता, दानशील व्यक्तियों को ही सबसे प्रथम बुलाते हैं और सम्मान देते हैं जो यज्ञादि शुभ कर्मों में प्रसन्नता से विद्वानों का सत्कार सब प्रकार से तथा धनादि के द्वारा भी करते हैं। गोभिल गृह्यसूत्र में यज्ञ शेष प्रकरण में लिखा है—"ब्राह्मणस्य तृप्तिमनु तृप्यामीति ह यज्ञस्य वेदयन्ते"—अर्थात् ऐसा कहते हैं कि निश्चय से ऋत्विजों की तृप्ति के अनुसार ही यज्ञ की तृप्ति होती है। इसलिए यज्ञ में ऋत्विजों की तृप्ति दक्षिणादि के द्वारा अच्छी प्रकार करना अत्यन्त आवश्यक है।

### दक्षिणा पाप से बचाती है

दक्षिणा के बारे में ऋग्वेद में कहा है—"सुवृद्रथोवर्त्तते दक्षिणायाः" अर्थात् दक्षिणा सुन्दर, सुरक्षित, अच्छे प्रकार वर्त्तने वाला रथ है। क्योंकि दक्षिणा देने वाले को यज्ञ के उत्तम फलों की प्राप्ति दक्षिणा से होती है। अतः यजमान के भाग्योदय के लिये दक्षिणा की क्रिया है। वेद में दक्षिणा के बारे में और भी महत्त्वपूर्ण शब्द मिलते हैं—"दक्षिणा पात्वंहसः"—अर्थात् दक्षिणा पाप से रक्षा करती है। अतः दक्षिणा न देने का प्रचार करने वाले पाप की वृद्धि करते हैं यह ज्ञात होता है, तथा ऐसे

लोगों की अदानशीलता से वैदिकों का ह्रास होता है।

### गृह्यसूत्र और दक्षिणा

गोभिल गृह्यसूत्र में पाक यज्ञों की ऋत्विजों को दक्षिणा देने के बारे में लिखा है कि—'पूर्णपात्रो दक्षिणा तं ब्रह्मणे दद्यात्'—अर्थात् जिन यज्ञों में अन्नादि पकाया जाता है, उनमें ब्रह्मा को पूर्णपात्र में पक्व अन्न या अपक्व अन्न अथवा भर कर चम्मच सहित दक्षिणा देनी चाहिए। इस यज्ञ में केवल एक ही मात्र ऋत्विज ब्रह्मा के रूप में होता है, अन्य नहीं होते। परन्तु यह दक्षिणा 'पूर्णपात्रोऽवमः पाकयज्ञानां दक्षिणा' जो पूर्ण पात्र बताई गई है वह न्यून-कल्प दक्षिणा है। अधिक के लिये–"अपरिमितं परार्ध्यमिह"—यदि सामर्थ्य हो तो अपरिमित दक्षिणा देना चाहिए। परार्ध्य गणित की सबसे बड़ी संख्या होती है। जैसे कि दस शंख, जहाँ पर कि गणना के अंक समाप्त होते हैं। सामर्थ्य हीन के लिए न्यूनतम दक्षिणा बताकर अधिक का भी शास्त्रकारों ने विधान कर दिया। पुनः लिखा है कि—"सुदाः पैजवान ऐन्द्राग्नेन स्थालीपाकेनेष्ट्वा शतं सहस्राणि ददौ"–पिजवन नाम के वंशधर सुदा राजा ने इन्द्राग्नि देवता के उद्देश्य से स्थालीपाक याग-अमावस्या का याग करने के अनन्तर लाख-लाख स्वर्ण मुद्रायें या गौवें दक्षिणा में दीं। दर्श-पूर्ण मास याग की विधि तो एक ही दिन में पूर्ण हो जाती है। वह भी कुछ समय में। उसके निमित इतनी दक्षिणा देने में ऋषि अपना गौरव ही नहीं अनुभव करते थे, अपितु विद्वानों को दक्षिणा देने से वेद की रक्षा का, उसके पठन-पाठन का परम धर्म जीवित रहता है, इस रहस्य को समझ कर परम धर्म की पूर्ति के लिए देते थे। वे यह भी समझते थे कि–"यज्ञाय सृष्टानि धनानि धात्रा" अर्थात् यज्ञ के लिए ही परमात्मा ने धन बनाया है और–"धनं न कामाय हितं प्रशस्तम्"–धन का बल अपने ही सुख और अपनी वासनाओं की पूर्ति के लिए प्रयोग करना अनुचित है, ऐसी पवित्र भावना से ही अधि-काधिक दक्षिणा यजमान देते थे। उससे ही वेदों का भूमण्डल में प्रचार था। वेद के विज्ञान का एवं वेद की विद्याओं का भूमण्डल में प्रभुत्व था और आर्यों का चक्रवर्ती साम्राज्य था। यदि आज भी यजमान उचित दक्षिणा ऋत्विजों को दें तो वेद की

रक्षा और प्रचार अनायास होता रहेगा।

## 'दक्षिणा का महत्व'

यज्ञ और दक्षिणा का परस्पर अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। जितना महत्व यज्ञ का है, उतना ही दक्षिणा का महत्व है। दक्षिणा से ही यज्ञ को महत्व प्राप्त होता है और यज्ञ के बिना दक्षिणा की भी कोई प्रतिष्ठा नहीं। यज्ञ के अतिरिक्त कर्म के लिये दिये जाने वाले द्रव्य को दक्षिणा संज्ञा भी नहीं होती। यज्ञ कराने के निमित्त दिये गये धन को जो बड़ी श्रद्धा एवं आदर से दिया जाता है, वही दक्षिणा नाम को सार्थक करता है। परमात्मा की प्रीति प्राप्त करने, आत्मोन्नति तथा समस्त विश्व के कल्याण के लिये यज्ञ होता है। उस यज्ञ का प्रारम्भ ईश्वर की स्तुति, प्रार्थनोपासना, स्वस्ति एवं शान्ति के मंत्रों के उच्चारण के अनन्तर ऋत्विग्वरणपूर्वक अग्न्याधानादि कर्म करके अखिल ब्रह्माण्ड के दैवत तत्व की शुद्धि एवं पुष्टि की जाती है और उस यज्ञ का अन्त दक्षिणा की क्रिया से होता है।

## दक्षिणा से यज्ञ की सफलता

आदि और अन्त के ऋत्विग्वरण एवं दक्षिणा प्रदान—इन्हीं दो कर्मों के आश्रित यज्ञ की सफलता एवं यजमान को फल प्राप्ति होती हैं—अन्यथा नहीं। इसीलिये शास्त्रकारों ने दक्षिण रहित यज्ञ को नष्ट हुआ यज्ञ माना है। "घ्नन्ति वा एतद्यज्ञम्"—"एष यज्ञो हतो न दक्षते"—इत्यादि शतपथ के वाक्य दक्षिणा की महती आवश्यकता को प्रकट कर रहे हैं। इस नष्टता का तात्पर्य यजमान के फल प्राप्ति विशेष से ही सम्बन्धित है, सर्व साभान्य फल के नाश से नहीं। अतः सभी यज्ञों में दक्षिणादि की नितान्त आवश्यकता है। परन्तु जो यज्ञ व्यक्तिगत लाभ प्राप्ति के लिए किये जाते हैं अथवा संस्कारादि यज्ञ कर्म हैं, उनमें तो दक्षिणा देना और भी अधिक आवश्यक है।

## यज्ञपत्नी दक्षिणा

यजुर्वेद के १८वें अध्याय में राष्ट्रभृत् होम के मन्त्रों में यज्ञ और दक्षिणा को परस्पर गूढ़, प्रेममय फलप्रद एवं अभिन्न सम्बन्ध को समझाने के लिये अलंकार रूप में वर्णन किया है। परमात्मा के अखिल विश्व या ब्रह्माण्डरूपी राष्ट्र के भरण एवं पोषण करने में यज्ञ

और दक्षिणा का भी प्रमुख भाग होने से इसको राष्ट्रभृत् मंत्रों में ग्रथित किया है। मन्त्र में "भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसस्तावा नाम। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु०"। इस मन्त्र में यज्ञ को गन्धर्व एवं दक्षिणा को अप्सरा का रूप दिया है। यज्ञ पुरुष है तो दक्षिणा उसकी पत्नी रूप है। जिस प्रकार पति पत्नी के दाम्पत्य रूप एकत्व से सृष्टि का प्रवाह चलता रहता है और पोषण भी होता रहता है, उसी प्रकार यज्ञ एवं दक्षिणा के दाम्पत्य रूप एकत्व सम्बन्ध से वेद का सतत प्रवाह चलता रहता है और वेद का पोषण होता रहता है। यदि पुरुष कितना ही हृष्ट-पुष्ट एवं सुन्दर हो और वह पत्नी विहीन हो तो वह सृष्टि प्रवाह चलाने में या सन्तानोत्पत्ति में निष्फल होता है। इसी प्रकार बहुत व्यय से, उत्तम प्रकार से रचाये तथा श्रद्धापूर्वक किये गये यज्ञ की सफलता तब तक नहीं हो पाती जब तक दक्षिणा का साहचर्य न हो।

### 'प्रशंसनीय दक्षिणा देवें'

यदि पुरुष हृष्ट-पुष्ट हो और पत्नी रोगी, दुर्बल एवं अप्रसन्न हो तो भी फल प्राप्ति संभव नहीं। यदि कदाचित् फल की आशा भी हो जावे तो फल प्राप्ति का अवसर आने पर वह नष्ट हो जाता है या दाम्पत्य जीवन ही नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार बहुत व्यय साध्य उत्तम यज्ञों में यदि दक्षिणा की स्थिति क्षीण, दुर्बल, दरिद्र तथा खेदजनक हो तो उससे फल प्राप्ति सम्भव नहीं। इसीलिये वेद में यज्ञ की अप्सरा का नाम "स्तावा" बताया है। अर्थात् यज्ञ की दक्षिणा "स्तावा"=स्तुतियोग्य, प्रशंसा योग्य हो। प्रशंसा स्वयं के द्वारा की हुई निरर्थक है। ऋत्विजों और यज्ञ में आगत महानुभावों द्वारा जो प्रशंसनीय हो वही "स्तावा" नाम को सार्थक करने वाली होगी। यही स्तावा रूपी—प्रशंसा रूपी दक्षिणा यजमान के यश का विस्तार देशदेशान्तर में तथा युगयुगान्तर में भी करती हुई सबके आशीर्वाद रूपी प्रशंसा रूप वचनों से यजमान के लिये चारों ओर से सुख समृद्धि का कारण बनती रहती है।

### 'यज्ञ के अनुरूप दक्षिणा देवें'

दक्षिणा प्राप्त ऋत्विजादि एवं उपस्थित विद्वान् यजमान की कीर्ति का विस्तार उतने ही सामर्थ्य से

करते हैं जितनी सामर्थ्य से यजमान दक्षिणा को "स्तावा" = प्रशंसा योग्य बनाता है। शतपथ में दक्षिणा देने के बारे में विवेचन करते हुए लिखा है—"यावानेव यज्ञो यावत्यस्य मात्रा तावतीभिर्दक्षिणाभिर्दक्षयति—एषा मात्रा दक्षिणानां दद्यात्"—अर्थात् जितना बड़ा यज्ञ हो, जिस मात्रा से किया जावे, उतनी ही बड़ी मात्रा की दक्षिणा से वृद्धि को प्राप्त होता है—इस प्रमाण से दक्षिणा देवें।

**'गौ दक्षिणा'**

प्राय: दक्षिणा के बारे में गृह्य-सूत्रों में संस्कारादि की दक्षिणा कम से कम १ गौ नियत की है। शतपथ में भी—"तस्यै धेनुर्दक्षिणा"—धेनु दक्षिणा में देने को बताई है। प्राचीन समय से धेनु ही हमारी अर्थव्यवस्था का आधार रही है। यज्ञ के साथ तो धेनु का और भी सम्बन्ध है। यजमान के लिये यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में–'अस्मिन्गोपतौ स्यात बह्वी:' इस गौ पति यजमान के पास बहुत सी गौएँ हों—यह प्रार्थना की है। जिस प्रकार यज्ञ के द्वारा सर्व कामनाओं का दोहन होता है, उसी प्रकार हमारे जीवन की धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की साधनाओं की आश्रयभूत पूरक कामनाओं का दोहन—प्राप्ति धेनु गौ के द्वारा होती है। अत: दक्षिणा की प्रधान इकाई गौ को ही नियत किया गया। और इसकी अपेक्षा से दक्षिणा की मात्रा बढ़ाई गई। शतपथ में—"ता वै षड्दद्यात्–द्वादश दद्यात्–चतुर्विंशतिदद्यात्" कहकर ६, १२ एवं २४ संख्या दक्षिणा में देने का विधान किया है। इतनी दक्षिणा देने का महत्व प्राचीन ऋषियों ने समझा था। इसका प्रधान कारण यह भी था कि दक्षिणा की समुचित मात्रा के बिना यज्ञ का जो पश्चात्परिणाम आधिदैविक और आध्यात्मिक क्षेत्र से प्राप्त होता है, वह यजमान को प्राप्त नहीं होता और हानि भी हो सकती है।

**'दक्षिणा से मनुष्य देवों की तृप्ति'**

जो लोग यह समझते हैं कि अग्नि में आहुति की सम्पूर्णता से ही यज्ञ पूर्ण हो जाता है और दक्षिणा की आवश्यकता नहीं, वे—"घ्नन्ति वा एतद्यज्ञम्"—(शतपथ) के अनुसार यज्ञ को निस्सदेह नष्ट ही करते हैं, क्योंकि—"आहुतिभिरेव देवान्प्रीणाति दक्षिणाभिर्मनुष्यदेवान्"—यह सिद्धान्त महर्षि याज्ञ-

वल्क्य ने यज्ञ के लिये स्थिर किया है। अर्थात् आहुति से तो देवता प्रसन्न होते हैं और दक्षिणा से वेदज्ञ विद्वान् देव तृप्त होते हैं। इस प्रकार जब दोनों प्रकार के देव प्रसन्न होते हैं तो यजमान को सुनिश्चित, निर्धारित फल की प्राप्ति होती है।

### "क्या दक्षिणा लेना बुरा है"

आजकल जन समाज में दक्षिणा देने की प्रणाली की बहुत उपेक्षा है। कुछ लोग तो ऐसे भी हैं जो यह भी बड़े बुरे भाव से कहते हैं कि अमुक तो दक्षिणा लेते हैं। मानो यज्ञ की दक्षिणा लेना बड़ा भारी दोष है। परन्तु संस्कारविधि में महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने—'प्रतिग्रहः प्रत्यवरः'—इस मनु वाक्य का अर्थ करते हुये व्यक्तिगत कार्य के लिये दान लेने को निन्दित लिखा है और यज्ञादि कराकर दक्षिणा लेने को श्रेष्ठ लिखा है। तथा संस्कारों के अन्त में भी दक्षिणा देने का विधान किया है। जब यज्ञ श्रेष्ठ कर्म है और दक्षिणा उसी का प्रमुख अंग है तो वह भी श्रेष्ठ ही है। यदि दक्षिणा लेना दोष होता तो उसको विद्वान्-देवों को देने का विधान शास्त्र भी क्यों करते ? यदि विधान करते तो मूर्खों को देने का विधान करते या अपंगों या अपाहिजों को ही देने के लिये लिखते। अतः दक्षिणा लेना श्रेष्ठ ही है।

### दक्षिणा छिपा कर न दें

वेद में दक्षिणा को यज्ञ की पत्नी का रूप दिया है और उसका नाम "स्तावा"=प्रशंसायोग्य लिखा है। यदि वह अग्राह्य होती तो उसका नाम "स्तावा" नहीं होता, अपितु "निन्द्य" ही होता। अतः दक्षिणा लेना और देना श्रेष्ठ कर्म ही है। बहुत से यजमान आजकल दक्षिणा को लिफाफे में बन्द करके देते हैं जिससे किसी को मालूम न पड़े कि क्या दिया है। जब तक यज्ञ की दक्षिणा प्रकटरूप में, अच्छी प्रकार सत्कार से, सब के सामने नहीं दी जावेगी तो उसकी प्रशंसा भी नहीं होगी। "स्तावा" नाम सार्थक नहीं होगा। अतः गुप्त रूप से दक्षिणा नहीं देना चाहिये। दक्षिणा छिपाने की वस्तु नहीं है। दान है। परन्तु आजकल दक्षिणा को गुप्त रूप में देकर अपनी कृपणता को छिपा लेते हैं और दान की राशि की खूब पब्लिसिटी करते हैं। वह दान दान नहीं जिसके द्वारा अपनी पब्लिसिटी कराई जाती है।

वह तो अपनी पब्लिसिटी पर व्यय किया गया धन हुआ। दान वास्तव में नहीं हुआ।

### क्या दक्षिणा अग्राह्य है ?

यज्ञ श्रेष्ठ कर्म है तो यज्ञांग—दक्षिणा भी श्रेष्ठ कर्म है। कुछ लोग कहते हैं कि यज्ञ में दक्षिणा न लेना भी त्याग है। ऐसे त्याग का ढोंग रचने वाले शास्त्राज्ञा का उल्लंघन तो करते ही हैं और चतुर्विध पुरुषार्थ में से एक अंग—अर्थ का लोप करके अधर्म का प्रचार करते हैं। ऐसा त्यागवाद वेद प्रचार के लिये और वेद की रक्षा के लिये हानिकारक ही है।

### क्या दक्षिणा में द्रव्य न हो ?

कुछ लोग कहते हैं कि यज्ञ में दक्षिणा लेनी चाहिये, परन्तु वह दक्षिणा भौतिक या द्रव्यमयी नहीं होनी चाहिये। यजमान के दुर्गुणों को ऋत्विज ब्रह्मादि उनसे माँगकर उनका त्याग कराकर बुराई को तो लेना और यजमान में व्रतादि की स्थापना करा देना ही साधु-सन्तों के लिये महान् दक्षिणा रूप उपकार कर्म है। इसमें जहाँ तक बुराइयों के त्याग एवं व्रतानुष्ठान रूप आचरण की ओर यजमान की प्रवृत्ति कराना है वह तो ठीक है, परन्तु उसे दक्षिणा का रूप देना ऋषि महर्षियों के तथा वेद के सिद्धान्त के प्रतिकूल है।

### 'दक्षिणा से वेद की रक्षा'

धर्म और अर्थ का साहचर्य रहना चाहिये। धर्म से अर्थोपार्जन करना श्रेष्ठ है तो धार्मिक कार्यों से भी अर्थोपार्जित करना श्रेष्ठ है। यदि धर्म एवं धार्मिक कार्यों से अर्थोपार्जन को हेय या उपेक्षित कर दिया जावे तो फिर अधर्म से अर्थोपार्जन की प्रवृत्ति बढ़ती है। उस अवस्था में अधर्म से अज्ञान एवं असत् कर्मों का प्रवाह चलने लगता है। हमारे ऋत्विज, पुरोहित, आचार्यों को यदि हम यज्ञ में अच्छी दक्षिणा नहीं देंगे तो यज्ञयागादि कर्मों का लोप भी हो जावेगा और उन पुरोहितों को अर्थोपार्जन के लिये किसी न किसी वृत्ति को अपनाना पड़ेगा। यदि यज्ञयागादि बहुत मात्रा में होंगे और उनमें हमारे पुरोहितों को अच्छी दक्षिणा मिलती रहेगी तो वे वेद के ही स्वाध्याय में दिन रात लगे रहेंगे और उनकी सन्तान भी वेद के अध्ययन-अध्यापन में लगी रहेगी। अन्यथा वेद की परम्परा लुप्त हो

जावेगी। अतः दक्षिणा देने में अर्थ की उपेक्षा किसी प्रकार भी नहीं करना चाहिये। वेद की रक्षा एवं प्रचार के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है।

### महर्षि दयानन्दजी का आदेश

दक्षिणा के बारे में महर्षि दयानन्दजी सरस्वती ने संस्कारविधि में प्राचीन शास्त्रों के आधार पर बहुत कुछ लिखा है। उनके दिये हुये उद्धरण ध्यान देने योग्य हैं। यज्ञ पात्रों के लक्षण प्रकरण में उन्होंने लिखा है कि—"ऋत्विग्वरणार्थं,कुण्डलांगुलीयकवासांसि"—अर्थात् यज्ञ के प्रारंभ में जब ऋत्विजों का वरण किया जावे तो उनको वरण के साथ सुवर्ण का कुण्डल, अंगूठी और उत्तम वस्त्र देकर वरण करे। इसके पश्चात् अग्न्याधान की दक्षिणा के बारे में लिखा है कि—'अग्न्याधेय दक्षिणार्थं चतुर्विंशतिपक्षे एकोनपंचाशद् गावः, द्वादशपक्षे, पंचविंशतिः, षट्पक्षेत्रयोदश, सर्वेषु पक्षेषु आदित्ये अष्टौ धेनवः। वरार्थं चतस्त्रो गावः"। अर्थात् अग्न्याधान के लिये ४९, २५, १३, या ८ धेनु दक्षिणा में देनी चाहिये। यहाँ पर आठ धेनु (गौएँ) न्यून से न्यून अग्न्याधान की दक्षिणा देनी चाहिये ऐसा मत व्यक्त किया है। जहाँ गौ के प्रमाण या मात्रा से दक्षिणा देने का विधान है वहाँ वर के प्रमाण से भी दक्षिणा देने का विधान है। अमुक कर्म की दक्षिणा १ वर या दो वर आदि देवे ऐसा विधान शास्त्रों में लिखा है वहाँ वर से तात्पर्य ४ गौवों का ग्रहण करना चाहिये। अर्थात् किन्हीं कर्मों में न्यून से न्यून एक वर भी दक्षिणा मानने पर ४ गौ न्यून से न्यून दक्षिणा भी होती है। गौ शब्द से तात्पर्य प्रथम प्रसूता सवत्सा गौ से होता है।

### 'दक्षिणा से वेद में प्रवृत्ति'

यदि ऋत्विग्वरण के बाद अग्न्याधान या यज्ञ के सम्पूर्ण कर्म के अंत की दक्षिणा इसे मान लें और इतनी या इससे आधी या चौथाई भी दक्षिणा समाज के विद्वानों को प्राप्त होने लगे तो उनको वेद के अतिरिक्त अन्य किसी व्यवसाय में लगना ही न पड़ेगा। और प्रत्येक अपना वेदानुसंधान कार्य स्वतन्त्र रूप से प्रसन्नता से चला सकेंगे। धेनु का प्रतिनिधि रूप द्रव्य भी माना जाता है। अतः कम से कम ८ सद्य:प्रसूता गौओं का जो मूल्य होता हो उतना ऋत्विजों

को दक्षिणा में देना भी प्राचीन ऋषियों को अभीष्ट था।

**'दक्षिणा कैसे दें'**

दक्षिणादि देने की क्रिया किस प्रकार से करनी चाहिये, इस पर भी ध्यान देना आवश्यक है। निरादर भाव से, उपेक्षित रूप से या अभिमान से ऋत्विजों पर हम बड़ी कृपा कर रहे हैं इत्यादि प्रकार से दक्षिणा नहीं देनी चाहिये, अपितु ऋत्विजों ने हमारे प्रति बड़ी कृपा की है और उनकी कृपा से, परमात्मा की कृपा एवं प्रसाद प्राप्त होगा तथा यज्ञ की सफलता होगी, ऐसे पूजनीय एवं श्रद्धायुक्त भाव से, बड़े विनम्र होकर दक्षिणा देनी चाहिये। महर्षि स्वामी दयानन्दजी ने इसके लिये—"उत्तम प्रकार से यथा सामर्थ्य" देने को लिखा है। उत्तम प्रकार वही है जिसका ऊपर उल्लेख किया है और यथासामर्थ्य का तात्पर्य न्यून से न्यून दक्षिणा से लेकर जो अधिक से अधिक देने की सामर्थ्य हो वह दक्षिणा में देने योग्य है। महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती देने की वस्तुओं में—"आसन, अन्न (फलादि), जल (विविध पेय), वस्त्र, पात्र एवं धनादि का उल्लेख करते हैं। अतः सामर्थ्य शब्द से इन्हीं का न्यूनाधिक परिमाण ग्रहण किया जाना चाहिये।

**दक्षिणा के बाद क्या हो?**

दक्षिणा देने के पश्चात् ऋत्विजों को प्रथम भोजन कराना चाहिये। आजकल ऋत्विजों के भोजनादि के लिये तो कोई पूछताछ नहीं है। स्वयं के भोजन एवं अपने इष्ट मित्रों के चाय, नाश्ता या भोजनादि की व्यवस्था करते हैं। ऋत्विज भूखे रहे हैं, इसकी चिन्ता नहीं रहती है। परन्तु महर्षि स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं कि—हुत शेष घृतभाग मोहन भोग (यज्ञ-शेष) को यजमान एवं यजमान पत्नी को ग्रहण करना चाहिये परन्तु उससे भी पूर्व ऋत्विजों को यज्ञ की दक्षिणा देकर पुनः भोजन करावे और भोजनोपरान्त भी पुनः दक्षिणा दे के उन्हें सत्कार पूर्वक विदा करें। पश्चात् यजमान एवं यजमान पत्नी यज्ञ शेष को पहले खाकर फिर भोजन कर। इस प्रसंग में महर्षि ने भोजन के बाद भी दक्षिणा देने को लिखा है। जैसा कि आर्यसमाजियों से अन्य जनों में भोजन के बाद दक्षिणा देने की प्रथा है। आर्यसमा-

जियों को भी यह व्यवहार प्रचलित करना चाहिये। यह भी वैदिक विधि है।

**'न्यून दक्षिणा से शूद्रत्व की वृद्धि'**

यज्ञ के प्रारम्भ में वरण में कुण्डल, अंगूठी, उत्तम वस्त्रादि और यज्ञ के अन्त में उतम दक्षिणा, पुनः भोजनोपरान्त दक्षिणा देने के लिये विधान किया है। कुछ लोग कहेंगे कि–यह तो बहुत हो जाता है। तो क्या आप चाहते हैं कि वैदिक विद्वानों को बहुत न दिया जावे और उनका शोषण ही होता रहे। वैदिक विद्वानों के शोषण से वेद की ही हानि हो रही है। हमारा समाज वेदप्रेमी होते हुये भी वेद-विहीन होता जा रहा है। हम भजन कीर्तन के एवं व्यर्थ के जोशीले व्याख्यानों के प्रवाह में बढ़े जा रहे हैं। इस प्रकार वेद और वैदिक विद्वानों की उपेक्षा से शूद्रत्व की वृद्धि हो रही है। और आस्तिक कहे जाने वाले समाज में नास्तिकता का साम्राज्य फल फूल रहा है। यह सामाजिक तथा जातिगत अपराध है। अतः इसका फल आर्य-समाज को बुरी तरह से भोगना पड़ेगा और भोगना पड़ रहा है। परिणामतः आज हमें कहीं भी उन्नति तो दृष्टिगोचर नहीं हो रही है अपितु सर्वत्र अवनति, कलह और विनाश ही दृष्टिगोचर हो रहा है। यह सब अपने उद्देश्य से विमुख होने का परिणाम है।

**दक्षिणा कब देवें ?**

यज्ञ की दक्षिणा यज्ञ के तुरन्त बाद ही देनी चाहिये, विलम्ब से नहीं। विलम्ब से देने से यज्ञ और दक्षिणा का स्वरूप विगड़ता है। महर्षि स्वामी दयानन्दजी ने पूर्णाहुति के उपरान्त ही इस क्रिया का विधान किया है, अतः दक्षिणा की क्रिया पूर्णाहुति के पश्चात् तुरन्त ही करनी चाहिये। तुरन्त दक्षिणा देने के लाभ और विलम्ब से दक्षिणा देने में दोष को प्रकारान्तर से ग्रन्थों में निम्न प्रकार प्रकट किया गया है :—

**"यज्ञो दक्षिणया सार्धं,**
**पुत्रेण च फलेन च।**
**कर्मिणां फलदाता चे-**
**त्येवं वेदविदो विदुः॥**
**कृत्वा कर्म च तस्यैव,**
**तूर्णं दद्याच्च दक्षिणाम्।**
**तत्कर्मफलमाप्नोति,**
**वेदैरुक्तमिदं मुने॥**

**कर्त्ता कर्मणि पूर्णे च,**
**तत्क्षणं यदि दक्षिणाम् ।**
**न दद्याद् ब्राह्मणेभ्यश्च,**
**दैवेनाज्ञानतोऽथवा ।।**
**मुहूर्त्ते समतीते तु,**
**द्विगुणा सा भवेद् ध्रुवम् ।**
**एकवरात्रे व्यतीते तु,**
**भवेत् शतगुणा च सा ।।**
**त्रिरात्रे तद्दशगुणा,**
**सप्ताहे द्विगुणा ततः ।**
**मासे लक्षगुणा प्रोक्ता,**
**ब्राह्मणानां च वर्धते ।।**
**संवत्सरे व्यतीते तु सा,**
**त्रिकोटिगुणा भवेत् ।।**

अर्थात् यज्ञ दक्षिणा के साथ पुत्र और फल के द्वारा यजमान को फलदाता होता है। ऐसा वेद के जानने वालों का अभिमत है। यज्ञ की समाप्ति पर तुरन्त ही दक्षिणा प्रदान करने से यज्ञ का फल प्राप्त होता है, ऐसा वेदों में प्रतिपादित किया है। यदि यजमान ऋत्विजों को यज्ञ के पश्चात् उसी क्षण दक्षिणा अज्ञान् से या अन्य कारणों से नहीं देता है तो एक मुहूर्त बीतने पर उस दक्षिणा की मात्रा दुगुनी देनी चाहिये। यदि एक रात्रि का विलम्ब दक्षिणा देने में हो जावे तो सौ गुणा अधिक देना चाहिये। तीन रात्रि का विलम्ब हो जाने पर सौ गुणे का दश गुणा अर्थात् सहस्र गुणा अधिक दक्षिणा देनी चाहिये। एक सप्ताह का विलम्ब दक्षिणा देने में हो जाने पर उसका दो गुणा अर्थात् दोह जार गुणा दक्षिणा देनी चाहिये यदि मास का विलम्ब हो जावे तो एकलाख गुणा और एक वर्ष का विलम्ब दक्षिणा देने में हो जावे तो ३ करोड़ गुणा दक्षिणा देनी चाहिये। यह सब विवरण दक्षिणा को तुरन्त देने के महत्व को प्रकट करता है। १ वर्ष के व्यतीत होने पर भी दक्षिणा के न देने पर यज्ञ का फल नष्ट हो जाता है, ऐसा विधान किया है।

**'दक्षिणा का अर्थ'**

दक्षिणा शब्द "दक्ष" धातु से बनता है, जिसका अर्थ "वृद्धि और शीघ्रता" है। अतः दक्षिणा से यजमान के यज्ञ के फल की वृद्धि होती है और शीघ्रता से भी होती है, यह ज्ञात होता है। इसीलिये प्राचीन काल से आज तक यही मान्यता चली आ रही है कि यज्ञ में दक्षिणा अवश्य देनी चाहिये और तुरन्त देनी चाहिये, अन्यथा फल की

प्राप्ति नहीं होती है। वेद ने दक्षिणा को यज्ञपत्नी कहकर उसका महत्व प्रकट किया है और उस दक्षिणा का नाम "स्तावा" परमात्मा की ओर से निर्धारित किया होने से तो और भी विशेष महत्व हो जाता है। वेद के इसी अर्थ को प्रकट करने के लिये प्राचीन भाष्यकारों ने "दक्षिणा वै स्तावा। दक्षिणाभिर्हि यज्ञः स्तूयते"–कहा है। अर्थात् यज्ञ को दक्षिणा का नाम "स्तावा" है क्योंकि दक्षिणा से ही यज्ञ की प्रशंसा होती है। अतः दक्षिणा का महत्व समझना चाहिये।

### "वेद में दक्षिणा का महत्व"

ऋग्वेद में दक्षिणा की प्रशंसा में कुछ मंत्र हैं। उनमें बताया है कि –"दक्षिणा देने वाले यजमान दक्षिणा के प्रभाव से सात माताओं का दोहन प्राप्त करते हैं। दक्षिणा के प्रभाव से यजमान को महान श्रेष्ठमार्ग प्राप्त होता है। दक्षिणा देने वाले आयु को अनेक सुखों को और मोक्ष को प्राप्त करते हैं" इत्यादि।

दक्षिणा का महत्व वेद में है तथा प्राचीन ऋषियों ने भी इसका प्रतिपादन किया है। महर्षि स्वामी दयानन्दजी ने भी किया है, अतः इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये और यथाशक्ति, श्रद्धापूर्वक, बड़े सत्कार से देना चाहिये। ऋत्विजों को दी हुई दक्षिणा वेद को ही दी जा रही है, या वेद का ही यह सम्मान करना है तथा वेद को अर्पण किया गया धन परमात्मा को ही भेंट हो रहा है एवं इससे परमात्मा की प्रीति एवं प्रसन्नता प्राप्त होगी, ऐसा समझकर दक्षिणा देनी चाहिये।

### "अनेक दक्षिणाएँ"

ऋत्विग्वरण एवं यज्ञान्त की प्रमुख दक्षिणा के अतिरिक्त ब्रह्मपीठ दक्षिणा भी दी जाती है। यज्ञान्त की दक्षिणा से पूर्व सर्वप्रथम इसे ही ब्रह्मा के सामने की चौकी पर रखे वेद को अर्पित की जाती है। यह वेद का पृथक् भाग रखना पड़ता है और वह ब्रह्मा का भाग होता है। इससे वेदादि ग्रन्थों के संरक्षण एवं क्रयादि में सहायता होती है। यह प्रथा उत्तम भी है। इसे भी प्रचलित करना चाहिये। ब्रह्मपीठ दक्षिणा के पश्चात् ब्रह्मा को दक्षिणा देनी चाहिये, पुनः अन्य ऋत्विजों को देना चाहिये। ब्रह्मा की दक्षिणा से

आधी दक्षिणा अन्य ऋत्विजों को देना चाहिये। दक्षिणा में आसन, पात्र, फल, मेवा, अन्न, उत्तम वस्त्र एवं द्रव्य देना चाहिये। ऋत्विजों को वस्त्र आदि देते समय उनकी पत्नियों के लिये भी यथासंभव उत्तम वस्त्र आभूषण देने चाहिए।

**'भूयसी दक्षिणा एवं भोजन की दक्षिणा'**

इसके अतिरिक्त भूयसी दक्षिणा भी दी जाती है। मुख्य दक्षिणा के अतिरिक्त जो दक्षिणा बाद को दी जाती है और यज्ञ में उपस्थित सर्व सामान्य विद्वान् ब्राह्मणों को भी सत्कारार्थ जो द्रव्यादि दिया जाता है उसे भूयसी दक्षिणा कहते हैं। यह क्रिया भी वैदिकों के संरक्षण के लिए उत्तम है। इसके पश्चात् ऋत्विजों को सत्कारपूर्वक सबसे पृथक्रूप में भोजन यजमान एवं यजमान पत्नी करावें और भोजनोपरान्त भी दक्षिणा देवें। इतनी दक्षिणा की क्रिया करनी चाहिए।

**'यज्ञपात्र ऋत्विजों को दे देवें'**

ऋत्विजों को पात्र देने के सम्बन्ध में भी ध्यान देना आवश्यक है। अन्वाहार्य पात्र ऋत्विजों को दे देना चाहिए। अन्वाहार्य पात्रों का संस्कारविधि में लक्षण निम्न प्रकार लिखा है—'**पुरुषचतुष्टयाहारपाकपरिमाणार्थम्**"—अर्थात् ऐसे पात्र जिनमें ४ व्यक्ति का भोजन बन सके। इसके अतिरिक्त यज्ञ के लिए जो पात्र आते हैं वे भी यज्ञ-समाप्ति पर ऋत्विजों को ही दे देने चाहिएँ। परन्तु आजकल इस बात को न समझकर यजमान उन्हें अपने पास ही रखते हैं। यज्ञ का तात्पर्य है कि देवपूजा, सगतीकरण और दान। अतः यज्ञ के लिए आये पात्रादि भी इसी निमित्त हुए। जो यज्ञ के लिए पात्र लाये जाते हैं उन से देवपूजा अर्थात् होम किया जाता है और उनका होम कार्यों में संगतीकरण-उपयोग किया जाता है। दोनों प्रयोजन सिद्ध हो जाने पर उन पात्रों का ऋत्विजों को प्रदान कर देने से यज्ञ का पूर्ण अर्थ पात्रों में भी घटित हो जाता है। अतः यज्ञ निमित्त आये पात्रादि यजमान अपनी सम्पत्ति न समझकर उनको ऋत्विजों को ही दे देना चाहिए। अन्यथा दान की वस्तु का वह स्वयं उपभोक्ता और अधिकारी बनने का दोषी हो हो जाता है और यज्ञ के अर्थ को नष्ट करता है।

[ शेष पृष्ठ ३० पर ]

# स्वास्थ्य और जीवन

★ डा० प्राण नाथ शर्मा

किसी ने सच कहा है कि पहला सुख नीरोगी काया अर्थात् दुनिया में सबसे पहला सुख है शरीर का का नीरोग अर्थात् स्वस्थ होना जो वास्तव में सच है। मनुष्य को दुनिया की प्रत्येक वस्तु सुन्दर और सुखकर लगती है यदि उसका शरीर स्वस्थ होता है। रोगी मनुष्य को दुनिया का कोई भी सुख अच्छा नहीं लगता, यही कारण है कि जब कोई व्यक्ति बीमार होता है तो उसे अच्छे से अच्छे फल, दूध, भोजन खाने की जरा भी इच्छा नहीं होती और यदि कुछ खाता भी है तो उसे इन वस्तुओं का तनिक भी स्वाद नहीं आता है। स्वस्थ मनुष्य प्रसन्न और खुश नजर आता है। उस का शरीर हलका, सुन्दर एवं सुगठित होता है, वह उछलता है, कूदता है, मुस्कराता है, हँसता है और गाने गाता है, उसे कोई चिन्ता नहीं सताती है। वह अपने काम को मन लगाकर फुर्ती से करता है। वह निर्भीक एवं साहसी होता है और गहरी नींद सोता है। लेकिन आज हम देख रहे हैं कि चारों ओर रोग फैल रहे हैं नित्य नई बीमारियाँ सामने आ रही हैं। यह कारण नहीं कि संसार के स्वास्थ्य शास्त्री तथा वैज्ञानिक रोग वृद्धि की ओर ध्यान नहीं दे रहे बल्कि संसार भर के वैज्ञानिक और स्वास्थ्य शास्त्री रोगों को नष्ट करने वाली दवाइयों की खोज दिन-रात कर रहे हैं। भारत में लोगों का स्वास्थ्य अधिक गिर रहा है यहाँ पर दिनों दिन रोगियों की संख्या अधिक होती जा रही है।

मेरा ये निश्चित मत है कि यदि कोई मनुष्य अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखे और स्वास्थ्य के उन नियमों का पालन करे जो कि स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है तो उसे कभी रोग नहीं सतायेगा। अगर किसी को कुछ रोग है भी तो इन नियमों के पालन करने से वह रोग

बिना ओषधि ही दूर हो जायेगा। शरीर स्वस्थ एवं नीरोगी हो जायेगा स्वास्थ्य के नियमों के अन्तर्गत शरीर के लिए वह बुनियादी जरूरतें आती हैं जिन पर शरीर आधारित है और ये हैं हवा, पानी, भोजन, ब्रह्मचर्य, व्यायाम तथा विश्राम। पाठक कहेंगे कि हवा, पानी, भोजन, विश्राम तो सभी करते हैं इसमें अनोखी कौन सी बात है। सभी इनका उपयोग करते हैं, लेकिन सभी इनका उपयोग इस रीति और मात्रा में नहीं करते जैसा कि करना चाहिए और इसी लिए स्वास्थ्य नष्ट होता है। नीचे इन सभी के बारे में संक्षेप में लिखा जाता है कि ये सभी वस्तुएँ आप के शरीर को स्वस्थ रखने के लिए क्यों आवश्यक हैं और आप इनका किस प्रकार से उपयोग करके अपने स्वास्थ्य को लाभ पहुँचा सकते हैं।

**हवा :—**

हवा मनुष्य के लिए उसकी सब से पहली जरूरत है मनुष्य और किसी भी वस्तु के बिना कुछ समय तक रह सकता है लेकिन हवा के बिना एक मिनट भी जीवित नहीं रह सकता इसी कारण ईश्वर ने इसे मनुष्य को मुफ्त और असीमित मात्रा में दिया है। हम श्वास-प्रश्वास के रूप में मुख्य रूप में हवा का उपयोग करते हैं। श्वास अन्दर की ओर खींचते समय हम शुद्ध वायु शरीर के अन्दर लेते हैं और श्वास बाहर फैंकते समय गन्दी हवा निकालते हैं। इस साँस को लेने और निकालने की क्रिया को हमारे दो फेफड़े करते हैं। हमारे शरीर में जो प्रयोग होने के बाद रक्त गन्दा हो जाता है उसे शुद्ध वायु साफ करती है इस प्रकार से पता चलता है कि शुद्ध और साफ वायु हमारे लिए कितनी आवश्यक है। इसके लिए चाहिए कि प्रतिदिन हम प्रातःकाल बाहर खुली हवा में घूमें।

सुबह की ताजी हवा स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभदायक है हमें सदा लम्बे सांस लेने का अभ्यास करना चाहिए, जिससे फेफड़ों की गन्दगी साफ रहे। सदा ऐसे मकान में रहना चाहिए जहाँ हवा खूब आती-जाती हो सोने का स्थान विशेष रूप से हवादार होना चाहिए जब तक अधिक ठंड न पड़े कमरे के अन्दर नहीं सोना चाहिए। सोते समय कमरे की खिड़कियों तथा रोशन-

दानों को खुला रखना चाहिए । ताकि पर्याप्त मात्रा में हवा आती रहे तथा कभी भी मुँह ढककर नहीं सोना चाहिए ।

**पानी :—**

हवा के समान ही पानी भी हमारे लिए अत्यधिक आवश्यक है । हमारे शरीर का २/३ भाग पानी ही है । शरीर में पानी की मात्रा कम होने पर शीघ्र मृत्यु हो जाती है । हमारे रक्त, माँस, हड्डी, मज्जा आदि के लिए भी जल एक आवश्यक तत्व है । जल में कुछ अंशों तक लवण तथा आक्सीजन तत्व भी घुले हुए होते हैं जो कि हमारे शरीर के लिए अति आवश्यक हैं । पानी पसीने के रूप में हमारे शरीर की गन्दगी को भी बाहर निकालता है । जिस प्रकार से शुद्ध हवा हमारे लिए आवश्यक है उसी प्रकार शुद्ध तथा साफ पानी भी हमारे लिए आवश्यक है । गन्दे पानी के पीने में अनेक रोग उत्पन्न होते हैं । इसलिए हमें चाहिए कि सदा इस बात का ध्यान रखें कि जो पानी हम पी रहें हैं वह साफ हो उसमें किसी प्रकार की गन्दगी न हो अगर कहीं पर पानी गन्दा होने का सन्देह हो तो पानी को उबाल कर पीना चाहिए, पानी को कपड़े में छानकर पीना भी अच्छा है । प्रत्येक व्यक्ति को प्रति दिन काफी मात्रा में पानी पीना चाहिए । शरीर में जब पानी की मात्रा होती है, तो हमें प्यास लगती है उस समय प्यास को कभी भी रोकना नहीं चाहिए, परन्तु पानी पीना चाहिए प्रातःकाल शौच जाने से पहले एक गिलास पानी पीना स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभप्रद है– इससे कब्ज दूर होती है और शौच खुलकर आती है ।

**भोजन :—**

मनुष्य को जीवित रहने के लिए भोजन से हमारे शरीर की आवश्यकता होती है । भोजन से हमारे शरीर की सभी आवश्यकताएँ पूर्ण होती हैं । सारे दिन काम-धन्धा करने से हमारी जो शक्ति नष्ट होती है वह हमें भोजन से प्राप्त होती है । प्रत्येक मनुष्य कुछ न कुछ जिन्दा रहने के लिए खाता है लेकिन उसे कैसा खाना चाहिए, कितना खाना चाहिए और कब खाना चाहिए इस बात को बहुत कम लोग ही जानते और समझते हैं । हमें अपने खान पान के विषय में बहुत सावधान रहना

चाहिए। हमें देखना चाहिए कि जो भोजन हम करने जा रहे हैं वह पौष्टिक हो, स्वच्छ व ताजा हो, तथा भली प्रकार से पका हुआ हो। हमें भोजन को अच्छी तरह से चबा-चबा कर आराम से खाना चाहिए। ऐसा करने से एक तो हमें भोजन और का अधिक स्वाद आएगा दूसरे वह शीघ्र ही हजम हो जाएगा। खाना तभी चाहिए जब ापको काफी भूख लगे तथा इतना ाना चाहिए कि पेट में भारीपन हो। दोपहर की अपेक्षा रात का भोजन अधिक हल्का होना चाहिए। हर समय खाने की आदत कभी नहीं रखनी चाहिए, इससे आँतों को विश्राम नहीं मिल पाता है और स्वास्थ्य खराब हो जाता है। जहाँ तक हो सके भोजन सदा सादा ही करना चाहिए। अधिक चटपटी-मसालेदार वस्तुएँ स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद हैं।

**ब्रह्मचर्य :—**

स्वस्थ रहने के लिए यह भी आवश्यक है कि हम ब्रह्मचर्य का पालन करें। बुजुर्गों ने तो कहा है ब्रह्मचर्य ही जीवन है अर्थात् जीवन तभी है जब उसमें ब्रह्मचर्य का पालन है। आज-कल अधिकांश लोग ब्रह्मचर्य का अर्थ गलत लगाते हैं और कहते हैं कि ब्रह्मचर्य का पालन हो नहीं सकता। लेकिन वास्तव में इसका अर्थ मन-वचन और कर्म से पवित्र रहना है। एक व्यभिचारी व्यक्ति कभी भी अच्छे स्वास्थ्य वाला नहीं हो सकता है। झूठ बोलने और क्रोध करने से मन पर बुरा प्रभाव पड़ता है और मन पर प्रभाव पड़ने से स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है इसलिए हमें चाहिए कि हम जहाँ तक हो सके पर-निन्दा क्रोध, द्वेष भावना, गन्दे विचारों से बचें तथा मन वचन और कर्म से पवित्र रहें, विषय-वासनाओं से अपने आप को बचाएँ और संयमी जीवन व्यतीत करें और अपने आप को प्रसन्न रखने की चेष्टा करें। साथ ही दूसरों को भी खुश करके ही आप स्वयं खुश एवं स्वस्थ हो जायेंगे।

**व्यायाम :—**

व्यायाम स्वास्थ्य के लिए परमावश्यक है। मनुष्य का शरीर सारे दिन काम करते समय इधर-उधर तुड़ता-गुड़ता रहता है जिससे उसका स्नायुसंस्थान शिथिल तथा

ढीला हो जाता है। उसे यथावत् स्वस्थ, सुन्दर और सुगठित रखने के लिए प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह कुछ न कुछ व्यायाम करे। प्रत्येक व्यक्ति को कुछ न कुछ समय व्यायाम के लिए जरूर निकालना चाहिये। व्यायाम सुबह या शाम के समय ही करना चाहिए। सुबह का व्यायाम अधिक लाभप्रद होता है इसलिए जहाँ तक हो सके सुबह ही व्यायाम करना चाहिए। व्यायाम के अन्तर्गत कई प्रकार के आसन आते हैं। हर आदमी को चाहिए कि अपनी शक्ति तथा समय के अनुसार कुछ आसन चुन ले और उनका नित्यप्रति अभ्यास करे। व्यायाम का एक अंश प्राणायाम भी है। व्यायाम सदा ऐसे स्थान पर करना चाहिए जहाँ शुद्ध वायु काफी मात्रा में आ-जा रही हो। खुले स्थान पर व्यायाम करना अधिक लाभदायक है। बूढ़े, बच्चों तथा कमजोर व्यक्तियों के लिए सुबह की सैर ही एक अच्छा व्यायाम है।

**विश्राम या (निद्रा) :—**

विश्राम अथवा नींद से हमें अपने शरीर की खर्च की हुई शक्ति फिर प्राप्त हो जाती है। इसलिए हम कह सकते हैं कि शक्ति-संचय के लिए नींद सबसे जरूरी चीज है। यही कारण है कि थका-हारा मनुष्य भी जब गहरी नींद से उठता है तो अपने को हलका और शक्तिवान् पाता है। चौबीस घण्टों में मनुष्य को सोलह घण्टे काम करना चाहिए और आठ घण्टे सोना चाहिए। विश्राम और निद्रा एक ही बात है। आठ घण्टे से अधिक सोना विलास बढ़ाता है और आठ घण्टे से कम सोना आलस्य की वृद्धि कार्यक्षमता की कमी और पाचन शक्ति की क्षति करता है। रात दस बजे से पहले ही सो जाना चाहिए और प्रात.काल सूर्य उदय होने से पूर्व बिस्तर को त्याग देना चाहिए। श्रम करने वालों को प्रगाढ़ निद्रा प्राप्त होती है जो शरीर के कण-कण में नव-जीवन का संचार करती है। अंग-अंग में सुरोचकता एवं लावण्य पूर देती है। गहरी नींद से केवल शरीर ही स्वस्थ नहीं होता बल्कि बुद्धि, मन और चित्त भी हलका-फुलका और ताजा हो जाता है।

स्वस्थ तथा नीरोग रहने के

[ शेष पृष्ठ ३० पर ]

[ शेष पृष्ठ २९ का ]

लिए यह आवश्यक है। हम ऊपर लिखी बातों अथवा नियमों का पूर्ण रूप से पालन नहीं करते तो हमारा स्वास्थ्य बिगड़ता है और हम बीमार पड़ जाते हैं। इसलिए हमें दवाइयों की ओर न जाकर स्वास्थ्य के नियमों का पालन करना चाहिए। ऐसा करने से हमारा शरीर स्वस्थ एवं सुन्दर होगा तथा हम दीर्घायु को प्राप्त होंगे।

—

[ शेष पृष्ठ २४ का ]

**'दक्षिणा देने का क्रम'**

दक्षिणादि द्वारा सम्मान करते समय सर्वाधिक सम्मान ब्रह्मा का, तदुपरान्त अन्य ऋत्विजों का तदुपरान्त यज्ञ के अन्य सहयोगी व्यक्तियों, उपदेशकों, प्रचारकों एवं अन्य महानुभावों का करना चाहिए। सब धान २२ पसेरी न्याय के अनुसार व्यवहार नहीं करना चाहिए। आशा है आर्यजन दक्षिणादि के व्यवहार के बारे में इस पर ध्यान देकर सुधार करेंगे।

# साहित्य समालोचना

**दयानन्द दिग्विजय** :—लेखक एवं प्रकाशक—श्री धर्म मित्र आर्य सेवक, डाकघर मनीमाजरा, जिला अम्बाला (हरियाणा)। पृष्ठ संख्या २१६+८=२२४, आकार $\frac{२० \times ३०}{८}$ पेजी। मूल्य अजिल्द ३-५० रु०, सजिल्द ४-०० रु०।

जैसा कि पुस्तक के नाम से ही प्रकट है यह पुस्तक महर्षि दयानन्द के सम्बन्ध में है परन्तु यह ऋषि की शुष्क जीवनी मात्र नहीं है। जीवनी के साथ-साथ पुस्तक में और भी उपादेय सामग्री है।

पुस्तक के आरम्भिक ८३ पृष्ठों में भारत की दुर्दशा का चित्रण करते हुए यह बतलाया गया है कि किस प्रकार ईसाई-मुसलमान आदि भारत के आर्यों को ईसाई और मुसलमान बनाने में लगे हुए थे, पौराणिकों ने क्या-क्या मिथ्या धारणाएँ एवं विश्वास फैलाए हुए थे। जब महर्षि दयानन्द भारतीय रंगमञ्च पर अवतीर्ण हुए तो उनके सिंहनाद से ईसाई और मुस्लमान काँप गये, सनातनधर्मी भी आर्य-समाज की शरण में पहुँचे। उन्होंने अपनी व्यवस्थाएँ बदल दीं। सनातनधर्म के दिग्गजों ने पुराणों में प्रक्षेप स्वीकार किया, नारी जाति को वेदाध्ययन का अधिकार प्रदान किया, शुद्धि के द्वार सब के लिए खोल दिये, दलितोद्धार का कार्य आगे बढ़ा, बाल विवाह रुका। न केवल सनातनियों पर अपितु पारसी, बौद्ध, जैनमत आदि भी प्रभावित हुए। पाश्चात्य विद्वानों के वेद-विषयक विचारों में भी क्रान्ति आई। पृष्ठ ८४ से १६५ तक महर्षि के जीवन को एक सुन्दर एवं अनूठे क्रम में रक्खा गया है जो पाठक पर अपना गम्भीर प्रभाव छोड़ता है। कुछ बातें ऐसी भी हैं जो सर्वथा नूतन हैं अभी तक किसी जीवन चरित्र में नहीं आई हैं।

पृष्ठ १६६ से १६३ तक वैदिक सिद्धान्तों यथा—ईश्वरीय ज्ञान वेद,

वेदाध्ययन का अधिकार, वण-व्यवस्था मृतक श्राद्ध, नमस्ते, मूर्तिपूजा आदि विषयों पर सुन्दर विवेचन है। अन्तिम पृष्ठों में दो महत्त्वपूर्ण विषय हैं—"रामायण काल में यज्ञ पर अगाध श्रद्धा" और "राजा भोज के समय में संस्कृत का प्रचार।"

इस प्रकार यह पुस्तक बहुत हो महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी बन गई है। हम लेखक को इस सुन्दर ग्रन्थ के लेखन और प्रकाशन पर हार्दिक साधुवाद एवं वधाई देते हैं साथ ही हम चाहते हैं कि प्रत्येक आर्य गृह में और प्रत्येक समाज मन्दिर में इस पुस्तक की एक प्रति अवश्य होनी चाहिये। —"विद्यार्थी"

## हमारी प्रकाशित व प्रसारित पुस्तकें

| | | |
|---|---|---|
| तत्त्वज्ञान | महात्मा आनन्द स्वामी | ३-०० |
| प्रभुदर्शन | ,, | २-५० |
| प्रभुभक्ति | ,, | १-५० |
| आनन्द गायत्री कथा | ,, | ०-७५ |
| एक ही रास्ता | ,, | १-०० |
| शंकर और दयानन्द | ,, | ०-५० |
| सत्यनारायण व्रत कथा | ,, | ०-७५ |
| भक्त और भगवान | ,, | १-०० |
| मानव जीवन गाथा | ,, | १-०० |
| उपनिषदों का संदेश | ,, | १-५० |
| घोर घने जंगल में | ,, | २-५० |
| महामन्त्र | ,, | १-०० |
| सुखी गृहस्थ | ,, | १-०० |
| बोध कथाएँ प्रथम भाग | ,, | १-५० |
| बोध कथाएँ द्वितीय भाग | ,, | १-५० |
| बोध कथाएँ दोनों भाग एक जिल्द में | ,, | ३-५० |
| विद्यार्थी लेखावली | ब्र. जगदीश विद्यार्थी | ३-०० |
| वैदिक प्रश्नोत्तरी | ,, | २-०० |
| वेद सौरभ | ,, | २-०० |
| ईशोपनिषद | ,, | २-०० |
| वैदिक उदात्त भावनाएँ | ,, | २-०० |
| कुछ करो कुछ बनो | ,, | २-०० |

| | | |
|---|---|---|
| मर्यादा पुरुषोत्तम राम | ब्र. जगदीश विद्यार्थी | १-५० |
| विद्यार्थियों की दिनचर्या | ,, | १-५० |
| दिव्य दयानन्द | ,, | १-२५ |
| प्रार्थना प्रकाश | ,, | १-२५ |
| प्रभात वन्दन | ,, | -२५ |
| हास्य विनोद | ,, | १-०० |
| विष्णु पुराण की आलोचना | ,, | ०-४० |
| राधा स्वामी मत दर्पण | ,, | ०-२५ |
| ऋग्वेद शतकम् | ,, | १-०० |
| यजुर्वेद शतकम् | ,, | १-०० |
| सामवेद शतकम् | ,, | १-०० |
| अथर्ववेद शतकम् | ,, | १-०० |
| पूर्व और पश्चिम | प्रो. नित्यानन्द वेदालंकार | ७-५० |
| जीवन की राहें | ,, | ४-०० |
| प्रार्थना दीप | ,, | २-०० |
| सन्ध्या विनय | ,, | १-५० |
| सु-राज्य की रूपरेखा | ,, | ०-५० |
| भारतीय संस्कृति का इतिहास | पं. भगवद्दत्त | ६-०० |
| आर्य राजनीति के मूल तत्त्व | ,, | ०-३० |
| मन की अपार शक्ति | प्रो. सुरेशचन्द्र वेदालंकार | १-२५ |
| आकर्षक व्यक्तित्व कैसे बने ? | ,, | १-५० |
| हम सुखी कैसे रहें ? | पं. सत्यपाल शास्त्री | १-०० |
| महर्षि दयानन्द जीवन चरित्र | पं. इन्द्रविद्यावाचस्पति | १-५० |
| महर्षि दयानन्द | त्रिलोकचन्द्र विशारद | ०-७५ |
| दयानन्द चित्रावली | रामगोपाल विद्यालंकार | २-५० |
| दो सनातन सत्ताएँ | पं० रामचन्द्र देहलवी | १-०० |
| ईश्वर ने दुनियाँ क्यों बनाई ? | ,, | ०-४० |
| गीत भण्डार | पं. नन्दलाल | ३-०० |

| | | |
|---|---|---|
| व्याख्यान माला | स्वामी अच्युत्यानन्द | २-५० |
| बृहदारण्क उपनिषद कथामाला | स्वामी ब्रह्ममुनि | ३-०० |
| ईश-उपनिषद | पं. आर्य मुनि | ० ४० |
| केन-उपनिषद | ,, | ०-५० |
| प्रश्न | ,, | ०-७५ |
| मुण्डक | ,, | ०-३१ |
| माण्डूक्य | ,, | ०-६२ |
| एतरेय | ,, | ०-५० |
| तैत्तिरीय | ,, | १-२५ |
| श्वेताश्वतर उपनिषद | पं. भीमसेन | १-०० |
| आर्य समाज क्या है | म. नारायण स्वामी | ०-७५ |
| वैदिक सन्ध्या रहस्य | ,, | ०-३७ |
| वैदिक यज्ञ रहस्य | ,, | ०-३७ |
| विवाह और विवाहित जीवन | पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय | २-५० |
| स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग | पं. अत्रिदेव विद्यालंकर | ३-०० |
| दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह (उत्तरार्द्ध) | स्वामी दर्शनानन्द | २-५० |
| वेद परिचय | स्वामी वेदानन्द | ०-३७ |
| जीवन ज्योति | चमूपति एम. ए. | ४-०० |
| बाल ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका | पं. विश्वनाथ विद्यालंकार | ०-७५ |
| योगी की मधुशाला | प्रो. सत्यभूषण योगी | १-०० |
| योगी का वीर काव्य | ,, | २-५० |
| योगी का सोऽहं काव्य (ईशोपनिषद) | ,, | ५-२५ |
| आर्य सिद्धान्त दीप | पं. मदनमोहन विद्यासागर | १-२५ |
| गीति श्रद्धाञ्जलि | ( भजन ) | १-०० |
| महिला पुष्पाञ्जलि | ,, | ०-५० |

| | | |
|---|---|---|
| हिन्दु संगठन | स्वामी श्रद्धानन्द | १-०० |
| ओंकार व्याख्या | पं. अयोध्या प्रसाद | ०-२० |
| नमस्ते की व्याख्या | पं. सुखदेव | ०-२० |
| आत्म कथा | महर्षि दयानन्द | ०-४० |
| स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश | ,, | ०-१० |
| वेदान्तिध्वान्त निवारण | ,, | ०-१६ |
| वेद विरुद्ध मत खण्डन | ,, | ०-३७ |
| शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण | ,, | ०-३७ |
| आर्याभिविनय | ,, | ०-७५ |
| आर्योद्देश्यरत्नमाला | ,, | ०-१० |
| ऋग्वेद भाष्य का प्रथम सूक्त | ,, | ०-२५ |
| भ्रान्ति निवारण | ,, | ०-२७ |
| व्यवहारभानु | ,, | ०-२५ |
| भ्रमोच्छेदन | ,, | ०-१५ |
| गोकरुणानिधि | ,, | ०-२० |
| गृहस्थाश्रम | ,, | ०-६२ |
| काशी शास्त्रार्थ | ,, | ०-२० |
| सत्यधर्म विचार | ,, | ०-२५ |
| आर्यसमाज के नियमोपनियम | ,, | ०-१० |
| ईशोपनिषद | ,, | ०-२५ |
| बालशिक्षक | ,, | ०-३७ |
| यजुर्वेदमूल संहिता सजिल्द | ,, | २-५० |
| सत्य हरिश्चन्द्र नाटक | भारतेन्दु हरिश्चन्द्र | १-०० |
| नास्तिकवाद | देवेन्द्रनाथ शास्त्री | ०-५० |
| वेदों का महत्व | स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती | ०-२५ |
| ईश्वर प्राप्ति | ,, ,, | ०-१६ |
| ईश्वर विचार | ,, ,, | ०-१२ |

| | | |
|---|---|---|
| बालशिक्षा | स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती | ०-१५ |
| धर्म शिक्षा | ,, ,, | ०-१० |
| महर्षि दयानन्द | त्रिलोकचन्द्र विशारद | ०-७५ |
| स्वामी श्रद्धानन्द | ,, | ०-३७ |
| गुरु विरजानन्द | ,, | ०-५० |
| आदर्श सुधारक दयानन्द | देवेन्द्रनाथ मुखर्जी | ०-६२ |
| गुरुधाम एकांकी | चन्द्रनारायण सक्सेना | ०-५० |
| गीतावचनामृत | विष्णुमित्र | ०-३७ |
| आर्यसमाज के नियमों की व्याख्या | स्वामी सत्यानन्द | ०-५० |
| ब्रह्मचर्य जीवन | पं सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार | ०-५० |
| वैदिक धर्म शिक्षा | पं. शिवशर्मा | ०-२५ |
| गोरक्षा परम कर्तव्य | पं. धर्मदेव वि. मा. | ०-५० |
| आप क्या नहीं कर सकते ? | स्वेट मार्डन | १-०० |
| चिन्ता मुक्त कैसे हों ? | ,, | १-०० |
| हँसते हँसते कैसे जियें ? | ,, | १-०० |
| जो चाहें सो कैसे पायें ? | ,, | १-०० |
| अपना खर्च कैसे घटायें ? | ,, | १-०० |
| अवसर को पहचानो | ,, | १-०० |
| अपने आप को पहचानो | ,, | १-०० |
| सिगरेट बीड़ी कैसे छोड़ें | नरेन्द्रनाथ | १-०० |
| हँसना मना है। | योगेन्द्र कुमार | १-०० |
| ढोल की पोल | चिरंजीत | १-०० |
| दो सौ स्मॉल स्केल इण्डस्ट्रीज | रवि श्रीवास्तव | २-०० |
| एक लाख नौकरियाँ | अरविन्द | २-०० |
| स्वेतलाना | क्षितीश | २-०० |
| मुझे याद है | विमल मित्र | ३-५० |

| | | |
|---|---|---|
| अष्टोत्तर शतनाम मलिका | विद्यासागर वेदालंकार | ६-०० |
| गंगोत्री दर्शन | महावीरसिंह गहलोत | ४-०० |
| पंचयज्ञ प्रकाशिका | [सन्ध्या, हवन, स्वस्तिवाचन शान्ति प्रकरण शब्दार्थ सहित ] | ०-७५ |
| आर्य सत्संग गुटका | [ सन्ध्या हवन मोटे अक्षर ] | ०-४० |
| वैदिक यज्ञ प्रकाश | | ०-२० |
| हवन मन्त्र | | ०-१५ |
| सन्ध्या मंत्र | | ०-१० |
| सत्संग गुटका | ( छोटा साईज ) ६४ पृष्ठ | ०-२० |

**धार्मिक चित्र फोटो आदि**

| | | | |
|---|---|---|---|
| महर्षि दयानन्द रंगीन | | साइज २०×३० | १-५० |
| स्वामी श्रद्धानन्द एक रंग | | ,, | १-०० |
| महात्मा हंसराज | ,, | ,, | १-०० |
| पं. लेखराम | ,, | ,, | १-०० |
| स्वामी दर्शनानन्द | ,, | ,, | १-०० |
| पं. गुरुदत्त | ,, | ,, | १-०० |
| लाला लाजपतराय | ,, | ,, | ०-५० |
| महर्षि दयानन्द जीवन घटना | | साइज १५×२० | ०-५० |
| महर्षि की महत्ता अरविन्दघोष | ,, | २०×३० | ०-५० |

**गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली**

मुद्रक, प्रकाशक, विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली में मुद्रित कर वा वेदप्रकाश कार्यालय ४४०८ नई सड़क दिल्ली से प्रकाशित किया।

# वेद प्रकाश

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

वर्ष १६ | संस्थापक—गो[illegible]ासानन्द | वार्षिक मूल्य ५-००
अङ्क ८ | फाल्गुन २०२४ मार्च [illegible] | इस अङ्क का ४० पैसे



## पं० रामचन्द्र देहलवी लेखावली

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् तर्क शिरामणि पं० रामचन्द्र जी देहलवी अब इस संसार में नहीं रहे परन्तु उनका नाम, काम और यश सर्वदा अमर रहेगा। विद्वत्-शिरोमणि देहलवी जी की जन्म जयन्ती रामनवमी पर हम अपने पाठकों, ग्राहकों और सहयोगियों की सेवा में 'देहलवी-लेखावली' भेंट कर रहे हैं। इस लेखावली में देहलवी जी के ट्रैक्ट, लघु पुस्तकें संग्रहीत होंगी। आरम्भ में पण्डित जी की जीवनी और जीवन सम्बन्धी संस्मरण होंगे। यह ग्रन्थ संग्रहणीय होगा। विशेषाँक का मूल्य तीन रुपये होगा परन्तु वेदप्रकाश के ग्राहकों को निश्शुल्क मिलेगा।

आगामी मास में रामनवमी के पावन पर्व पर यह अंक निकल रहा है। जिन पाठकों ने प्रचारार्थ अधिक प्रतियाँ मंगानी हों निम्न प्रकार मूल्य २० ता० से पूर्व ही भिजवादें। लेखावली सीमित संख्या में ही छापा जा रहा है।

| | |
|---|---|
| एक प्रति के | ३-०० |
| ५ प्रति के | १२-०० |
| १० प्रति के | २२-०० |
| २५ प्रति के | ५०-०० |

शीघ्र ही अपनी प्रतियाँ सुरक्षित करालें। —विद्यार्थी

# महर्षि दयानन्द : जीवन और दर्शन

[ श्री नारायणदत्त सिद्धान्तालङ्कार ]

मूल्य चार रुपये

महर्षि दयानन्द का जीवनवृत्त और उनके प्रचारित सिद्धान्तों और विचारों का परिचय लेखक ने बड़ी ही रोचक शैली में प्रस्तुत किया है।

महर्षि का जीवन और विचार दर्शन एक साथ प्रस्तुत करने का उद्देश्य यही है कि पाठक जीवन चरित्र के साथ उनके विचारों का अध्ययन करते हुए महर्षि का अन्तर्दर्शन कर सकें।

———

# शंकराचार्य : जीवन और दर्शन

[ श्री नारायणदत्त सिद्धान्तालङ्कार ]

मूल्य ढ़ाई रुपये

प्रथम खण्ड शंकराचार्य के जन्मकाल से उनके समाधिलय तक का पूरा जीवन परिचय दिया गया है।

दूसरे खण्ड में शंकराचार्य के सुप्रसिद्ध सिद्धान्त अद्वैतवाद का मूल उद्धरणो सहित परिचय दिया गया है।

———

# मेरे अन्त समय का आश्रय श्रीमद्भगवत गीता

[ भाई परमानन्द ]

मूल्य पाँच रुपये

भाई परमानन्द को आजीवन कारावास भुगतते हुए जब जीवन की आशा न रही तो उन्होंने गीता का आश्रय लिया। ऐसे मार्मिक समय में गीता का जो विवेचन भाई जी ने किया है वह पढ़ने योग्य है।

प्राप्ति स्थान :

**गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६**

॥ ओ३म् ॥

सम्पादक—विजयकुमार फो० नं० २६२७६५

आदरी सहसम्पादक—ब्र० जगदीश विद्यार्थी फो० नं० २२१३२८

# लुप्त ज्ञान

★ वा० विष्णुदयाल, मारीशस

इंजील को ध्यानपूर्वक पढ़ा जाय तो मालूम होगा कि उस ग्रन्थ के आरम्भ में ही मानव-पतन का इतिहास मिलता है।

आदम को ईश्वर का कृपाभाजन नहीं बताया गया। वह ईश्वर के क्रोध का शिकार था। वह पतन की ओर अग्रसर हुआ था।

वैदिक धर्म से दूसरी ही ध्वनि निकलती है। आदिम मानव परमात्मा के प्रिय पुत्र थे। उनमें से चार पर वेद प्रकट हुए। वेद ज्ञान से भरपूर हैं।

इसके विपरीत इंजील ज्ञान से दूर रहती है। एदन के उद्यान में जब हवा के प्रभाव में आदम आया उसने ज्ञान-वृक्ष का फल खाया। फल खाना बुरा बताया गया।

वैसे तो फलाहार आदर्श आहार है ही, पर जब फल ज्ञान प्रदाता हो तो वह उस से भी अच्छा होता है।

संस्कृत का थोड़ा-बहुत ज्ञान भी जिसको हो वह देख लेगा कि इस कथा में दो संस्कृत शब्द हैं। आदिम पुरुष को आदम कहा गया।

इस कथा ने हजारों साल लोगों को एक उद्यान-विशेष की खोज करने की प्रेरणा दी। मारीशस के पास पड़े हुए सेशेल द्वीपसमूह को एदन बताया जाता था। वहाँ के निवासियों में कई लोग हैं जो आदम नाम से याद किये जाते हैं।

जहाँ इंजील में एदन और आदम व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ हैं वहाँ संस्कृत में न आदिम पुरुष किसी नर-विशेष का नाम है और न उद्यान एक व्यक्तिवाचक संज्ञा है। सिन्धु की तरह उद्यान जातिवाचक संज्ञा है। वेद में 'सिन्धु' बहुवचन में 'सिन्धवः' का रूप धारण करता है।

ज्ञान से मनुष्य पहचाना जाता है। इंजील की कथा से ज्ञात होता है कि जिन दिनों में यह पुस्तक रची जा रही थी यह मानी हुई बात थी कि मानव उन्नतावस्था में था, बाद में उसका पतन हुआ।

जब हम आगे जाते हैं तो कई स्थलों पर ऐसे वचन पाते हैं जिनके अर्थ ये ही होते हैं कि उस युग के लोग जानते थे कि बहुत पहले विद्वान्, ऋषि, मुनि हो चुके थे। फ्रेंच में जो ईसाई बच्चों को बाइबल-सम्बन्धी पुस्तक पढ़ायी जाती है उसमें यहाँ तक लिखा है कि इब्राहीम के जमाने में जो पहले ईश्वरीय ज्ञान मिला था, उस का कम स्मरण होने लगा था। †

इतना तो बहुतों को विदित है कि ईसा के प्रवचन एक गिरि पर हुए थे। उन प्रवचनों में उन्होंने श्रोताओं से कहा, "तुमने वही सुना जो प्राचीन काल में लोगों से कहा गया था—

Ye have heard that it was said by them of old..."

ईसाइयत के समान इस समय इस्लाम संसार के कोने-कोने में फैला हुआ है। यह धर्म अरब से यूरोप, भारत, अफ्रीका आदि स्थानों पर शनैः-शनैः पहुँचा। अरब ही के लोग तो हैं जिन्होंने भारत का ज्ञान पश्चिम में पहुँचाया था। वहाँ श्रेष्ठ जनों, विद्वानों को मालूम था कि भारत विद्या का भण्डार है।

पाकिस्तान के जनक कवि इकबाल भी इस बात को मानते थे। उन्होंने सुन्दर भाषा में अपने पैगम्बर का आदर करते हुए एक दिन उनकी एक चेष्टा पर प्रकाश डाला।

इस्लाम ने एकेश्वरवाद का प्रचार किया। कवि का कहना है कि यह वाद शीतल वायु के समान शान्ति प्रदान करता है। एक दिन हज़रत मुहम्मद साहब से प्रश्न किया गया कि पूर्व की ओर मुँह घुमा कर आप क्यों खड़े हैं?

† आलें विरचित Bible Scolaire, पृष्ठ १२

उन्होंने उत्तर दिया, भारत की तरफ से ही वहदत या एकेश्वरवाद आया है। कवि के अपने शब्द हैं :—

"मीरे अरब (ह. मु. सा.) को
आई ठण्डी हवा जहाँ से,
वहदत की लै सुनी थी,
दुनिया ने जिस मकाँ से,
मेरा वतन वही है,
मेरा वतन वही है ॥"

अभारतीय साहित्यकार भी हमारे ज्ञान को युग-युग में पसन्द करके उसे अपनाते रहे। पहले पूर्व ने, तब पश्चिम ने इस ज्ञान से लाभ उठाया।

परीकथा के फ्रेंच लेखक फ़ोंतेन की ही तरह फ़्लोरियाँ भी परीकथा लिखा करते थे जिनमें से एक है 'एक लँगड़े' और 'एक अँधे' के बारे में।

कवि फ़्लोरियाँ ने अपनी कविता के आरम्भ में लिखा कि यह कथा पूर्व से आई है। वे लिखते हैं :—

I'a town of Asia time was when
Lived two miserable men,
Palsied one the other blind;
Both the poorest of their kind,
'I have my ills'—thus he (the blind) spake—
'You have yours; then let us make
Common cause; they will be, thus
More endurable by us.'—

हम जिन दिनों में प्राथमिक स्कूल में पढ़ते थे, मूल कविता कण्ठाग्र करनी पड़ती थी। उसमें से वे लाइनें निकाल दी गईं थीं जहाँ कहा गया है कि हम पूर्व के ऋणी हैं और जहाँ पर यह कथा कही जाती है कि दो दुःखी जन मिल कर अपना दुःख घटाने लगे! यह डर बना रहा कि कहीं पूर्व या एशिया के लोग यह जान न जायें कि उनके पूर्वज शिक्षक थे। जिन दिनों में हम अध्यापक बने, एक स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तक पढ़ाई जाती थी। उसमें 'लोटा' हिन्दी शब्द आया था। उसे निकलवा कर ही अभारतीय दम ले कर बैठे।

सांख्य में उक्त कथा मिलती है। पुरुष उस दर्शन के अनुसार प्रकृति के सान्निध्य में रहता है। अकेला पुरुष रहे तो उसमें देखने की शक्ति नहीं होती। आँख तब देख पाती है जब वह शरीर में पड़ी हुई हो। लँगड़ा आदमी या वह आदमी जिसे पक्षाघात हुआ था, चल नहीं सकता था और अंधा देख नहीं सकता था। दोनों दुःखी थे।

अंधा प्रकृति की जगह में आता है। प्रकृति देख नहीं पाती। पत्थर, लोहा,

मट्टी, जल आदि देखने में असमर्थ हैं। प्रकृति देह का रूप धारण करे और उसमें नेत्र पड़ जायें तो वह देखने के लायक हो जाती है।

फ़्लोरियाँ की परीकथा यूरोपीय संस्कृतज्ञ समझने की कोशिश करते तो यह कदापि न कहते कि यह शास्त्र नास्तिक है। जब हम कहने लग जाते हैं कि प्रकृति से भिन्न और कुछ है, हम नास्तिक नहीं रहते। ये संस्कृतज्ञ इतना समझ नहीं सकते थे कि सांख्य योग का साथ चलता है जिसमें ईश्वर का विषय आता है। ये शास्त्र एक-दूसरे के पूरक हैं जिस भाँति फ़्लोरियाँ के दो पात्र एक-दूसरे के पूरक थे :—

You and I are thus complete.

पश्चिम में वेदों का भी आदर होता रहा। वहाँ एक ग्रन्थ रचा गया जिसका नाम "एद्द" है। अंग्रेजों को यह नाम इतना अच्छा लगा कि उन्होंने अपने एक प्राचीन ग्रन्थ का "अंग्रेजी एद्द" नाम रखना आरम्भ किया।

यह निर्णय अभी किया न जा सका कि अरब में विद्वानों को वेद से जब परिचय हुआ था ठीक उन्हीं दिनों में एद्द रचा गया या नहीं।

स्वामी भूमानन्द जी ने कवि लावी की कविता से वे लाइनें निकाल कर अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ की भूमिका में दी हैं जहाँ चारों वेदों के नाम आते हैं। अरब के लोग यही नहीं जानते थे कि वेद हैं अपितु वे यह भी जानते थे कि वे संख्या में चार हैं।

महाकवि पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने कवि की भाषा में वही सब कुछ कह चुके हैं जो पाठक अभी तक पढ़ कर जान गये हैं :—

"छाया था जब अन्धकार भव में,
संसार था सुप्त-सा।
ज्ञानालोक-विहीन ओक सब था,
विज्ञान था गर्भ में॥
ऐसे अद्‌भुत काल में प्रथम ही,
जो ज्योति अद्‌भुत हो।
ज्योतिर्मान बना सकी जगत को,
है वेद-विद्या वही ॥१॥
नाना देश अनेक पन्थ-मत में,
है धर्म-धारा वही।
फैली है समयानुसार जितनी,
सद्‌वृत्ति संसार में॥
देखे वे बहू-पूत-भाव जिन से,
भू में भरी भव्यता।
सोचा तो सब सार्वभौम हित के,
सर्वस्व हैं वेद ही ॥२॥
नाना धर्म-विधान के बिलसते,
उद्यान देखे गये।

फूले थे जितने प्रसून उन में,
स्वर्गीय सद्भाव के ।।
फैली थी जितनी सुनीति-लतिका,
थे बोध पौधे लसे ।
जाँचा तो श्रुति-सार-सूक्ति-रस से,
थे सिक्त होते सभी ।।३।।
देखे ग्रन्थ समस्त पन्थ-मत के,
सिद्धान्त बातें सुनी ।
नाना वाद विवाद पुस्तक पढ़ी,
सम्वाद-वादी बने ।।
जाँची तर्क-वितर्क-नीति शुचिता,
त्यागा कुतर्कादि को ।
तो जाना सर्वज्ञता जगत की,
है वेद - भेदज्ञता ।।४।।

लुप्त ज्ञान से हमें परिचित करने के लिए महर्षि दयानन्द का आगमन हुआ था। उन्होंने जो कुछ लिखा वह हमारे कल्याण के लिए ही लिखा, किसी को नीचा दिखाने के लिए नहीं। कई यूरोपीय जिनमें भारतमित्र वोल्तर प्रथम पँक्ति में आते हैं, ने महर्षि की अपेक्षा इंजील की अधिक आलोचना की है। इस बात से स्वामी जी अनभिज्ञ थे। जो सच्चाई फ्रांस में दिखाई दे रही थी वही भारत में भी देखने में आई। हम भारत को, प्रवास को या विश्व के किसी भी अन्य अंग को वेद-ज्ञान दे पावें तो हम उस भारत के सच्चे प्रतिनिधि के आदेश का पालन करने में समर्थ भारतीय समझे जायेंगे।

# आज के व्यथित भारत की पुकार

## कांग्रेस के ७१ वें अधिवेशन निमित्त हैदराबाद में एकत्रित कांग्रेसी नेताओं की सेवा में

आदरणीय महाशयगण !

आज इस अभागे देश की दुरवस्था को देखकर दो आँसू बहाए बिना नहीं रहा जाता। इससे तो वह पराधीनता का अंग्रेजी शासनकाल कहीं उत्तम, सुख-समृद्धियुक्त और राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत था। क्या इस ऐसी स्वतन्त्रता के लिये ही कठोर कारावासों, काले पानी देशनिकालों का सहन तथा फाँसी के फंदों का हँसते-हँसते चुम्बन किया गया था ?

जो राष्ट्र स्वतन्त्र होने पर भी विदेशी भाषा-भूषा और भेष आदि को अपनाये रखता है वह स्वाधीनता के वास्तविक स्वरूप तथा सुख-लाभ से वंचित, स्वतन्त्रता को सुस्थिर नहीं रख सकता। आज इस अभागे देश की अपनी भाषा तथा भेष के अतिरिक्त अन्न भी अपने खेतों का नहीं है। ऐसे राष्ट्र की भगवान ही रक्षा करे। विद्या, गाय तथा भूमि ये तीनों राष्ट्रीय धन कहाते हैं और शासन द्वारा इनका रक्षण तथा संवर्धन आदि सदा किया-कराया जाता है। गाय, भूमि तथा विद्या का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक के बिना दूसरी की उन्नति, वृद्धि तथा स्थिति असम्भव है। भूमि राष्ट्र की देह-रूपा है, गाय आत्मा-रूपा और भाषा प्राण-रूपा है, इन तीनों पर ही राष्ट्र का जीवन-मरण आधारित होता है।

जो राष्ट्र अपने परम धन "गोधन" का यथावत् सम्मान तथा सम्वर्धन न कर-कराकर उलटा गोवध रूपी महा निन्दनीय कुकर्म करता है वह-दीन-हीन-पराधीन बनकर महादुःख-सागर में गोते खाता हुआ सर्वनाश को प्राप्त हो जाता है। संसार के सारे सुख-वैभव एवं परम सुख-मोक्ष तक की प्राप्ति का एकमात्र साधन यह गाय (गोधन) ही है। इस गोधन के तुल्य दूसरा कोई धन इस भूतल पर नहीं है। यज्ञों के बिना राष्ट्र में समय-अनुकूल जलवृष्टि नहीं हो सकती और यज्ञ गाय (गोघृत) के विना सुसम्पन्न नहीं हो सकता। गोधन के विनाश से वायुमण्डल विकृत

तथा तामसिक बन जाता है और जल, थल और नभ सभी विषयुक्त हो जाते हैं। मानवों में अधर्म, अन्याय, छल, कपट आदि दोषों तथा क्षय, कैन्सर आदि असाध्य रोगों का निरन्तर वृद्धि होती जाती है। राष्ट्र में अति-वृष्टि, अनावृष्टि और, बाढ़ें बवंडर, (तूफ़ान), भूकम्प तथा दुर्भिक्ष आदि दुर्दैव सर्वत्र व्याप उठते हैं, और सर्वत्र असन्तोष तथा अशान्ति का साम्राज्य हो जाता है।

राष्ट्र का गौरव-भरा अतुलित-इतिहास, सर्व शास्त्र, स्मृति एवं श्रुति (वेद) आदि सब संस्कृत भाषा में ही हैं और महाराज भोज के काल के बाद तक भी यही राष्ट्र की भाषा रही। महाभारत-काल पर्यन्त संसार का एक मत (वैदिक) और एक भाषा (संस्कृत-भाषा) रहे, और इसी आधार पर अमरीका, ईरान तथा कन्धार आदि देशों से हमारे रोटी-बेटी (विवाह) आदि के सम्बन्ध होते रहे। अतः वेदज्ञान प्रदायिनी, देववाणी, सर्व-मंगलप्रदा, अविरोधनीया संस्कृत-भाषा ही भारत की वास्तविक राष्ट्रभाषा है। वेद, वेदांगों के-यथार्थ ज्ञान बिना भारत का उत्थान सर्वदा सर्वया असम्भव है; और संसार का भी। वेद ही सब सत्-विद्याओं का पुस्तक है।

यदि तत्काल ही स्वतन्त्रता-घोषणा के साथ ही गोवध-बन्दी तथा वास्तविक राष्ट्रभाषा संस्कृत-भाषा की राष्ट्र-भाषा के रूप में घोषणा की जाती तो आज ऐसी समस्याएँ सामने न आतीं और राष्ट्र सर्वविध उन्नत होकर इस भूले-भटके संसार का भी पथ-प्रदर्शन करता। परन्तु देश का दुर्भाग्य था कि शासनीय सत्ता पर ऐसे व्यक्ति आरूढ़ थे जो संस्कृत भाषा तथा गोमाता की महा-महिमा से अनभिज्ञ थे और उन अनार्यों ने भारतवासियों की अभारतीय, उद्देश्य-हीन, दोगले (काले-अंग्रेज़) तथा जग-भंडारी भारत को भिकारी और······गो मांस की विश्व-व्यापी (प्रथम) मार्केट बना दिया। अब यदि शासन द्वारा चालू गोमांस का यह वर्धित व्यापार और अधिक देर चालू रहा तो राष्ट्र व्यापी भयंकर दुर्भिक्ष पड़ेगा, विदेशों से भी अन्न प्राप्त न हो सकेगा और राष्ट्र में भारी विप्लव होगा। और जनता अपने इन क्लेशों के लिए कांग्रेसी शासन एवं कांग्रेसियों को दोषी जान क्या-करेगी इसका वर्णन तो स्वयं बापू ने ही अपनी एक अन्तिम सायं प्रार्थना में किया था। कांग्रेस के प्राणदाता तिलक और गाँधी के वचनों की अवहेलना कर उनकी आत्माओं तथा जनता के प्रति घोर विश्वास-घात हुआ है। आज ये तीनों ही राष्ट्रीय

[ शेष पृष्ठ १३ पर ]

# ज्योति भरो

★ श्री भारतेन्द्र नाथ जी

अन्तर में ज्योति भरो !
महाप्राण, अणु-अणु के त्राता, जग कल्याण करो !
अन्तर में ज्योति भरो !!

तुम अविनाशी, घट-घट वासी, दीन पुकार सुनो !
ज्ञान दान दे, सविता ! प्रेरक ! शाश्वत दीप बनो !!
मूढ़ मनुज की चरम साधना, विस्तृत हो कल्याणी,
धरती अंबर पर गूंजे प्रभु एक तुम्हारी वाणी !
तुम जीवन वीणा के वादक, जय झंकार करो !
अन्तर में ज्योति भरो !

हरो घटा अज्ञान तिमिर की, शुभ प्रकाश छितराओ,
संसृति की कोमल कलियों में, सुरभि नयी महकाओ,
ओ विराट्, गतिवल के प्रहरी, जन-जन को हरषाओ,
महानाश का अंत करो अब, मानवता लहराओ !
मिटे न आशा, प्राण-पिपासा, मधु मय ज्ञान भरो !
अन्तर में ज्योति भरो !!

शक्ति भरो वह, संबल पाकर मन के कलुष मिटाएँ !
तुझ से लेकर गरिमा तेरी, गुण आगर बन जाएँ !
झुकें नहीं हम, रुकें नहीं हम, तेरा पथ विस्तारें !
तेरे गीत गुंजाएँ जी भर, तेरे मंत्र प्रचारें !!
तुझ से मिल पा लें सब कुछ, [इच्छा यह पूर्ण करो !
अन्तर में ज्योति भरो !!

# हे भगवन्

प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते
रयिमिव पृष्ठं प्रभवन्तमायते ।
असिन्वन्दंष्ट्रैः पितुरत्ति भोजनं
यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥

ऋ० २।१३।४

हे भगवन् ! आपकी कृपा से आप के गृहमेधी समस्त भक्तजन (पुष्टिं) आपके दिये हुए पोषक धन को (प्रजाभ्यः) प्रजाओं में (विभजन्तः) परस्पर विभाग करते हुए (आसते) अपने-अपने गृह में सुखपूर्वक निवास करते हैं। यहाँ दृष्टान्त देते हैं। (आयते) गृह में आये अतिथि को (पृष्ठम्) धारक (प्रभवंतम्) और बहुभरण समर्थ (रयिमिव) धन को जैसे विभाग करके देते हैं तद्वत् सकल प्रजागण परस्पर अपने-अपने धन को विभाग कर आनन्द से निवास करते हैं यह आपकी महती कृपा है। हे भगवन् ! (असिन्वन्) प्रत्येक कर्मकारी पुत्र (पितुः) अपने-अपने पिता के गृह में (दंष्ट्रैः) दाँतों से (भोजनं अत्ति) भोजन करते हैं (यः) जिस आपने (ता) उन सुखकारी कर्मों को (आकृणोः) विधान किया है (सः) वह आप (प्रथमम्) प्रथम (उक्थ्यः असि) पूज्य हैं।

आशय—इस मन्त्र से भगवान् शिक्षा देते हैं कि प्रत्येक ग्राम और नगरादि में प्रत्येक वृद्धिमान् मनुष्य को उचित है कि वह जहाँ तक हो गृह-गृह में जाकर कुशलादि वार्ता पूछे और यदि किसी घर में अन्न की त्रुटि हो तो उसको पूर्ण करे, जिससे कोई भूखा न रह जाय। और प्रत्येक मनुष्य को यह भी उचित है कि वह अपने परिश्रम से उपार्जित धन का भोगकर और पैतृक धन को अच्छी तरह से अपने काम में लावे ; उस धन को व्यर्थ कार्य में न खर्च करे।

# मोक्ष-मार्ग

★ पं० भूदेव शास्त्री, 'वेद-वेदान्त-सांख्य-योग-तीर्थ'

(१) संसार में जितने व्याख्येय विषय हैं, उन सबमें परोक्ष होने से मोक्ष अतीव सूक्ष्म विषय है। मोक्षानन्द के विषय में लिखते हुए उपनिषद्कार ने कहा हैं कि—

न शक्यते वर्णयितु गिरा तदा,
स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते ॥

समाधि से सब दोषों से रहित होकर जो मोक्ष का अधिकारी बनता है, उस समय जो सुख उसे प्राप्त होता है, वह वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता। किन्तु मोक्षाधिकारी मनुष्य का अन्तःकरण ही उसका अनुभव कर सकता है।

शास्त्रकारों ने यह भी कहा है कि जिस ब्रह्म की प्राप्ति ही मोक्ष की प्राप्ति है, उसका उपदेश भी मिलना कठिन है। क्योंकि—

आश्चर्योऽस्य वक्ता

उस अचिन्त्य स्वरूप ब्रह्म का उपदेश करने वाला प्राप्त होना बड़ा कठिन है। मोक्ष अथवा ब्रह्म की प्राप्ति—यह विषय अत्यन्त गहन है। मोक्ष और उसकी प्राप्ति का मार्ग क्या है, यह विचार करने से पूर्व यह सोचना है कि मोक्ष किसको कहते हैं और किस वस्तु से पृथक् हो जाने, वा छूट जाने से मोक्ष कहाता है—

मोक्ष का लक्षण—

मोक्षयन्ति समाप्नुवन्ति दुःखानि यस्मिन्निति मोक्षः।

जिसमें दुःख समाप्त हो जाते हैं उस को मोक्ष कहते हैं। मोक्ष, अपवर्ग, निर्वाण या कैवल्य, ये सब मोक्ष के ही नाम हैं। इन सबका अर्थ दुःख से छूटकर आनन्द को प्राप्त करना है।

(३) अब विचारणीय विषय यह है कि जिस वस्तु के छूटने से मोक्ष कहाता है, वह वस्तु कौन-सी है? इसका उत्तर है कि वह तस्तु प्रकृति अथवा प्रकृतिजन्य संसार हैं। यजुर्वेद के ४०वें अध्याय में इसको स्पष्ट रूप से समझाया है:

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसं-म्भूतिमुपासते।

जो कभी उत्पन्न न होने वाली प्रकृति अर्थात् इस संसार के उपादान कारण

में रत हैं, वे अज्ञान अन्धकार में डूबकर दु:ख भोगते हैं। और जो इस कार्य जगत् में रत हैं वे उनसे भी अधिक दु:ख सागर में डूबते हैं। प्रकृति और प्रकृतिजन्य संसार से अनेक प्रकार के दु:ख उत्पन्न होते हैं। यह युक्तिसिद्ध बात है। न्याय-दर्शन में बारह प्रमेय गिनाये जाते हैं। उनमें दु:ख भी है—दु:ख विषय में लिखते हुए न्याय दर्शन के भाष्यकार वात्स्यायन लिखते हैं कि—

दु:खमितिसमाधिभावनमुपदिश्यते समाहितो भावयति, भावयन्निर्विद्यते, निर्विण्यस्य वैराग्यम्। विरक्तस्यापवर्ग:। न्याय।

दु:ख कहाँ से आता है। इस बात का विचार मनुष्य को सावधान चित्त होकर करना चाहिये, सावधान चित्त वाला ही मनुष्य दु:ख कहाँ से आता है, इस बात का विचार करने लग जाता है। विचार करने वाले को, जिससे दु:ख प्राप्त होता है, उस वस्तु से उदासीनता हो जाती है। उदासीन को ही उस वस्तु में वैराग्य हो जाता है और विरक्त पुरुष को अपवर्ग प्राप्त हो जाता है।

जब विवेकी मनुष्य इस संसार की तरफ देखता है, तब उसे संसार में सर्वत्र दु:ख ही दु:ख प्रतीत होता हैं। ऐसे ही दु:खमय संसार का अनुभव करता हुआ, एक विवेकी कहता है कि—

कदलीस्तम्भनि:सारे संसारे सार मार्गणम्। य: करोति स संमूढो जलबुद्बुद् संनिभे॥

केले के स्तम्भ के समान साररहित संसार में जो सार को ढूंढ़ता है, वह मूर्ख है, जैसे कि पानी के बुलबुले। संसार क्या है। इसका लक्षण शास्त्रकारों ने यह किया है कि—

इच्छाद्वेपादय: अविच्छेदेन वर्त्तमान: संसार:।

जिसमें इच्छा द्वेषादि सदा मनुष्य के पीछे लगे रहते हैं। इसका नाम संसार है। इस संसार को किसी ने समुद्र की, किसी ने भयंकर नदी की, किसी ने सिंह व्याघ्रादि पशुओं से युक्त वन की उपमायें दी हैं। परन्तु संसार के स्वरूप को जानकर जिसको इससे पूर्ण वैराग्य हो गया, उसके लिये यह सब निष्फल है। बस संसार से छूटने का नाम ही मोक्ष है।

(४) अब मोक्षप्राप्ति के साधन क्या हैं। इस पर विचार करना है। न्याय दर्शन में प्रमाण-प्रमेय आदि १६ पदार्थों के तत्त्व ज्ञान से मोक्ष होता है।

वैशेषिक में—

यतोऽभ्युदयनि:श्रेयससिद्धि: स धर्म:।

अर्थात् धर्म को मोक्ष का साधन

माना है।

सांख्य में—

ज्ञानान्मुक्तिः।

अर्थात् मुक्ति का साधन ज्ञान माना है।

इस प्रकार प्राचीन मुनियों ने साध्य मोक्ष को प्राप्त करने में अनेक साधन दिखाये हैं।

मोक्षप्राप्ति में प्रधान साधन क्या है। इसका ही विचार करना है। यजुर्वेद में लिखा है कि—तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय। अर्थात् परमात्मा को जानकर ही मनुष्य बन्धन से छूट सकता है। मरण आदि दुःखों से छूटने का और कोई मार्ग नहीं।

उपनिषद् में लिखा है कि—

निचाय्यतं मृत्युमुखात् प्रमुच्यते।
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥

परमात्मा को जानकर मनुष्य मृत्यु के मुख से छूट जाता है, जो इसे जानते हैं वे अमृत हो जाते हैं।

अब प्रश्न यह है कि ईश्वर की प्राप्ति कैसे हो, इसका विचार करना है। संसार में यह नियम देखने में आता है कि जिस वस्तु की मनुष्य को प्राप्ति करनी है, उसके लिये ये बातें अपेक्षित हैं: (१) वस्तु के स्वरूप का ज्ञान, (२) वह वस्तु कहाँ से प्राप्त होती है, (३) उसकी प्राप्ति के लिये साधन।

जिस परमात्मा की प्राप्ति करके हम मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं, प्रथम उस परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान हमें होना चाहिये। परन्तु संसार में आज ईश्वर-स्वरूप विषय में जनता के विचित्र विचार देखने में आते हैं जिसको देखकर एक ज्ञानी मनुष्य का अन्तःकरण शोकसागर में डूब जाता है। मुक्ति की भी ऐसी ही दुर्दशा हुई है। अन्ध-परम्परा में पड़ी हुई मूढ़ जनता ने उसकी कोई कीमत न रखी।

राम, कृष्ण आदि के पूजन तथा जगन्नाथ आदि से दर्शन से ही लोग मुक्ति मानते हैं। वेद ने ईश्वर का स्वरूप बतलाया कि वह एक है और सर्वत्र व्यापक, शुद्ध तथा हड्डी, मांस, मज्जादि से रहित है। वह ही उपासनीय है।

(५) अब यहाँ प्रश्न पैदा होता है कि—यदि ईश्वर सर्वत्र व्यापक है तो वह हमारे जीवात्मा में भी है, फिर उसकी प्राप्ति कैसी—अर्थात् नित्य प्राप्त वस्तु की प्राप्ति कैसी।

इसका उत्तर यह है कि—अन्तर तीन प्रकार का है। यथा—(१) देश-

कृत, (२) कालकृत, (३) अज्ञानकृत। यहाँ परमात्मा के न प्राप्त होने में अज्ञान-कृत अन्तर है। जब यह अज्ञान का परदा मिट जायेगा, तब परमात्मा की प्राप्ति होती है। यही मोक्ष है।

(६) उपनिषत्द्कार ने मोक्षप्राप्ति में चार साधन और रखे हैं—सत्य, तप, ज्ञान, ब्रह्मचर्य।

(क) सत्य-जीवन का एक सुन्दर भाग है। जैसी बात हो, उसे वैसा ही कहना सत्य कहाता है। सत्य को ब्रह्म का रूप माना है। यथा "सत्यं वै ब्रह्म।"

(२) तप—तप से मुख्य अभिप्राय वेदान्त में शरीर को व्यर्थ पीड़ा देने का नहीं, किन्तु—मनश्चेन्द्रियाणां च ह्येकाग्रं परमं तपः। मन और इन्द्रियों का वश में करना ही तप है। जिस प्रकार पशु को बाँध रखने से उसका वेग और उसके काम करने को शक्ति अधिक बढ़ जाया करती है, उसी प्रकार मन-इन्द्रिय और शरीर को सुख-भोग से हटा कर तप में लगाने से उसकी शक्ति असाधारण रूप में बढ़ जाया करती है। इसलिए शास्त्र में कहा है कि—

"तपसा चीयते ब्रह्म।"

(ग) ज्ञान—ठीक-ठीक ईश्वर के स्वरूप का तथा संसार के स्वरूप का ज्ञान होना ही सम्यग् ज्ञान है। यह भी मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग है।

(घ) ब्रह्मचर्य—विषयासक्ति से निवृत्ति होना ही ब्रह्मचर्य कहाता है। जिसका मन अत्यन्त विषयासक्त हो, उसको ईश्वर का विचार करने के लिए अवकाश ही नहीं मिलता। मनु जी ने कहा है कि—

सूक्ष्मतां चान्ववेक्षेत योगेन परमा-त्मनः।

चित्त-वृत्तियों का निरोध करके ही मनुष्य को ईश्वर की सूक्ष्मता देखनी चाहिए। शास्त्रीय आधार पर ये कुछ मोक्ष के मार्ग रखे हैं। विचारशील लाभ उठाने का यत्न करें। ●

---

[ शेष पृष्ठ ७ का ]

धन, गोधन विद्याधन तथा भूमिधन महती-संकटनीया, अवस्था में हैं और सबने मौन धार रखा है। आज के इस आसुरी विज्ञान ने संसार को सब भाँति दूषित, पशुधन से रहित, अशान्त, भयग्रस्त तथा पथ-भ्रष्ट बना रखा है।

गोमांस से कमाये धन से खरीदे अन्न ने हम सब की बुद्धियों को भ्रष्ट कर दिया है, परम दयालु परमेश्वर हमारी बुद्धियों को सुसंस्कृत कर हमें पाप से शीघ्र छुड़ा देवें।

—प्रार्थी

पं० रणवीरचन्द कहौल
७६३१, पुरानी घास मण्डी,
सिकन्दराबाद

# ब्राह्मण ग्रन्थ संज्ञा विवेचन

★ आचार्य शिवपूजनसिंह कुशवाहा एम० ए०

[ गताङ्कों से आगे ]

वेद कितने हैं ?

वेद केवल चार हैं और ईश्वरीय ज्ञान हैं।

प्रमाण :—

शतपथ ब्राह्मण में चार वेदों की चर्चा है :—

"ऋग्वेदो यजुर्वेदः
सामवेदोऽथर्ववेदः ।"

[ शतपथ ब्रा० १४।५।४।१० ]

"यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् । समानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम् । स्कम्भं ब्रूहि कतमः स्विदेवसः ।

[ अथर्व० का० १०, सू० ७, मंत्र २० ]

यहाँ ऋग्, यजु, साम के साथ अथर्वाङ्गिरस नाम अथर्ववेद के लिए स्पष्ट है।

"ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थम्……"

[ छान्दोग्योपनिषद्, सप्तम प्रपा०, पहला खण्ड, म० २ ]

ऋग्वेदं विजानाति यजुर्वेद सामवेदमाथर्वणं चतुर्थम् ।

[ छान्दोग्योपनिषद्, सप्तम, प्रपा०, पहला खण्ड मं० २ ]

ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः ।"

[ मुण्डकोपनिषद् ; प्रथम मुण्डक, प्रथम खण्ड मं० ५ ]

"विद्याश्चवा अविद्याश्च-
यच्चान्यदुपदेश्यम् ।
शरीरे ब्रह्म प्राविशदृचः-
सामाथो यजुः ॥"

[ अथर्व० ११।८।२३ ]

यहाँ ऋचः सामाथो यजुः से ऋग्, साम, और यजु तथा 'ब्रह्म' से ब्रह्मदेव (अथर्ववेद) का ग्रहण होता है।

पाश्चात्य विद्वान् ह्विटनी (Whitney) भी 'ब्रह्म' को अथर्ववेद कहता है :—

"Brahman perhaps is here

e charm representing the
tharwan hymns.[1]

"चत्वारि शृङ्गास्त्रयो अस्य पाद
शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य । त्रिधा
द्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्यां
ाविवेश ॥

[ ऋ० ४।५८।३ ; य० १७।९१ [

इस मंत्र के भिन्न-२ भाष्यकारों ने
भिन्न-२ अर्थ किए हैं पर ऋषि यास्क ने
ो "निरुक्त" में व्याख्या की है उसमें
ारों वेदों का ग्रहण है :—

चत्वारि शृङ्गेति वेदा वा एत
उक्ताः।..."

[ निरुक्त १३।७।१ ]

इसकी पुष्टि गोपथ ब्रा० भी करता
है :—

"चत्वारि शृङ्गा वेदा वा एत
उक्तः।..."

[ गोपथ ब्रा० १।३४ ]

'पाहि नो अग्न एकया पाह्युत
द्वितीयया । पाहि गीर्भिस्तिसृभिरर्जा-
म्पते पाहि चतसृभिर्वसो ।"

[ ऋ० मं० ८, सूक्त ६०, मंत्र ९ ]

यहाँ पर भाष्यकारों ने, एकया,
द्वितीयया, तिसृभिः तथा चतसृभिः से
क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और
अथर्ववेद का ग्रहण किया है।

"ऋग्भिः शंसन्ति यजुर्भिर्यजन्ति
सामभिः स्तुवन्ति अथर्वभिर्जपन्ति।"

[ काठक संहिता ४०।७ ]

"तत्र यदुक्तं चातुर्वेद्यं चत्वारो
वेदा विज्ञाता भवन्ति । ऋग्वेदो
यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदश्चेति ॥"

[ चरणव्यूह परिशिष्ट १।२।३]

"जुहोति पृथिव्यै ऋग्वेदाय यजु-
र्वेदाय सामवेदाय अथर्ववेदाय ।"

[ वैखान स गृह्यसूत्र २।१२ ]

"ऋचो यजूंषि सामानि अथर्वा-
ङ्गिरसश्च ये।"

[ तैत्तिरीय ब्रा० काण्ड ३, प्रपाठक १२,
अनुवाक ८ ]

"चत्वारो वेदाः साङ्गा सरहस्या
बहुधाभिन्ना...।"

[ महाभाष्य पस्पशाह्निक ]

"ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदाः
सप्त ऋषयोऽग्नयः । तैर्मेकृतं स्वस्त्य-
नमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु ।"

[ अथर्व० १९।९।१२ ]

यहाँ "वेदाः' बहुवचनान्त आया है।
इस मन्त्र पर भाष्य करते हुए श्री सायणा-
चार्य लिखते हैं :—

"वेदाः साङ्गाश्चत्वारः।

१. महात्मा नारायण स्वामीजी कृत "वेद रहस्य" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ४९

अर्थात्—इस मन्त्र में बहुवचनान्त वेदाः पद से चारों वेदों का ग्रहण है।

सायणभाष्यावलम्बी सरल हिन्दी:—

"ब्रह्म, प्रजापति, धाता, सब लोक, चारों वेद, सप्तर्षि, अग्नियाँ, यह सब मुझे कल्याण देने वाले हों।..."[२]

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदोद्विज। न चाऽऽख्यानमिदं विद्यात् नैव स्यात् सविचक्षणः॥"

[ महाभारत १ प० १६८ ]

यहाँ 'चतुरोवेदान्' से चारों वेदों का तात्पर्य है।

"ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदश्च पाण्डव। अथर्ववेदश्च तथा सर्व शास्त्राणि चैवहि।"

[ महाभारत, सभापर्व। लोकपाल सभा व्या० अ० ११।३२ ]

"वेदैश्चतुर्भिः सुप्रीताः पाप्नुवन्ति दिवौकसः।"

[महाभारत प्रो० अ० ५१ श्लो० २२]

"ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यान् दृष्ट्वा वेदान् प्रजापतिः, विचिन्त्य तेषामर्थं...",

[ब्रह्मवैवर्त पुराण, ब्रह्मखण्डे, षोडशोऽध्यायः]

"चतुरोवेदाः।"

[ मत्स्य पुराण अ० ५३।

"चतुर्वेदैः"।

[कूर्म पुराण, उपोद्घात २३ तथा

"चतुरोवेदान्..."

[शिव पुराण ध० स० अ० २३
वायु पुराण १। २००; वृहन्ना
पुराण ८। १४। १४० ]

सिक्ख मत से पुष्टि:—

जिस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणों चारों वेदों की ही सिद्धि हो रही है प्रकार से सिक्ख मत से भी पुष्टि होती

"चार वेद हो सचिआर—"

[आसा दी वार महला १ वार

"चउथ उपाय चारे वेदा। खा चारे वाणी भेदा।"

[राग बिलावल महला १ थिति

"हरि आज्ञा होए वेद पाप वीचारिआ।"

[मारु डखणे महला ५ शब्द

"चचे चार वेद जिन साजे चा खाणी चार जुगा।"

[राग आसा महला १ पटी लिखी शब्द

॥ क्रमशः॥

२. देखो—'अथर्ववेद' २य खण्ड (सम्पादित पं. श्री राम शर्मा आचार्य) पृष्ठ ८
[ सन् १९६० ई० में गायत्री प्रकाशन, गायत्री तपोभूमि, मथुरा द्वारा प्रकाशित

समाचार पत्र पंजीयन ( केन्द्रीय ) कानून १९५६ ( संशोधित ) के आठवें नियम के साथ पढ़ी जाने वाली प्रेस तथा पुस्तक पंजीयन कानून की धारा १९ 'डी' की उपधारा ( बी ) के अन्तर्गत अपेक्षित, 'वेदप्रकाश' दिल्ली नामक समाचार पत्र से सम्बन्धित स्वामित्व और अन्य बातों का व्योरा।

प्रपत्र ४
आठवें नियम के अनुसार

१. प्रकाशन का स्थान ... ... देहली
२. प्रकाशन की आवृति ... ... मासिक
३. मुद्रक का नाम ... ... श्री विजयकुमार
राष्ट्रीयता ... ... भारतीय
पता ... ... ... ४४०८ नई सड़क दिल्ली-६
४. प्रकाशक का नाम ... ... श्री विजयकुमार
राष्ट्रीयता ... ... ... भारतीय
पता ... ... ... ४४०८ नई सड़क दिल्ली-६
५. सम्पादक का नाम ... ... श्री विजयकुमार
राष्ट्रीयता ... ... ... भारतीय
पता ... ... ... ४४०८ नई सड़क दिल्ली-६
६. उन व्यक्तियों के नाम और पते जो समाचारपत्र के मालिक और कुल चुकता पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक शेयर वाले या भागीदार हैं। मैं गोविन्दराम हासानन्द

मैं विजयकुमार घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सही हैं।

विजयकुमार
प्रकाशक

तारीख : ९-३-१९६८

## महर्षि दयानन्द कृत पुस्तकें

| पुस्तक | मूल्य |
|---|---|
| सत्यार्थ प्रकाश सजिल्द | ५-०० |
| आत्म कथा | ०-४० |
| स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश | ०-१० |
| वेदान्तिध्वान्त निवारण | ०-१९ |
| वेद विरुद्ध मत खण्डन | ०-३७ |
| शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण | ०-३७ |
| आर्याभिविनय | ०-७५ |
| आर्योद्देश्यरत्नमाला | ०-१० |
| ऋग्वेद भाष्य का प्रथम सूक्त | ०-२५ |
| भ्रान्ति निवारण | ०-२७ |
| व्यवहारभानु | ०-२५ |
| भ्रमोच्छेदन | ०-२५ |
| गोकरुणानिधि | ०-२० |
| गृहस्थाश्रम | ०-६२ |
| काशी शास्त्रार्थ | ०-२० |
| सत्यधर्म विचार | ०-२५ |
| आर्यसमाज के नियमोपनियम | ०-१० |
| ईशोपनिषद् | ०-२५ |
| बालशिक्षक | ०-३७ |
| यजुर्वेदमूल संहिता सजिल्द | २-५० |

## अन्य विद्वानों की पुस्तकें

| पुस्तक | मूल्य |
|---|---|
| ईश, केन, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय तैतरीय | ४- |
| वैदिक सिद्धान्त व्याख्यान माला | २-० |
| व्याख्यानमाला (अच्युतानन्द) | २-५ |
| अष्टाध्यायी प्रकाशिका | ८-०० |
| आर्य राजनीति के तत्त्व | ०-३ |
| दो सनातन एत्ताएं | १-०० |
| बृहदारण्यक उपनिषद् कथा | ३-० |
| दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह उत्तरार्द्ध | २-५ |
| वेद परिचय (वेदानन्द) | ०-३ |
| दयानन्द चित्रावली | २-५ |
| स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग | ३-०० |
| विवाह और विवाहित जीवन | २-५० |
| आर्य समाज क्या है ? | ०-७५ |
| वैदिक सन्ध्या रहस्य | ०-३ |
| वैदिक यज्ञ रहस्य | ०-३ |
| आर्य सिद्धान्त दीप | १-२५ |
| महर्षि दयानन्द | ०-७५ |
| स्वामी श्रद्धानन्द | ०-३७ |

**गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८, नई सड़क, दिल्ली-६**

मुद्रक, प्रकाशक, विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस,
दाईवाड़ा में मुद्रित कर वेदप्रकाश कार्यालय,
४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया ।

वर्ष १६ अङ्क १० | संस्थापक—गोविन्दराम हासानन्द वैसाख २०२५, मई १९६८ | वार्षिक मूल्य ५-०० इस अङ्क का ४० पैसे

# विवाहयोग्य विद्वान् स्त्रीपुरुष ।

**पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।**
**ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ॥**
ऋ० ६।४९।७॥

( पावीरवी ) पवित्रता करने वाली ( कन्या ) शोभायमान ( चित्रायुः ) विचित्र भोगों को प्राप्त कराने वाली ( वीरपत्नी ) वीरों का पालन करने वाली ( सरस्वती ) विद्यादेवी ( धियं धात् ) बुद्धि का धारण करती है, ( ग्नाभि ) सहचारिणियों के साथ ( सजोषाः ) प्रेम के साथ ( अच्छिद्रं शरणं ) निर्दोष आश्रय देती है और ( गृणते ) उपासक को ( दुराधर्षं शर्म ) अटल सुख ( यंसत् ) देती है ।

सरस्वती अर्थात् विद्यादेवी सबकी शोभा बढाती है, विलक्षण भोग देती है, वीरता का पोषण करती है और उत्तम बुद्धि का प्रदान करती है । वह विद्यादेवी अपने साथ सहचारणियों को—अर्थात् धी, श्री आदिको लाकर सबको निर्दोष आश्रय देती हुई सुख भी देती है ।

इस मंत्र में "सरस्वती कन्या" शब्द है । इसलिये यह मन्त्र जिस प्रकार सरस्वती-विद्या विषयक है, उसी प्रकार "कन्या" विषयक भी है । विद्या से सुसंस्कृत कन्या वीरों को पतिरूप में वर कर उनको संतोष देती है, इत्यादि भाव पाठक विचार करके जान सकते हैं ।

॥ ओ३म् ॥

# वेद प्रकाश

सम्पादक—विजयकुमार　　आदरी सहसम्पादक — ब्र० जगदीश विद्यार्थी
फो० नं० २६२७६५　　फो० नं० २२१३२८

## कुर्आन् में

### अन्य मतावलम्बियों के लिए

## कुछ अतिकठोर, उत्तेजक वाक्यों का संग्रह

(१) **इज़ा लक़ुल्लज़ीन आमनू क़ालू आमन्ना, व इज़ा ख़लौ इला शयात्वीनिहिम् कालू इन्ना मअ़कुम् इन्नमा नः हनु मुस्तः ज़िऊन् ।**

( सू० २ । रु० २ । आ० १४ )

अर्थ :—और जब उन लोगों से मिलते हैं जो ईमान ला चुके तो कहते हैं हम ईमान ला चुके हैं, और जब तनहाई में अपने शैतानों से मिलते हैं तो कहते हैं हम तुम्हारे साथ हैं, हम तो सिर्फ (मुसलमानों को) बनाते हैं।

(इस आयत में ईसाई और यहूदी विद्वानों को शयातीन कहा गया है)।

(२) **फ़इल्लम् तफ़्अ़लू वलन् तफ़्अ़लू फ़त्तक़ुन्नारल्लती, वक़ूदुहन्नासु वल् हिजारतु, उअ़िद्दत् लिल् काफ़िरीन् ।**

( सू० २ । रु० ३ । आ० २४ )

(इस आयत में दोज़ख की आग का ईंधन मूर्तिपूजकों और मूर्तियों को बताया गया है। यह आयत सत्यार्थ प्रकाश के १४वें समुल्लास के खण्ड नं० ८ में आ चुकी है )।

सेल ( Sale) साहब False gods and idols मुराद ली हुई फर्माते हैं। देखो पृष्ठ ३। (Foot Note).

(३) **फ़ इम्मायातियन्नकुम् मिन्नी हुदन् फ़मन् तबिअ़ा हुदाया फ़ला ख़ौफ़ुन् अ़लैहिम् वला हुम् यः ज़नून् ।**

( सू० २ । रु० ४ । आ० ३८ )

**वल्लज़ीन कफ़रू व कज़्ज़बू बिआयातिना उलाइक अस्हाबुन्नारि हुम् फ़ीहा ख़ालिदून् ।** ( सू० २ । रु० ४ । आ० ३९ )

अर्थ :—अगर हमारी तरफ से तुम लोगों के पास कोई हिदायत पहुँचे (तो उस पर चलना क्योंकि) जो हमारी हिदायत की पैरवी करेंगे उन पर न तो (किसी क़िस्म का) खौफ़ होगा और न वह आज़ुर्दा खातिर (दुःखित) होंगे ।

और जो लोग नाफ़र्मानी करेंगे और हमारी आयतों को झुठलायेंगे वही दोज़खी (नरकवासी) होंगे, और वह हमेशा-हमेशा दोज़ख में रहेंगे ।

( इस आयत में क़ुर्आन् व मुअ्ज़ज़ात से इन्कार करने वालों को और उनको झुठलाने वालों को ) दोज़ख ( नरक ) में हमेशा के लिए रहने वाला बताया गया है ।

**(४) वइज़् क़ाल म्सा लिक़ौमिही याक़ौमि ! इन्नकुम् ज़लम्तुम् अन्फ़ुसकुन् बितिख़ाजिकुमुल्इज्ल फ़तूबू बारिइकुम् फ़क़्तुलू अन्फ़ुसकुम्, ज़ालिकुम् ख़ैरुल्लकुम् अिन्द बारिइकुम् ।**

( सू० २ । रु० ६ । आ० ५४ )

अर्थ :—और जब मूसा ने अपनी क़ौम से कहा कि भाइयो ! तुमने बछड़े की पूजा के इख्तयार करने से अपने ऊपर बड़ा ही ज़ुल्म किया तो (अब) अपने खालिक़ की जनाब में तौबा करो और (वह यह कि अपने लोगों के हाथों से) अपने तईं हलाक करो । जिसने तुमको पैदा किया है उसके नज़दीक तुम्हारे हक़ में यही बिहतर है ।

(इस आयत में बछड़े या गाय वग़ैर: की पूजा करने वालों को) बाज़िबुल क़त्ल (मारने योग्य) करार दिया है, जो हमेशा के लिए हिन्दू मुसलमानों में झगड़े का कारण है ।

**(५) व लिल् काफ़िरीन् अज़ाबुम्मुहीन् ।**

( सू० २ । रु० ११ । आ० ९० )

अर्थ :—और मुन्किरों के लिये ज़िल्लत का अज़ाब है । ( इस्लाम को न मानने वालों का भयंकर तिरस्कार होगा )

**(६) मन् कान अ़दूवल्लिल्लाहि व मलाइकतिही व रुसुलिही व**

**जिब्रील व मीकाल फ़ इन्नल्लाह अदूवल्लिल् काफ़िरीन् ।**

( सू० २ । रु० १२ । आ० ९८ )

यह आयत १४वें समुल्लास के २१वें खण्ड में आ चुकी है कि जो अल्लाह, फ़रिश्तों, पैगम्बरों और जिब्राइल का शत्रु है अल्लाह भी ऐसे क़ाफिरों का शत्रु है।

**(७) इन्नल्लज़ीन क़फ़रू वमातू वहुम् कुफ़्फ़ारुन् उलाइक अलैहिम् लअ्नतुल्लाहि वल् मलाइकति वन्नासि अज्मईन् । खालिदीन फ़ीहा, लायुख़फ़्फ़फ़ु अन्हुमुल् अज़ाबु वलाहुन् युन्ज़वरून् ।**

( सू० २ । रु० १९ । आ० १६१ )

अर्थ :—जो लोग ( जीते जी दीन हक़ से ) इन्कार करते रहे, और इन्कार ही की हालत में मर गए यही हैं जिन पर खुदा की लानत और फ़रिश्तों की और आदमियों की सब की, हमेशा-हमेशा इसी (फिटकार) में रहेंगे, न तो उन (पर) से अज़ाब (दुःख) ही हलका किया जावेगा और न उनको (अज़ाब के बीच-बीच में मुहलत ही मिलेगी।

**(८) मसलुल्लज़ीन क़फ़रू कमसलिल्लज़ी यन्अ़िक़ु बिमाला यस्मउ इल्ला दुआअंवनिदाअन्, सुम्मुम् बुक्मुन् उम्युन् फ़हुन् लायअ्-क़िलून् ।**

( सू० २ । रु० २१ । आ० १७१ )

"और जो लोग काफ़िर हैं (बुतपरस्ती वा मूर्तिपूजा में) उनकी मिसाल उस शख्स की सी है जो एक चीज़ के पीछे पड़ा चिल्ला रहा है (और) वह सुनती-सुनाती खाक नहीं (तो उसका चिल्लाना) महज़ (बेसूद) बुलाना और पुकारना है (जिसका कुछ नतीजा नहीं बुतों पर क्या मुन्हसर है यह लोग खुद भी) बहरे, गूँगे, अन्धे हैं तो यह समझते (बूझते) कुछ भी नहीं।

इस आयत में मूर्तिपूजकों की और उनकी मूर्तियों की हँसी उड़ाई गई है और दोनों को बहरे, गूंगे और अन्धे कहा गया है।

**(९) व मंय्यर्तदिद् मिन्कुम् अन् दीनिही फ़यमुत् वहुव काफ़िरुन् फ़ उलाइक हुबितवत् अअ्मालुहुम् फ़िद्दुनिया वल् आख़िरति, वउलाइक अस्हाबुन्नारि, हुम् फ़ीहा खालिदून् ।**

( सू० २ । रु० २७ । आ० २१७ )

और जो तुममें अपने दीन से बरगश्ता (विमुख) होगा और कुफ्र ही की हालत में मर जायगा तो ऐसे लोगों का किया-कराया (क्या दुनिया) और (क्या) आख़िरत (परलोक) (दोनों) में अकारत और यही हैं दोज़ख़ी (और) वह हमेशा (हमेशा) दोज़ख़ (नरक) ही में रहेंगे।

**(१०) वमन् आद फ़ उलाइक अस्हाबुन्नार्।**

( सू० २। रु० ३८। आ० २७५ )

और जो (मनाही हुए पीछे) फिर (सूद) ले तो ऐसे ही लोग दोज़ख़ी हैं और वह हमेशा दोज़ख़ ही में रहेंगे।

**(११) इन्नल्लज़ीन कफ़रू लन् तुग़्निय अन्हुम् अम्वालुहुम् वला औलादुहुम् मिनल्लाहि शैआ, व उलाइकहुम् वक़ूदुन्नार।**

( सू० ३। रु० २। आ० ९ )

जो लोग (दीन इस्लाम से) मुन्किर हैं। अल्लाह के हाँ न तो उनके माल ही उसके कुछ काम आएँगे और न उनकी औलाद ही (उनके कुछ काम आयगी) और यही हैं जो दोज़ख़ के ईंधन होंगे।

**(१२) लायत्तख़िज़िल् मोमिनूनल् काफ़िरीन औलियाअ मिन्दूनिल् मोमिनीन्, वमंय्यफ़्अल् ज़ालिक फ़लैस मिनल्लाहि फ़ी शैइन् इल्ला अन् तत्तक़ू मिन् हुम् तुक़ाः।**

( सू० ३। रु० ३। आ० २७ )

मुसलमानों को चाहिये कि मुसलमानों को छोड़कर काफ़िरों को अपना दोस्त न बनाएँ, और जो ऐसा करेगा तो उससे और अल्लाह से कुछ सरोकार नहीं. मगर (इस तदबीर से) किसी तरह पर उन (की शरारत) से बचना चाहो तो (तो ख़ैर)।

(यहाँ मौलवी मुहम्मद अली आदि अन्य सब अनुवादकों ने Protectors की जगह Friends यही अनुवाद किया )

**(१३) फ़ अम्मल्लज़ीन कफ़रू फ़ उअ़ज़्ज़िबुहुम् अज़ाबन् शदीदन फ़िद्दुनिया वल् आख़िरति, वमालहुम् मिन्नासिरीन्।**

( सू० ३। रु० ६। आ० ५५ )

तो जिन्होंने ( तुम्हारी नबुव्वत से ) इन्कार किया उनको तो दुनिया

और आखिरत (दोनों में बड़ी सख्त मार देंगे और कोई उनका हामी व मददगार न होगा (कि उनको हमसे बचाये । )

**(१४) वमंय्यब्तग़ि ग़ैरल् इस्लामि दीनन् फ़लंय्युक़्बल मिन्हु, वहुव फ़िल आख़िरति मिनल् ख़ासिरीन् ।**

( सू० ३ । रु० ६ । आ० ८४ )

और जो शख्स इस्लाम के सिवा किसी और दीन को तलाश करे तो खुदा के यहाँ उसका यह दीन मक्बूल (स्वीकृत) नहीं और वह आखिरत में ज़ियांकारों (टोटे वालों) में होगा, खुदा ऐसे लोगों को क्यों हिदायत देने लगा जो (तौरात की पेशीन) गोइयों (भविष्य वाणियों) से पैग़म्बर-आखिरुज़्ज़माँ पर ईमान लाए पीछे लगे कुफ्र करने ।

**उलाइक जज़ाउहुम् अन्न अ़लैहिम् लअ़्नतल्लाहि वल् मलाइकति वन्नासि अज्मअ़ीन्, ख़ालिदीन फ़ीहा, ला युख़फ़्फ़फ़ु अ़न्हुमुल् अ़ज़ाबु वलाहुम् युन्ज़वरून् ।** ( आ० ८६ )

इनकी सज़ा यह है कि इन पर खुदा की और फ़रिश्तों की और (दुनिया जहान के) लोगों की सब की फिटकार, कि उसी फिटकार में हमेशा (हमेशा) रहेंगे, न तो (आखिरत में) इनसे अज़ाब (कष्ट) ही हलका किया जावेगा और न उनको मुहलत ही दी जावेगी ।

**इन्नल्लज़ीन कफ़रू वमातू वहुम् कुफ़्फ़ारुन् फ़लंय्युक़्बल मिन् अहदिहिम् मिल् उल् अर्ज़िव ज़हबंव्वल विफ़्तदा बिही उलाइक लहुम् अ़ज़ाबुन् अलीमुंव्वमा लहुम् मिन्नास्विरीन् ।** (आ० ६०)

जो इस्लाम से मुन्किर हुए और इन्कार ही की हालत में मर गये उनमें का कोई शख्स (कुर्रए) ज़मीन (की गोल) भर कर भी सोना मुआवज़े में देना चाहे तो हर्गिज़ क़ुबूल नहीं किया जावेगा, यही लोग हैं जिनको दर्दनाक अज़ाब होगा और (उस वक्त) उनका कोई भी मददगार न होगा ।

**(१५) वला य:सबन्नल्लज़ीन कफ़रू अन्नमा नुम्लो लहुम् ख़ैरुल्लि अन्फ़ुसिहिम्, इन्नमा नुम्ली लहुम् लियज़्दादू इस्मन्, वलहुम् अ़ज़ाबुम्मुहीन् ।** ( सू० ३ । रु० १८ । आ० १७७ )

और जो लोग (दीन इस्लाम से) इन्कार कर रहे हैं, इस ख़याल में न रहें कि हम जो उनको ढील दे रहे हैं यह कुछ उनके हक़ में बिहतर है, हम तो उनको सिर्फ इसलिए ढील दे रहे हैं ताकि और गुनाह (पाप) समेट लें और (आखिरकार) उनको ज़िल्लत (तिरस्कार) की मार है।

**(१६) इन्नल्लज़ीन कफ़रू बिआयातिना सौफ़ नुस्लीहिम् नारन् कुल्लमा नज्वेजत् जुलूदुहुम् बद्दल्नाहुम् जुलूदन् ग़ैरहा लियज़ूक़ुल् अ़ज़ाब, इन्नल्लाह कान अ़ज़ीज़न हकीमा।**

(सू० ४। रु० ८। आ० ५६)

जिन लोगों ने हमारी आयतों से इन्कार किया हम उनको (कयामत के दिन) दोज़ख (नरक) में (लेजा) दाखिल करेंगे, जब उनकी खालें गल जायेंगी तो हम इस ग़र्ज़ से कि अज़ाब (का मज़ा अच्छी तरह) चखें, गली हुई खालों की जगह उनकी दूसरी (नई) खालें पैदा कर देंगे बेशक अल्लाह (बड़ा) ज़बरदस्त साहब तदबीर है।

**(१७) इन्नल्लज़ीन कज़्ज़बू बिआयातिना वस्तक्बरू अ़न्हा लातुफ़त्तहु लहुम् अब्वाबुस्समाइ वला यद्ख़ुलूनल् जन्नत हत्ता यलिजल् जमलु फ़ी सम्मिल् ख़ियात्वि, व कज़ालिक नज्ज़िल् मुज्रिमीन्।**

बेशक जिन लोगों ने हमारी आयतों को झुठलाया और उनसे अकड़ बैठे न तो उनके लिये आसमान के दरवाज़े खोले जावेंगे और न बहिश्त ही में दाखिल होने पायेंगे यहाँ तक कि ऊँट सुई के नाके में से (होकर न) गुज़र जाए, और मुज्रिमों (अपराधियों) को हम ऐसी ही सज़ा दिया करते हैं।

**लहुम् मिन् जहन्नम मिहादुंव्वमिन् फ़ौक़िहिम् ग़वाशिन्, व कज़ालिक नज्ज़िज़्ज़्वालिमीन्।**

(सू० ७। रु० ५। आ० ४०-४१)

कि उनके लिए आग का बिछौना होगा उनके ऊपर से आग ही का ओढ़ना, और सरकश लोगों को हम ऐसी ही सज़ा दिया करते हैं।

**(१८) लक़द् कफ़रल्लज़ीन क़ालू इन्नल्लाह हुवल् मसीहुब्नु मर्यम्।**

(सू० ५। रु० ३। आ० १७)

जो लोग कहते हैं कि मर्यम के बेटे मसीह वही खुदा हैं, कुछ शक नहीं

कि यह काफ़िर हो गये ।

**(१९) याऐयुहल्लज़ीन आमनू लातत्तख़िज़ुल्यहूद वन्नस्वारा औलियाअ बअ़्ज़ुहुम् औलियाउ बअ़्ज़िन्, वमंय्यतवल्लहुम् मिन्कुम् फ़इन्नहुम् मिन्हुम्, इन्नल्लाह लाय:दिल् कौमज़्ज़्वालिमीन् ।**

( सू० ५ । रु० ८ । आ० ५१ )

डिपुटी नज़ीर अहमद का अनुवाद:—

मुसलमानो यहूद व नसारा को दोस्त न बनाओ यह लोग तुम्हारी मुखालिफ़त में ( बाहम ) एक-दूसरे के दोस्त हैं और तुममें से कोई उनको दोस्त बनायेगा तो बेशक वह ( भी ) उन्हीं में का ( एक ) है क्योंकि खुदा ( ऐसे ) ज़ालिम लोगों को राह ( रास्ता ) नहीं दिखाया करता है ।

**(२०) व मंय्युशाक़िक़िर्रसूल मिम् बअ़्दि मातबैयन लहुल् हुदा व यत्तबिअ़् ग़ैरसबीलिल् मोमिनीन नुवल्लिही मातवल्ला वनुस्वलिही जहन्नम, वसाअत् मस्वीरा ।**

( सू० ४ । रु० १७ । आ० ११५ )

और जो शख्स राहे रास्त के ज़ाहिर हुए पीछे पैग़म्बर से किनाराकश रहे और मुसलमानों के रास्ते के सिवा ( दूर रस्ते ) होले तो जो ( रास्ता) उसने इख्तयार कर लिया है हम उसको जहन्नम (नरक) में (लेजा) दाखिल करेंगे और वह ( बहुत ही ) बुरी जगह है ।

**(२१) याऐयुहल्लज़ीन आमनू लातत्तख़िज़ू आबाअकुम् व इख़्वानाकुम् औलियाअ इनिस्तहब्बुल् क़ुफ़्राअ़लल् ईमानि, व मैंययतवल्लहुम् मिन्कुम् फ़उलाइक हुमुज़् ज़्वालिमून् ।**

( सू० ९ । रु० ३ । आ० २३ )

अगर तुम्हारे बाप और तुम्हारे भाई ईमान के मुक़ाबले में कुफ्र को अज़ीज़ रखें तो उनको (अपना) रफ़ीक़ (मित्र) न बनाओ, और जो तुम में से ऐसे बाप-भाइयों के साथ दोस्ती रखेगा तो यही लोग ( हैं जो खुदा के नज़दीक ) नाफर्मान हैं ।

**(२२) फ़इज़न् सलख़ल् अश्हुरुल् हुर्मु फ़क़्तुलुल् मुश्रिकीन है सु बजत्तुमूमूहुम् वख़ुज़ूहुम् व: सुरूहुम् वक़् उद्दूलहुम् कल्ल मर्स्वद्दू,**

**फ़इन् ताबू व अक़ामुस्स्वलात व आतुज़्ज़कात फ़ख़ल्लू सबीलहुम् इन्नल्लाह ग़फ़ूरुर्रहीम् ।** ( सू० ९ । रु० १ । आ० ५ )

फिर जब अदब के महीने निकल जाएँ तो मुश्रिकीन (मूर्ति-पूजकों या ईश्वरेतर पदार्थ के पूजकों) को जहाँ पावो क़त्ल करो उनको गिरफ्तार करो और उनका मुहासरा करो और हर घात की जगह उनकी ताक में बैठो फिर अगर वह लोग तोबा करें और नमाज़ पढ़ें और ज़कात (धार्मिक-कर) दें तो उनका रास्ता छोड़ दो क्योंकि अल्लाह बख्शने वाला मिहरबान है ।

(२३) **याऐयुहल्लज़ीन आमनू इन्नमल् मुश्रिकून नज्सुन् फ़ला यक़्रबू मस्जिदल्ह़राम बअ़्द आमिहिम् हाज़ा, वइन्ख़िफ़्तुम् अ़ैलतन् फ़सौफ़ युग़्नीकुमुल्लाहु मिन् फ़ज़्वलिही इन्शाअ, इन्नल्लाह अ़लीमुन् ह़कीम् ।** ( सू० ९ रु० ४ । आ० २८ )

**क़ातिलुल्लज़ीन लायोमिनून बिल्लाहि वलाबिल् यौमिल् आख़िरि वला युह़रिमून माह़र्रमल्लाहु वरसूलुहू, वला यदीनून दीनल् ह़क़्क़ि मिनल्लज़ीन ऊतुल् किताब ह़त्ता युअ़्तवुल् जिज़्यत अ़ंय्यदिंव्वहुम् स्वाग़िरून् ।** ( आ० २९ )

मुसल्मानो मुश्रिक तो निरे गन्दे हैं तो इस बरस के बाद (अदब) व हुर्मत वाली मस्जिद ( यानी खाने काबा ) के पास भी न फटकने पावें । और ( उनके साथ लेन-देन बंद हो जाने से ) तुम को मुफ़लिसी ( ग़रीबी ) का अंदेशा हो तो ख़ुदा ( पर भरोसा रखो वह ) चाहेगा तो तुमको अपने फ़ज़ल ( अनुग्रह ) से गनी ( समृद्ध ) कर देगा' बेशक ख़ुदा ( सबकी नीयतों को ) जानता ( और ) हिकमत वाला है ।

अहले किताब जो न ख़ुदा को मानते हैं ( जैसा कि मानने का हक़ है ) और न रोज़ आखिरत को और न अल्लाह और उसके रसूल की हराम की हुई चीजों को हराम समझते हैं और न दीन हक़ को तस्लीम करते हैं मुश्रिकों के अलावा इन ( लोगों ) से भी लड़ो यहाँ तक कि जलील होकर अपने हाथों से जज़िया दें ।

(२४) **याऐयुहल्लज़ीन आमनू क़ातिलुल्लज़ीन यलूनकुम् मिनल् कुफ़्फ़ारि वल् यजिदू फ़ीकम् ग़िल्ज़्वा ।** (सू० ९ । रु० १६ । आ० १२३ )

मुसलमानो ! अपने आस-पास के काफिरों से लड़ो, और चाहिए कि वह तुममें करारापन मालूम करें। और जाने रहो कि अल्लाह उन लोगों का साथी है जो उनसे डरते हैं।

**(२५) उलाइकल्लज़ीन कफ़रू बिआयाति, रब्बिहिम् वलिक़ाइही फ़हबित्वत् अअ्‌मालुहुम् फ़लानुक़ीमु लहुम् यौमल् क़ियामति वज़्ना। ज़ालिक जज़ाउहुम् जहन्नमु बिमा कफ़रू वत्तख़ज़ू आयाती व रुसुली हुज़्वन्।**

( सू० १८। रु० १२। आ० १०५-१०६ )

यही वह लोग हैं जिन्होंने अपने पर्वर्दिगार की आयतों को और उसके हुज़ूर में हाज़िर होने को न माना तो उनके अमल अकारत हो गए, तो कयामत के दिन हम उनके ( आमाल नेक ) का ( रत्ती बराबर ) वजन ( भी हिसाब में ) क़ायम नहीं रखेंगे।

यह जहन्नम इनकी उस बदकिरदारी का बदला है कि इन्होंने कुफ्र किया और हमारी आयतों और हमारे पैग़म्बर की हँसी उड़ाई।

**(२६) वजअ़ल्नलअग़लाल फ़ी अअ्‌नाक़िल्लज़ीन कफ़रू।**

( सू० ३४। रु० ४। आ० ६३ )

और जो लोग ( दुनिया में ) कुफ़्र करते रहे हम उनकी गर्दनों में तौक़ डाल देंगे।

**(२७) वइन तअ़्जब् फ़ अ़जबुन् क़ौलुहुम् अइज़ा कुन्ना तुराबन् अइन्ना लफ़ी ख़ल्क़िन् जदीदिन्, उलाइकल्लज़ीन कफ़रू बिर-ब्बिहिम्, व उलाइकल् अग़लालु फ़ी अअ्‌नाक़िहिम्, व उलाइक अस्हाबुन्नारि, हुम् फ़ीहा ख़ालिदून्।**

( सू० १३। रु० १। आ० ५ )

अर्थ :—और ( ऐ पैग़म्बर ) अगर तुम ( दुनिया में किसी बात पर ) आश्चर्य करो तो काफ़िरों का ( यह ) कहना भी आश्चर्यजनक ही है कि जब हम ( गल-सड़ कर ) मिट्टी हो जाँयगे तो क्या हम को ( फिर ) नये जन्म में आना होगा ? यही लोग हैं जिन्होंने अपने पर्वर्दिगार ( की क़ुदरत ) का इन्कार किया और यही लोग हैं जिनकी गर्दनों में क़यामत के दिनों

तौक़ ( पड़े ) होंगे और यही लोग हैं दोज़खी कि यह दोज़ख में हमेशा ( हमेशा ) रहेंगे ।

**(२८) बल्ज़ुय्यिन लिल्लज़ीन कफ़रू मक्रुहुम् व स्वुद्दू अ़निस्सबील्, व मंय्युज़्वलिलिल्लाहु फ़मा लहू मिन् हाद् । लहुम् अ़ज़ाबुन् फ़िल् .हयातिद्दुनिया वल अ़ज़ाबुल् आख़िरति अशक़्क़ु, वमा लहुम् मिनल्लाहि मिंव्वाक़् ।**

( सू० १३ । रु० ५ । आ० ३३ । ३४ )

अर्थ :—बात यह है कि मुन्किरों को उनकी चालाकियां भली कर दिखाईं और राह (रास्ते) से रोक दिया, और जिसको खुदा गुमराह करे तो कोई उसका राह दिखाने वाला नहीं । इन लोगों के लिए दुनिया की जिन्दगी में (भी) अ़जाब है (और आखिरत में भी) और आखिरत का अ़जाब (दुनिया के अ़ज़ाब से) अलबत्ता बहुत (ज्यादा) सख्त है ।

**(२९) वस्तफ़्तहू व ख़ाब कुल्लु जब्बारिन् अ़नीद् । मिंव्वराइही जहन्नमु वयुस्क़ा मिम्माइन् स्वदीद् । यतजर्रउ़हू वला यकादु युसीग़ुहू व यातीहिल् मौतु मिन् कुल्लि मकानिंव्वमाहुव बिमय्यितिन्, व मिंव्वराइही अ़ज़ाबुन् ग़लीज़ ।**

( सू० १४ । रु० ३ । आ० १५-१७ )

अर्थ :—और पैगम्बरों ने चाहा कि ( उनका और काफ़िरों का झगड़ा कहीं) फैसले हो चुके ( चुनांचे उनकी ख्वाहिश पूरी हुई ) और हरएक हेकड़ जिद्दी हलाक हुआ ( यह तो दुनिया की सजा थी और ) उसके बाद ( उसके लिए ) दोज़ख है और (वहाँ उसको पीप का पानी पिलाया जायगा ) कि उसको ज़बरदस्ती चस्कियाँ ले-लेकर पीएगा और (फिर भी) उसको गले से न उतार सकेगा और मौत ( है कि ) हर तरफ़ से आती ( हुई दिखाई देती ) है और वह ( फिर भी नहीं मरता) और उसको ( और ) अ़जाबे सख्त ( भी ) दर पेश है ।

**(३०) व जअ़लू लिल्लाहि अन्दादल्लियुज़िल्लू अ़न् सबीलिही, कुल् तमत्तऊ़ फ़इन्न मस्वीरकुम् इलन्नार् ।**

( सू० १४ । रु० ५ । आ० ३० )

अर्थ :—और उन लोगों ने अल्लाह के मद्दे मुक़ाबिल (दूसरे माबूद) खड़े किए हैं ताकि (लोगों को) उसके रास्ते से गुमराह करें, (ऐ पैग़म्बर इन लोगों से) कहो कि (खैर चन्द रोज़ दुनिया में) रस-बस लो फिर तो तुम-को दोज़ख की तरफ़ जाना ही है।

**(३१) इन्नल्लज़ीन ला योमिनून बिआयातिल्लाहि ला यःदीहिमुल्लाहु वलहुम् अज़ाबुन् अलीम्।** (सू० १६। रु० १४। आ० १०४)
**मन् कफ़र बिल्लाहि मिम् बअ्दि ईमानिही इल्ला मन् उक्रिह बक़ल्बुहू मुत्वमइन्नुम् बिल् ईमानि व लाकिम्मन् शरह बिल् कुफ़्रि स्वद्रन् फ़ अलैहिम् ग़ज़बुम् मिनल्लाहि, वलहुम् अज़ाबुन् अज़ीम्।** (सू० १६। रु० १४। आ० १०६)

अर्थ :—जो लोग (हेकड़ी और हठधर्मी से) खुदा की आयतों पर ईमान नहीं लाते खुदा भी उनको राहे रास्त नहीं दिखाया करता और (आखिरत में) उनको अज़ाबे दर्दनाक (होना) है।

जो शख्स (कुफ़ पर) मजबूर किया जावे मगर उसका दिल ईमान की तरफ से मुतमइन हो उससे (कुछ मुवाखज़ा नहीं लेकिन जो शख्स ईमान लाए पीछे खुदा के साथ कुफ़ करे और कुफ़ भी करे तो जी खोल कर तो ऐसे लोगों पर खुदा का ग़जब और उनके लिए बड़ा (सख्त) अज़ाब है।

**(३२) व इज़ा क़रातल्क़ुर्आन जअल्ना बैनक व बैनल्लज़ीन ला योमिनून बिल् आख़िरति हिजाबम्मस्तूरा। व जअल्ना अला क़ुलूबिहिम् अकिन्नतन् अंय्यफ़्क़हूहु व फ़ी आज़ानिहिम् वक़्रा।**
(सू० १७। रु० ५। आ० ४५। ४६)

अर्थ :—और (ऐ पैग़म्बर) जब तुम कुरान पढ़ते होते हो हम तुममें और उन लोगों में जिनको आखिरत का यक़ीन नहीं एक गाढ़ा पर्दा (हायल) कर देते हैं (ताकि राहे हक़ न देख सकें) और उनके दिलों पर ग़िलाफ़ डाल देते हैं ताकि कुरान को न समझ सकें और उनके कानों में (एक तरह की) गिरानी (पैदा कर देते हैं ताकि सुन न सकें)।

**(३३) व मंय्यःदिल्लाहु फ़हुवल् मुःतदि, व मंय्युज़्लिल् फ़लन् तजिद लहुम् औलियाअ मिन् दूनिही, व नःशुरुहुम् यौमल् क़ियामति**

**अ़ला वुजूहिहिम् उ़म्यंव्व बुक्मंव्व स्वुम्मा, मावाहुम् जहन्नमु, कुल्लमा ख़बत् ज़िद्नाहुम् सअ़ीरा। ज़ालिक जाज़ाउहुम् बिअन्न-हुम् कफ़रू बिआयातिना व क़ालू अइज़ा कुन्ना अ़िज़्वामंव्वरु-फ़ातन् अइन्नल् मब्ऊसून ख़ल्क़न् जदीदा।**

( सू० १७ । रु० ११ । आ० ६७ । ६८ )

अर्थः—और जिसको खुदा हिदायत दे वही राहे रास्ता पर है, और जिस-को ( वह ) गुमराह करे तो फिर ( ए पैग़म्बर) ऐसे गुमराहों के लिए तुम खुदा के सिवा ( दूसरे ) मददगार (भी) नहीं पाओगे और क़याभत के दिन हम उन लोगों को उनके मुँह के बल उठाएँगे अन्धे और गूंगे और बहरे उनका ( आख़री ) ठिकाना दोज़ख ; जब बुझने को होगी हम उनके लिए (उसको) और ज्यादा भड़कावेंगे, यह (जहन्नुम इसलिए) उनकी सज़ा है कि वह हमारी आयतों से इन्कार किया करते, और (क़यामत का होना सुन कर) कहा करते थे कि जब हम (मरे पीछे गल सड़ कर) हड्डियाँ और रेजा रेज़ा हो जायेगे तो क्या हम अज़-सरे-नौ पैदा करके उठा खड़े किए जायेंगे।

**(३४) उलाइकल्लज़ीन कफ़रू बिआयाति रब्बिहम् व लिक़ाइही फ़ हबित्वत् अअ़् मालुहुम् फ़ला नुक़ीमु लहुम् यौमल् क़ियामति वज़्ना। ज़ालिक जज़ाउहुम् जहन्नमु बिना कफ़रू वत्तख़ज़ू आयाती वरुसुली हुज़ुवन।**

( सू० १८ । रु० १२ । आ० । १०५-१०६ )

अर्थः—यही वह लोग हैं जिन्होंने अपने पर्वर्दिगार की आयतों को और (क़यामत के दिन) उसके हुजूर में हाज़िर होने को न माना तो इनके अमल अकारत हो गए, तो क़यामत के दिन हम इन (के आमाले नेक) का (रत्ती बराबर) वज़न (भी हिसाब में) क़ायम नहीं रखेंगे। यह जहन्नुम इन (की उस बदकिरदारी) का बदला है कि उन्होंने कुफ्र किया और हमारी आयतों और हमारे पैग़म्बरों की हँसी उड़ाई।

**(३५) अलम् तर अन्ना अर्सल्नश्शयात्वीन अ़लल् काफ़िरीन तउज़्ज़ु-हुम् अज़्ज़न्। फ़ला तअ़्जल् अ़लैहिम्, इन्नमा नउ़द्दुलहुम् अ़द्नन्। यौम नःशुरुल् मुत्तक़ीन इलर्रहमानि वफ़्दन्। व**

**नसूक़ुल्मुज्रिमीन इला जहन्नम विर्दन् ।**

( सू० १९ । रु० ६ । आ० ८३ से ८६ तक )

अर्थ :—(ऐ पैग़म्बर) क्या तुमने (इस बात पर) नज़र नहीं की कि हमने शैतानों को काफ़िरों पर छोड़ रखा है कि वह इनको उकसाते रहते हैं तो (ऐ पैग़म्बर) तुम इन (काफ़िरों) पर (नुज़ूले अज़ाब की) जल्दी न करो हम इनके लिए (रोज़े क़यामत के आने के) बस (दिन) गिन रहे हैं जब कि हम पर्हेज़गारों को (खुदाए) रहमान के (यानी अपने) हुजूर में महमानों की तरह जमा करेंगे, और गुनहगारों को प्यासे (ऊँटों की तरह) जहन्नुम की तरफ हाँकेंगे ।

**(३६) वमन् अअ़्रज़ व अ़न् ज़िक्री फ़इन्नलहू मअ़ीशतन् ज़न्कौं व नःशुरुहू यौमल क़ियामति अअ़्मा । क़ाल रब्बि लिम हशर्तनी अअ़्मा व क़द् कुन्तु बस्वीरा । क़ाल कज़ालिक अतत्क आयातुना फ़ नसीतहा व कज़ालिकल् यौम तुंसा ।**

( सू० २० । रु० ७ । आ० १२४ से १२६ तक )

अर्थ :—और जिसने हमारी याद से रूगर्दानी की तो उसकी जिन्दगी ज़ोक़ में गुजरेगी और क़यामत के दिन (भी) हम उसको अन्धा (करके) उठायेंगे, (वह) कहेगा ऐ मेरे पर्वर्दिगार तूने मुझको अन्धा (करके) क्यों उठाया और मैं तो (दुनिया में अच्छा-खासा) देखता (भालता) था, (खुदा) फ़र्माएगा ऐसा ही (होना चाहिए था दुनिया में) हमारी आयतें तेरे पास आईं मगर तूने उनकी कुछ खबर न ली, और उसी तरह आज तेरी (भी) खबर न ली जायगी ।

**(३७) वलक़द् आतैना इब्राहीम रुश्दहू मिन् क़ब्लु वकुन्ना बिही आ़लिमीन् । इज़् क़ाल लिअबैहि व क़ौमिही मा हाज़िहित्तमाअ़ीलुल्लती अन्तुम् लहा आ़किफ़ून् । क़ालू वजद्ना आबाअना लहा आ़बिदीन् । क़ाल लक़द् कुंतुम् अंतुम् व आबाउकुम् फ़ी ज़्वलालिम्मुबीन् । क़ालू अजेतना बिल्हक़्क़ि अम् अन्त मिनल् लाअ़िबीन् । क़ाल बल् रब्बुकुम् रब्बुस्समावाति वल् अर्ज़िवल्लज़ी फ़त्वरहुन्न, व अन अ़ला ज़ालिकुम् मिनश्शाहिदीन् । वतल्लाहि लअकीदन्न अस्वनामकुम् बअ़्द अन् तुवल्लू मुद्बिरीन् ।**

फ़ जअ़लहुम् जुज़ाज़न् इल्ला कबीरल्लहुम् लअ़ल्लहुम् इलैहि यर्जिऊन् । क़ालू मन् फ़अ़ल हाज़ा बिआलिहतिना इन्नहू लमिनज़्ज़वालिमीन् । क़ालू समिअ़्ना फ़तैं यज़्कुरुहुम् युक़ालु लहू इब्राहीम् । क़ालू फ़ातू बिही अ़ला अअ़युनिन्नासि लअ़ल्लहुम् यश्हदून् । क़ालू अअन्त फ़अ़ल्त हाज़ा बिआलिहतिन या। इब्राहीम् । क़ाल बल् फ़अ़लहू कबीरुहुम् हाज़ा फ़स्अलूहुम् इन् कानू यंत्विक़न् । फ़ रजअ़ू इला अंफ़ुसिहिम् फ़क़ालू इन्नकुम् अंतुमुज़्ज़वालिमून् । सुम्म नुकिसू अ़ला रुऊसिहिम्, लक़द् अ़लिम्त मा हाउलाइ यंत्विक़ून् । क़ाल अफ़तअ़्बुदून मिन् दूनिल्लाहि माला यंफ़उ़कुम् शैअ़ौं व ला यज़्वुर्रुकुम्, उफ़्फ़िल्लकुम् वलिमा तअ़्बुदून मिन् दूनिल्लाहि, अफ़ला तअ़्क़िलून् ।

( सू० २१ । रु० ५ । आ० ५१ से ६७ तक )

क़ालू हर्रिक़ूहु वंसुरू आलिहतकुम् इन् कुंतुम् फ़ाइलीन् ।

( आ० ६८ )

क़ुल्ना या नारु ! कूनी बर्दंव्वसलामन् अ़ला इब्राहीम् ।

( आ० ६९ )

अर्थ :—और इब्राहीम को हमने शुरू ही से फ़हमे सलीम अता की थी और हम उन (की सलाहियत) से (खूब) वाक़िफ़ थे जब उन्होंने अपने बाप और अपनी क़ौम (के लोगों) से कहा कि (यह) मूरतें जिन (की परस्तिश) पर तुम जमे बैठे हो यह हैं क्या चीज़ ? वह बोले हमने अपने बड़ों को इन ही की परस्तिश करते देखा है । (इब्राहीम ने) कहा कि बेशक तुम्हारे और तुम्हारे बड़े सरीह गुमराही में पड़े रहे, वह बोले क्या तू हमारे पास सच्ची बात लेकर आया है या दिल्लगी करता है, (इब्राहीम ने) कहा (दिल्लगी की बात नहीं) बल्कि आसमान व ज़मीन का पर्वर्दिगार जिसने इनको पैदा किया (वही तुम्हारा भी पर्वर्दिगार है और मैं इसका गवाह हूँ, और (आहिस्ता से यह भी कहा कि) वखुदा तुम्हारे पीठ फेरे और गए पीछे मैं तुम्हारे बुतों के साथ चाल करूँगा, चुनांचे (इब्राहीम ने) बुतों को (तोड़-फोड़) टुकड़े-टुकड़े कर दिया, मगर उनके बड़े (बुत को इस ग़रज से रहने दिया) कि वह उस

की तरफ रुजू करें। (जब लोगों को बुतों के तोड़े जाने का हाल मालूम हुआ तो) उन्होंने कहा (अरे) हमारे माबूदों के साथ यह गुस्ताख़ी किसने की? इसमें शक नहीं कि उसने बड़ा ही जुल्म किया, (बाज़) बोले कि वह नौज-वान (आदमी) जिसको इब्राहीम के नाम से पुकारा जाता है उसको हमने (बुराई के साथ) इन (बुतों) का तज़करा करते सुना है। (लोगों ने) कहा तो उसको (सब) आदमियों के सामने लाओ ताकि (जो कुछ जवाब दे) लोग (उसके) गवाह रहें। (ग़र्ज़ इब्राहीम बुलाए गए और) लोगों ने (उनसे) पूछा कि इब्राहीम ने क्या हमारे माबूदों के साथ यह (हरकत) तूने की है? (इब्राहीम ने) कहा, (नहीं), बल्कि यह (बुत) जो इन (सब) में बड़ा है उसने यह हरकत की (होगी), और अगर यह (बुत) बोल सकते हों तो इन्हीं से पूछ देखो, उस पर लोग अपने जी में सोच और (आपस में) लगे कहने कि बिला शुबह तुम ही सरे नाहक़ हो, फिर अपने सरों के बल औंधे (इसी गुमराही में) ढकेल दिए गए और (इब्राहीम से बोले तो यह बोले कि) तुमको तो मालूम है कि यह (बुत) बोला नहीं करते। (इब्राहीम ने) कहा क्या तुम खुदा के सिवा ऐसी चीज़ों को पूजते हो जो न तुमको कुछ फ़ायदा ही पहुंचाएँ और न तुमको (किसी तरह का) नुकसान ही पहुँचाएँ। तुफ़ है तुम पर और उन चीज़ों पर जिनको तुम खुदा के सिवा पूजते हो क्या तुम (इतनी बात भी) नहीं समझते। वह (आपस में) लगे कहने कि अगर तुमको (कुछ) करना है तो इब्राहीम को (आग में) जला दो और अपने माबूदों की मदद करो। (चुनांचे उन लोगों ने इब्राहीम को आग में झोंक दिया)। हमने (आग को) हुक्म दिया ऐ आग! इब्राहीम के हक़ में ठंडक और सलामती (की मूजिब) बन।

**(३८) इन्नकुम् व मा तअ्बुदून मिन् दूनिल्लाहि .हस्बु जहन्नम, अन्तुम् लहा वारिदून्। लौ कान हाउलाइ आलिहतम् मावरदूहा, व कुल्लुन् फ़ीहा ख़ालिदून्। लहुम् फ़ीहा ज़फ़ीरु-व्वहुम् फ़ीहा ला यस्मऊन्।**

(सू० २१। रु० ७। आ० ९८-१००)

अर्थ :—तुम और जिन चीज़ों की तुम खुदा के सिवा परस्तिश करते थे (वह सब) दोज़ख़ का ईंधन बनोगे (और) तुम (सब) को दोज़ख़ में

जाना होगा। अगर यह ( तुम्हारे माबूद सच्चे ) माबूद होते तो दोज़ख में न जाते, और ( अब ) तुम सब को इसी में हमेशा ( हमेशा ) रहना है। इन लोगों को दोज़ख में चिलवांस लगी होगी और वह ( अपने चिल्लाने के गुल में ) वहाँ ( किसी दूसरे की बात भी ) न सुन सकेंगे।

**(३९) हाज़ानि ख़स्वमानिख़्तस्वमू फ़ी रब्बिहिम्, फ़ल्लज़ीन कफ़रू क़ुत्त्वेअ़त् लहुम् सियाबुम् मिन्नारिन्, युस्वब्बु मिन् फ़ौक़ि रुऊसिहिमुल् .हमीम्। युस्वहरु बिही माफ़ी बुत्वूनिहिम् वल् जुलूद्। व लहुम् मक़ामिउ मिन् .हदीद्। कुल्लमा अरादू अंय्यख़्रुजू मिन्हा मिन् ग़म्मिन् उअ़ीदू फ़ीहा, वज़ूक़ू अ़ज़ाबल् .हरीक़्।** ( सू० २२। रु० २। आ० १९ से २२ तक )

अर्थ :—( दुनिया में ) यह दो ( फ़रीक़ ) हैं एक-दूसरे के मुख़ालिफ़ ( और ) आपस में अपने पर्वरदिगार के बारे में झगड़ते हैं, ( एक फ़रीक़ ख़ुदा को मानता है और एक नहीं मानता ) तो जो लोग ( ख़ुदा को ) नहीं मानते उनके लिए आग के कपड़े क़िता कराए गए हैं, ( और वह उनको दोज़ख में पहनाए जाएँगे और ) उनके सिरों पर से खौलता हुआ पानी उंडेला जाएगा जिस ( की गर्मी ) से जो कुछ उनके पेट में है ( यानी अंतड़ियाँ वग़ैरः ) और खालें (सब ) गल जायँगी, और उनके (मारने के) लिए लोहे के गुर्ज़ होंगे ( जिनसे उनकी कोबाकारी की जायगी ) ( और दोज़ख के अन्दर ) घुटे-घुटे जब-जब ( उनका जी घबरायगा और ) उससे निकलना चाहेंगे तो उसी में फिर ढकेल दिये जाएँगे, और ( उनको हुक्म दिया जायगा कि आग में ) जलने के अज़ाब ( के मज़े पड़े ) चखा करो।

**(४०) व बुर्रिज़तिल् जहीमु लिल् ग़ावीन। व क़ील लहुम् ऐनमा कुंतुम् तअ़्बुदून, मिन् दूनिल्लाहि, हल् यन्स्वुरूनकुम् औ यन्तस्विरून। फ़ कुब्किबू फ़ीहा हुम् वल् ग़ावून व जुनूदु इब्लीस अज्मऊन्।** ( सू० २६। रु० ५। आ० ९१ से ९४ तक )

अर्थ :—और दोज़ख निकाल कर गुमराहों के सामने कर दी जायगी और उनसे कहा जायगा कि ख़ुदा के सिवा जिन चीजों को तुम पूजते थे ( अब ) वह कहाँ हैं, क्या वह तुम्हारी कुछ मदद कर सकते या ( तुम्हारी

तरफ़ से कुछ ) इन्तक़ाम ले सकते हैं, फिर वह ( माबूद ) और गुमराह लोग ( जो उनकी परस्तिश करते थे ) और शैतान के लश्कर सब के सब औंधे मुँह दोज़ख में ढकेल दिये जाएंगे।

(४१) **इन्नल्लाह लअ़नल् काफ़िरीन व अअ़द्द लहुम् सअ़ीरा, ख़ालिदीन फ़ीहा अबदा, ला यजिदून वलीयंव्वलानस्वीर्। यौम तुक़ल्लबु वुजूहुहुम् फ़िन्नारि यक़ूलून यालैतना अत्वअ़्नल्लाह व अत्वअ़्नर्रसूल्।** ( सू० ३३। रु० ८। आ० ६४। ६५। ६६ )

अर्थः—बेशक अल्लाह ने काफ़िरों को फटकार दिया है और उनके लिए धधकती हुई आग तय्यार कर रक्खी है उसमें सदा को और हमेशा-हमेशा रहेंगे, ( और ) न (किसी को अपना) हिमायती ही पाएँगे और न मददगार ( यह वह दिन होगा ) जबकि इनके मुँह ( सीख के कबाब की तरह दोज़ख की ) आग में उलट-पलट किये जायेंगे और ( अफ़सोस के तौर पर ) कहेंगे कि ऐ काश ! हमने ( दुनिया में ) अल्लाह का कहना माना और (ऐ काश) हमने रसूल का कहना माना होता।

(४२) **वल्लज़ीन कफ़रू लहुम् नारु जहन्नम, ला युक़्ज़ा अ़लैहिम् फ़ यमूतू वला युख़फ़्फ़फ़ु अ़न्हुम् मिन् अ़ज़ाबिहा, कज़ालिक नज्ज़ी कुल्ल कफ़ूर। वहुम् यस्वत्वरिख़ून फ़ीहा, रब्बना ! अख़्रिज्ना नअ़्मल् स्वालिहन् ग़ैरल्लज़ी कुन्ना नअ़्मलु, अवलम् नुअ़म्मिर्कुम् मायतज़क्करु फ़ीहि मन् तज़क्कर व जाअकुमुन्नज़ीरु, फ़ज़ूक़ू फ़मा लिज़्ज़्वालिमीन मिन् नस्वीर्।**

( सू० ३५। रु० ४। आ० ३६-३७ )

अर्थः—और जो लोग मुन्किर हैं उनके लिए दोज़ख की आग ( तय्यार ) है, न तो उनको क़ज़ा आती है कि मर रहें और न दोज़ख का अज़ाब ही उनसे हल्का किया जाता है, हम हरएक नाशुक्र को इसी तरह सज़ा दिया करते हैं। और यह लोग दोज़ख में ( पड़े ) चिल्लाते होंगे कि ऐ हमारे पर्वर्दिगार हमको ( यहाँ से ) निकाल कर फिर दुनिया में ले चल कि हम जैसे अमल करते रहते थे वैसे नहीं ( बल्कि ) नेक अमल करेंगे। ( हम उनको जवाब देंगे कि ) क्या हमने तुमको इतनी उम्रें नहीं दी थीं कि जिसको

सोचना ( मंजूर ) होता वह इतनी उम्र में ( अच्छी खासी तरह ) सोच-समझ लेता, और ( उसके अलावा ) तुम्हारे पास ( हमारे अज़ाब से ) डराने वाला ( रसूल भी ) पहुँचा, तो अब ( अपने किए के ) मजे चखो कि नाफ़र्मान लोगों का ( यहाँ ) कोई मददगार नहीं ।

**(४३) लक़द् हक़्क़ल् क़ौलु अ़ला अक्सरि हिम् ला योमिनून् । इन्ना जअ़ल्ना फ़ी अअ़्नाक़िहिम् अग़्लालन् फ़हिय इलल् अज़्क़ानि फ़हुम् मुक़्म.हून् । व जअ़ल्ना मिम्बैनि ऐदीहिम् सद्दंव्वमिन् ख़ल्फ़िहिम् सद्दन् फ़ अग़शैनाहुम् फहुम् ला युब्स्विरून् ।**

( सू० ३६ । रु० १ । आ० ७-९ )

अर्थः—इनमें से अक्सर पर तो फ़र्मूदा ( खुदा ) पूरा हो चुका है तो यह ( किसी तरह ) मानने वाले नहीं, हमने इनकी गर्दनों में ( भारी-भारी ) तौक़ डाल दिये हैं और वह ठोड़ियों तक (फँसे हुए ) हैं तो इनके सिर (ऐसे) उलझकर रह गए हैं ( कि इनको) रस्ता दिखाई ही नहीं देता । और हमने एक दीवार ( तो ) इनके आगे बनाई और एक दीवार इनके पीछे, और ऊपर से इनको दिया ढाँप तो यह देख ही नहीं सकते ।

**(४४) क़ुलिल्लाह अअ़्बुदु मुख़्लिस्वल्लहू दीनी, फ़अ़्बुदू माशेतुम् मिन् दूनिही, क़ुल् इन्नल् ख़ासिरीनल्लज़ीन ख़सिरू अन्फ़ुसहुम् व अःलीहिम् यौमल् क़ियामति, अला ! ज़ालिक़ हुवल् ख़ुस्रानुल् मुबीनु लहुम् मिन् फ़ौक़िहिम् ज़्वुललुम् मिनन्नारि व मिन् तःतिहिम् ज़्वुललुन्, ज़ालिक युख़व्विफ़ुल्लाहु बिही अ़िबादहू, या अ़िबादि फ़त्तक़ून् ।**

( सू० ३९ । रु० २ । आ० १५-१६ )

अर्थ :— ( ऐ पैग़म्बर इन लोगों से ) कहो कि मैं तो खुदा ही की फर्माबर्दारी मद्दे नज़र रखकर उसी की इबादत करता हूँ, ( रहे तुम ) सो उसके सिवा जिसको चाहो पूजो, ( तुम ही को उसका खमयज़ा भुगतना पड़ेगा । ऐ पैगम्बर इन लोगों से) कह दो कि फ़िल् हक़ीक़त घाटे में वह लोग हैं जो क़यामत के दिन अपना और अपने अहलो अयाल का नुक्सान कर लेंगे। सुनी जो ! यही तो सरीह घाटा है उनके ऊपर से आग ही का उनका ओढ़ना

होगा और उनके नीचे ( आग ही का ) बिछौना, यही ( तो वह अज़ाब है) जिससे खुदा अपने बंदो को डराता है' तो ए हमारे बंदो ! हमारा ही डर मानो ।

**(४५) अल्लज़ीन कज़्ज़बू बिल् किताबि व बिमा अर्सल्ना बिही रुसुलना, फ़ सौफ़ यअ्‌लमून्। इज़िल्अग़लालु फ़ी अअ्‌नाक़िहिम् वस्सलासिलु युस्‌हबून, फ़िल्‌हमीमि, सुम्म फ़िन्नारि युस्जरून्। सुम्मक़ील लहुम् ऐन म कुंतुम् तुश्रिकून, मिन् दूनिल्लाहि, क़ालू ज़ल्लू अन्ना बल्लम् नकुन्नदऊ मिन् क़ब्लु शैअन् । कज़ालिक युज़िल्लुल्लाहुल् काफ़िरीन् ।**

( सू० ४० । रु० ८ । आ० ७० से ७४ )

अर्थ :– (यह) वह लोग (हैं) जो (इस) किताब (यानी कुर्आन को झुठलाते हैं और उन) (किताबों और सहीफ़ों) को (भी झुठलाते हैं) जो तुमने अपने (दूसरे) पैग़म्बरों की मारफ़त भेजे हैं सो आख़िरकार इनको (इस झुठलाने का नतीजा) मालूम हो जायगा । जब कि तौक़ इन की गर्दनों में होंगे, और (तौक़ों के अलावा) जंजीरें (पानी पिलाने के लिए) घसीटते हुए उनको झुलसते पानी में ले जायेंगे, फिर आग में झोंक जायेगे, फिर इनसे पूछा जायगा कि खुदा के सिवा तुम जिन (माबूदों) को शरीके (खुदाई) ठहराते थे (अब) वह कहाँ हैं, वह कहेंगे (अब तो वह) हमसे खो गए (कि कहीं नज़र नहीं आते) बल्कि (असल बात तो यह है कि) हम तो (इससे) पहले (खुदा के सिवा) किसी (और) चीज़ की पूजा करते ही न थे, अल्लाह काफिरों को इसी तरह बदहवास कर देगा ।

**(४६) इन्नल्लाह युद्ख़िलुल्लज़ीन आमनू व अमिलुस्स्वालिहाति जन्नातिन् तज्री मिन् तःतिहल् अन्हारु, वल्लज़ीन कफ़रू यतमत्तऊन व याकुलून कमा ताकुलुल् अन्आमु वन्नारु मस्वल्लहुम् ।**

( सू० ४७ । रु० २ । आ० १२ )

अर्थ :—जो लोग ईमान लाए और उन्होने नेक अमल (भी) किए बिला सुबहः उनको अल्लाह (बहिश्त के ऐसे) बागों में ले जा दाखिल करेगा जिनके तले नहरें (पड़ी) बह रही होंगी और जो लोग मुंकिर हैं (दुनिया में बेफिक्री

के साथ) रसते बसते और जिस तरह चार पाए खाते (पीते) हैं यह भी (अनाप-शनाप) खाते (पीते) हैं, और इनका (आखिरी) ठिकाना दोज़ख है।

**(४७) मुहम्मदुर्रसूललुल्लाहि, वल्लज़ीन मअ़हू अशिद्दाउ अ़लल् कुफ़्फ़ारि रुहमाउ बैनहुम्। (सू० ४८। रु० ४। आ० २९)**

अर्थ :—मुहम्मद खुदा के भेजे हुए (पैग़म्बर) हैं, और जो लोग उनके साथ हैं काफ़िरों के हक़ में बड़े सख्त (हैं मगर) आपस में रहम दिल।

**(४८) सुम्म इन्नकुम् ऐयुहज़्ज़वाल्लूनल् मुकज़्ज़िबून्। ल आकिलून मिन् शजरिम् मिन् ज़क़्क़ूमिन्, फ़मालिऊन मिन्हल्बुत्वून, फ़ शारिबून अ़लैहि मिनल् .हमीम्। फ़ शारिबून शुर्बल् हीम्, हाज़ा नुज़ुलुहुम् यौमद्दीन्।**

**(सू० ५६। रु० २। आ० ५१ से ५६ तक)**

अर्थ:—फिर ऐ गुमराहो! (और क़यामत के) झुठलाने वालों! तुमको (दोज़ख में) थूहर का दरख्त खाना होगा और इसी से पेट भरना पड़ेगा फिर ऊपर से झुलसता हुआ पानी पीना होगा और पीना (भी) होगा (तो डकड़का कर) प्यासे ऊँटों का सा पीना, क़यामत के दिन यह उनकी ज़याफ़त होगी।

**(४९) लातजिदु क़ौमैंयोमिनून बिल्लाहि वल् यौमिल् आख़िरि युवाद्दून मन् हाद्दल्लाह वरसूलहू वलौ कानू आबाअहुम् औ अब्नाअहुम् औ इख़्वानहुम् औ अशीरतहुम्, उलाइक कतब फ़ी क़ुलूबिहिमुल् ईमान व ऐयदहुम् बिरूहिम् मिन्हु, वयुद्ख़िलुहुम् जन्नातिन् तज्री मिन् तःतिहल् अन्हारु ख़ालिदीन फ़ीहा।**

**(सू० ५८। रु० ३। आ० २२)**

अर्थ :—[illegible]) जो लोग अल्लाह और रोज़े आखिरत का यक़ीन रखते हैं उनको तो तुम न देखोगे और उसके रसूल के मुख़ालिफ़ों के साथ दोस्ती रखें, गो वह उनके बाप या उनके बेटे या उनके भाई या उनके कुन्बे ही के (क्यों न) हों यही (वह पक्के मुसलमान) हैं जिनके दिलों के अन्दर खुदा ने ईमान का नक़्श कर दिया है, और अपने फ़ैज़ाने ग़ैबी से उनकी ताईद की

है, और वह उनको (बहिश्त के ऐसे) बागों में ले जा दाखिल करेगा, जिनके तले नहरें (पड़ी) वह रही होंगी और (वह हमेशा) हमेशा उन्हीं में रहेंगे।

**(५०) याऐयुहन्नबीयु ! जाहिदिल् कुफ़्फ़ार वल् मुनाफ़िक़ीन वग़्लुज़्व अ़लैहिम्, वमा वाहुम् जहन्नमु, व बेसल्मस्वीर्।**

( सू० ६६। रु० २। आ० ६ )

अर्थ:—ऐ पैग़म्बरो काफ़िरों के साथ (हाथ से) और मुनाफ़िकों के साथ (ज़बान से) जिहाद करते रहो, और उन पर सख़्ती रखो, और उनका ठिकाना दोज़ख़ है, और वह (बहुत ही) बुरी जगह है।

**(५१) इन्नल्लज़ीन कफ़रू मिन् अ:लिल् किताबि वल् मुश्रिकीन फ़ी नारि जहन्नम ख़ालिदीन फ़ीहा, उलाइक हुम् शर्रुल् बरीय:।**

( सू० ६८। रु० १। आ० ६ )

अर्थ:—वेशक अहले किताब और मुश्रिकीन में से जो लोग (दीने हक़ से) इन्कार करते रहे (वह आख़िरकार) दोज़ख़ की आग में होंगे (और) उसमें हमेशा (हमेशा) रहेंगे, यही बदतरीन ख़लायक हैं।

# ब्रह्म पारायण यज्ञों के विषय में कतिपय विद्वानों की सम्मतियाँ

(१)

हैदराबाद आर्य सत्याग्रह संग्राम के संचालक स्वर्गीय स्वतन्त्रतानन्दजी महाराजः—"वेद पारायण यज्ञ नाम का कोई यज्ञ नहीं है। अपढ़ लोगों ने ऋषि के यज्ञ लिखने की आड़ में यह दुष्कार्य आरम्भ कर रखा है। इसका निवृत्त होना आवश्यक है अन्यथा वैदिक धर्म की हानि होगी तथा साधारण जनता में भ्रम उत्पन्न होगा।"

(२)

सार्वदेशिक धमार्य सभा के भूतपूर्व प्रधान, वेद-शास्त्र निष्णात स्वर्गीय स्वामी वेदानन्दजी तीर्थ :—"किसी समय मैं इन यज्ञों को कराता रहा लोक प्रवाह में वह कर। किन्तु अब मैं इनके अनुकूल नहीं रहा। अपठित लोगों ने इसका प्रचलन किया और अपठितों के लिये।"

(३)

त्रिवेद तीर्थ श्री स्वामी मुनीश्वरानन्दजी सरस्वतीः—

"आर्य समाज से इस टकापंथीय आडंबर को मिटाने के लिये पर्याप्त शक्ति लगानी पड़ेगी।"

(४)

श्री आचार्य विद्यानन्दजी विदेह :—

"ये यज्ञ व्यवसाय बन गये हैं और इनके निराकरण के लिये ठोस और संगठित कार्य करना पड़ेगा। रोग बहुत अधिक फैल चुका है और पेशेवर

लोग आँख के अन्धों और गाँठ के पूरे लोगों को फुसलाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं।"

(५)

सार्वदेशिक धर्मार्य सभा के भू० प्रधान, वेद एवं कर्मकांड तत्वज्ञ तपस्वी आर्यनेता श्री पं० रामदत्तजी शुक्ल एम० ए० एल० एल० बी० :—"पारायण रीति श्रौत यज्ञ परम्परा से भिन्न एक कल्पित पद्धति है। अग्नि होत्र से लेकर अश्वमेघ पर्यन्त यज्ञ करने का विधान आर्यों के लिये महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका प्रतिज्ञा भाग में किया है। पारायण यज्ञ के लिये आधार प्रमाण प्राप्त नहीं होता।"

(६)

वेद-वेदांग निष्णात श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक :—"न यह श्रौत है न गृह्य, न स्मार्त। जैसे दुर्गा सप्तशती के प्रत्येक श्लोक से या तुलसी रामायण की प्रत्येक चौपाई से यत्र-तत्र हवन होते हैं तद्वत् ही यह भी है।"

(७)

भारत के सुप्रसिद्ध वेद के विद्वान् श्री डॉ० मंगलदेवजी शास्त्री :— परम्परागत भावनाओं से प्रेरित होकर अर्थ को नितरां न समझते हुए भी सहस्रो मन्त्रों से स्वाहा-स्वाह करते हुए बड़े-बड़े हवनों में लक्ष्यों रुपयों का व्यय (या अपव्यय ?) करते हुए देखे जाते हैं। वास्तव में वैदिक भावनाओं के सर्व साधारण प्रचार में इससे बड़ी हानि सदा से ही होती रही है। निश्चय ही वेदों की वास्तविक महत्ता संसार पर इस प्रकार के यज्ञों से नहीं प्रकट हो सकेगी।

(८)

सार्वदेशिक धमार्थ सभा का निश्चय :—"ब्रह्म पारायण यज्ञ इस नाम के यज्ञ का विधान अभी उपलब्ध नहीं हुआ।"

सभा का यह निश्चय पहले का था बाद में उसने पारायण के पक्ष में निर्णय दे दिया।

# मीरा

**❋ ब्रह्मचारी धीरेन्द्र आर्य (दिल्ली)**

मेवाड़ की ख्याति प्राप्त मीरा महाराणा साँगा की पुत्रवधू थीं, महाराणा साँगा के जेष्ठ पुत्र भोजराज के साथ मीरा का पाणिग्रहण सम्पन्न हुआ। मीरा मेड़ते के राववीरम देव के लघुभ्राता रत्नसिंह की पुत्री रत्न थी। यह विवाह वि० सम्वत् १५७३ में हुआ था।

"मीराबाई के समय को जितना राजनीतिक महत्व प्राप्त है, उससे कम धार्मिक और साहित्यक नहीं। यह वह समय था जब उत्तरी भारत में सर्वत्र आध्यात्मिक साधना की विचार-धारायें फैल रही थीं। मीरा के दादा रावदूदा जी अनन्य कृष्ण भक्त थे। वे अपने पौत्र जयमल व पौत्री मीरा को सदा अपने पास ही रखते थे। इस प्रकार मीरा को कृष्ण भक्ति विरासत में मिली थी। विवाह के उपरान्त मीरा चित्तौड़ आई, यहाँ का वातावरण मीरा के लिये अत्यन्त भिन्न था, पितृगृह में मीरा दैनिक कर्म करने में स्वतन्त्र थीं, भक्ति विषयक संस्कार अत्यन्त प्रबल थे, श्रद्धा एवं सात्विक भावनाओं की वह साक्षात् मूर्ति थी। वि० संम्वत् १५७५—८० के मध्य भोजराज की मृत्यु हो गई और मीरा साङ्गा की विद्यमानता में ही अल्य समय में विधवा हो गई।

इधर बाबर के साथ मीरा के श्वसुर महाराणा साङ्गा का युद्ध चल रहा था, कालपी में विश्वास घाती मन्त्री के षड्यन्त्र रचे जाने पर युद्ध क्षेत्र में साङ्गा को वीर गति प्राप्त हो गई, इसी प्रकार खानवे के युद्ध क्षेत्र में मीरा के पिता रत्नसिंह वीरता से लड़ते हुए मृत्यु को प्राप्त हो गये। इन पारिवारिक दुर्घटनाओं ने मीरा के चित्त को अधिक विरक्त कर दिया। अब वह अधिकाधिक ईश्वर भक्ति में लीन रहने लगी। उसका अधिकाँश समय साधु, सेवा सत्संग और भोजन कीर्त्तन में ही कटने लगा। साङ्गा के पश्चात् मीरा के

देवर रत्नसिंह द्वितीय चित्तौड़ की गद्दी पर बैठे, परन्तु बून्दी वालों ने उनकी राजनीतिक घटनाओं को बदलना चाहा। विक्रमादित्य और उदयसिंह दोनों ही महाराणा साङ्गा के पुत्र थे और जिनका जन्म हाड़ी कर्मादेवी के गर्भ से हुआ, जिनको महाराणा ने अपने जीवन काल में रणथम्भोर जैसी बड़ी जागीर दी थी और उदयसिंह को राणा रत्नसिंह द्वितीय हृदय से नहीं चाहते थे शिकार में ले जाकर मारा डाला। फिर उनके स्थान पर मीरा के देवर विक्रमादित्य जो बून्दी के हाड़ों का भाणेज था, रणथम्भोर से चित्तौड़ की गद्दी पर आकर बैठा। इस देवर राणा ने मीरा को बहुत यातना दी। मीरा की अवमानता करते थे, इसने कुछ भी उठा न रखा। विक्रमादित्य का एक मन्त्री जो जाति का विजय वर्गी वैश्य था, उसके साथ एक विष का प्याला इसी महाराणा ने मीरा के पास भेजा। मीरा ने उसको शुद्ध भावना से पी लिया। मीरा के कष्ट की स्थिति सुनकर उसको मेड़ते बुला लिया गया. परन्तु वहाँ भी उसका मन नहीं लगा, तब वह तीर्थ यात्रा के लिये गई और यात्रा के पश्चात् वह पुनः चित्तौड़ आई। परन्तु विक्रमादित्य द्वारा दिये जाने वाले कष्ट और अपमान में कोई अन्तर नहीं आने से वह चित्तौड़ छोड़कर द्वारका चली गई।

द्वारका में ही मीरा की मृत्यु वि० सम्वत् १६२०—३० के मध्य में हुई। मीरा की आयु मृत्यु के समय ७० वर्ष के लगभग रही थी। इसी प्रकार मीरा की भक्ति, राजस्थान की सीमा को लाँघ कर पूर्व में व्रज और पश्चिम में गुजरात तक फैल गई।

मीरा की अपूर्व भक्ति उसके जीवन काल में ही दूर-दूर तक फैल गई। और सुदूर स्थानों से साधु सन्त उससे मिलने आया करते थे। यह विक्रमादित्य को पसन्द नहीं था। इसलिये उसने उनको तरह-तरह के कष्ट दिये थे।

मीरा के भजन भारत भर में प्रसिद्ध हैं। उनके बनाये सैंकड़ों भजन आज भी भक्त मण्डली में गाये जाते हैं। उनकी कविता भक्ति रस पूर्ण सरल और सरस है। उसने राम गोविन्द नाम का एक भक्तिरस पूर्ण ग्रन्थ भी लिखा है।

मीरा के काव्य का मूल्य नहीं आँका जा सकता, कविता में मीरा की जीवन-साधना बोल रही है। उनके भजन आज ४०० वर्षों की लम्बी अवधि के बाद भी झोंपड़ी से लेकर महलों तक सबको संगीत मय कर रहे हैं।

मीरा भक्तजगत् की महा विदुषी और धर्म परायण, कोमल हृदय की करुणा पूर्ण एक महान् दयावती नारी रत्न थी। जो आध्यात्मिक जगत् में सदा अमर रहेगी, और उसके साथ-साथ पुनीत और पुण्य भूमि चित्तौड़ गढ़ भी।

# आर्य जनता से आवश्यक अपील

श्री पं धर्मवीर जी आर्य झण्डाधारी एक मिश्नरी प्रचारक हैं, उनके हृदय में आर्य समाज के प्रचार की एक अनोखी लगन है। वे दस वर्षों तक आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान, मालवा, अजमेर के आधीन रहकर अजमेर जिले के ग्रामों में जहाँ ईसाइयत का जाल फैला हुआ है अनेकों आर्य समाज स्थापित कर चुके हैं। आज़मगढ़, बलिया, गाजीपुर आदि ज़िलों में आर्य समाज की स्थापना और शुद्धि का कार्य कर चुके हैं।

इस के साथ ही हिन्दी रक्षा आन्दोलन में, गौ रक्षा आन्दोलन में, ईसाइयत के विरुद्ध दिल्ली के प्रसिद्ध आन्दोलन में आप जेल यातनायें भोग चुके हैं। मैं आर्य जनता से अपील करता हूँ कि श्री वेदपथिक पं० धर्मवीर जी आर्य झंडाधारी जी की उत्तम हवन सामग्री तथा उनकी उपयोगी पुस्तकें मंगवा कर उनकी सहायता करें।

पुस्तकें तथा हवन सामग्री मंगवाने के लिए पत्र इस पते पर लिखें :—

**वेद पथिक धर्मवीर आर्य झंडाधारी**
आर्य हवन सामग्री निर्माण शाला
सरायरुहेला, नई सड़क—५

# भगवान् बुद्ध और वैदिक धर्म

(प्रिन्सिपल अविनाश चन्द्र जी बोस)
( एम .ए. पी. एच. डी., )

भारत के लिए महात्मा बुद्ध की २५०० वीं जयन्ती का मनाना एक महत्वपूर्ण घटना थी। इस भारत के महान् मुनी ने जिसे पौराणिक हिन्दुओं ने भी नवम् अवतार के रूप में सम्मानित किया और जिस का समस्त सुधारवादी हिन्दुओं ने उसके महान् आदर्शवाद और श्रेष्ठ व्यक्तित्व के लिए आदर किया युग निर्माता के रूप में उन्होंने जो कार्य किया था उसे प्रमुखता दिलाई। ऐतिहासिक दृष्टि से भगवान् बुद्ध के विषय में एक बहुमूल्य साहित्य लिखा गया है जिस में स्व० श्री आनन्दकुमार स्वामी श्री और श्रीमती राइस-डेविडस और डा० राधाकृष्णन् जी द्वारा लिखित पुस्तकों का समावेश है और वर्तमानकाल में भी इस विषय पर कई लेख लिखे गये हैं किन्तु अधिक साहित्य की आवश्यकता और आशा की जाती है विशेषतः वेदों के साथ महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं की शृङ्खला के विषय में।

गत कई वर्षोंसे हमारे विद्यालयों की पाठ्य पुस्तकों के द्वारा यह पढ़ाया जाता रहा है कि बौद्ध मत में ब्राह्मणवाद का विरोध था और यह वैदिक धर्म के विरुद्ध एक क्रान्ति थी। साथ ही वैदिक धर्म के विषय में जो सूचना हमारे युवक गत शताब्दी से अधिक काल से प्रतिवर्ष प्राप्त करते रहे हैं वह यह है कि इसमें पशुओं की बलि दी जाती थी और भगवान बुद्ध ने गरीब पशुओं को वैदिक पुरोहितों से बचाने का यत्न किया। इस वर्णन ने वेद और वैदिक धर्म के विषय में वास्तविक तथ्यों पर आवरण डाल दिया है। हमारे विद्यार्थियों को यह नहीं बतलाया जाता कि महात्मा बुद्ध के मन में वैदिक ब्राह्मणों के चरित्र के लिए इतने आदर का भाव था कि वे सब वर्गों में से लोगों को ब्राह्मण बनाना चाहते थे जो ब्राह्मणों के गौरव में भाग ले सकें

( देखो धम्मपद ब्राह्मणवग्ग ) और यह बात कम महत्व की नहीं कि महान् अशोक ने अपने शिला लेखों के द्वारा जनता को शिक्षा देते हुए बौद्ध भिक्षु प्रचारक श्रमणों से पूर्व सर्वत्र ब्राह्मणों का नाम लिया है। अब तक हमारे विद्वानों ने भारत में बौद्ध मत के इतिहास को शुद्ध दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने का प्रयत्न नहीं किया। बहुत से विदेशी विद्वानों की कठिनाई यह है कि वे यह कल्पना नहीं कर सकते कि एक नवीन मत को जिसने पुराने धर्म की आलोचना की और लोगों को परम्परागत मार्ग से हटाया, पुराने धर्म के मानने वाले उसे किस आदर से देख सकते हैं और नवीन मार्ग दर्शक जो कई अंश में क्रान्तिकारी हैं प्राचीन परम्परागत धर्म के नेताओं में आदर युक्त स्थान प्राप्त कर सकता है।

पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड की Mahatma Buddha an Arya Reformer ( महात्मा बुद्ध एक आर्य सुधारक ) यह पुस्तक एक अत्यन्त अभिनन्दतीय प्रकाशन है। इस पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमें महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं का वेद के साथ सम्बन्ध की दृष्टि से अनुशीलन किया गया है और इस विषय पर नवीन प्रकाश डाला गया है। उदाहरणार्थ पण्डित जी ने बताया है कि ललित विस्तर में बुद्ध के विषय में स्पष्ट लिखा है कि—

स ब्रह्मचारी गुरु गेहवासी, तत्कार्यकारी विहितान्नसेवी।
सायं प्रभातं च हुताशसेवी, व्रतेन वेदांश्च समध्यगोष्ट ॥

अर्थात् सिद्धार्थ ने ब्रह्मचारी बन कर गुरुकुल में निवास किया गुरुओंकी सेवा की, शास्त्रविहित आहार का सेवन, प्रातःसायम् अग्निहोत्र तथा ब्रह्मचर्य के व्रत का पालन करते हुऐ वेदों का अध्ययन किया।

इस पुस्तक का सप्तम अध्याय उन लोगों की आँखें खोल देगा जो समझते रहे हैं कि बुद्ध वेदों का विरोधी था। बुद्ध की वेदगू अथवा वेदज्ञ की परिभाषा जैसे कि सुत्तनिपात श्लोक ५२९ में बतायी गई है यह है कि—

**वेदानि निचेय्य केवलानि, समणानं यनि प अत्थि ब्रह्मणानम्।**
**सब्बा वेदनासु वीतरागो, सब्बं वेदमनिच्च वेदगूसो ॥**

अर्थात् जिसने वेदों का अध्ययन किया है और जो सारे संसारको अनित्य समझते हुए सब वासनाओं, आसक्ति और राग से रहित हो गया है वह वेदज्ञ है।

पं० धर्मदेव जी ने बताया है कि महात्मा बुद्ध का वेदविषयक यह विचार

अङ्गरेजी में बौद्धग्रन्थों के अनुवाद का अध्ययन करने वालों से इसलिए अज्ञात रहा कि उन अनुवादों में वेदगू का अर्थ, वेदज्ञ के स्थान में केवल ज्ञानी ( Lores adept ) या सिद्ध ( Accomplished ) इत्यादि कर दिया गया है और जहाँ सुत्तनिपात श्लो. ७९२ आदि में विद्वां च वेदेहि समेच्च धम्मं न उच्चावचं गच्छति भूरपञ्जो । यह कहा गया है कि बुद्धिमान् वेदों के द्वारा धर्म का ज्ञान प्राप्त करके डांवाडोल नहीं होता वहाँ अंगरेजी अनुवादों में केवल Wisdom वा ज्ञान ऐसा अर्थ कर दिया है जो यथार्थ नहीं। उन्होंने सुत्त-निपात श्लो ५६८ को भी इस वेद विषयक प्रकरण में उद्धृत किया है कि—

अग्गिहुत्तमुखा यञ्ञा, सावित्ती छंदसो मुखम् ।

अर्थात् यज्ञों में प्रधान अग्निहोत्र है और वेद का मुख सावित्री वा गायत्री मन्त्र है। इस प्रकार के वचनों मे महात्मा बुद्ध का वेद और सच्चे वैदिक विद्वानों के लिए आदर का भाव सूचित होता है। पण्डित जी ने बुद्ध की पंचशील अष्टाङ्ग मार्ग आदि विषयक शिक्षाओं की वेदों और वैदिक साहित्य में दिये वचनों से समानता को भी दिखाया और इस सामान्य विश्वास का खण्डन किया है कि महात्मा बुद्ध नास्तिक थे। महात्मा बुद्ध ने वैदिक शब्द आर्य का जो बार-बार प्रयोग किया है इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उन्हें इससे कितना प्रेम था। वे भी वेदों के कृण्वन्तो विश्वमार्यम् इस आदेश के अनुसार सब को आर्य अर्थात् श्रेष्ठ धर्मात्मा अहिंसादि व्रत पालक बनाना चाहते थे।

श्री आनन्द कुमार स्वामी ने अपनी पुस्तक Buddha and the Gospel of Buddhism में एक स्थान पर कहा है कि बुद्ध का विशाल वैदिक विचार जगत् में एक अल्प स्थान है। विज्ञान भिक्षु के विषय में कहा जाता है कि उन्होंने बौद्ध दर्शन की सप्तम वैदिक दर्शन के रूप में गणना की थी। संयुक्त निकाय में गौतम ने एक प्राचीन नगर का वर्णन किया जो चारों ओर घने जँगल से घिर गया था और एक राजाने उस घने जंगल को साफ़ करा दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि उस नगरी की शोभा द्विगुणित हो गई। इस वर्णन के पश्चात् भगवान् बुद्ध ने कहा कि मैंने भी इसी प्रकार एक पुराने मार्ग को जीवन के प्रचीन मार्ग को खोज निकाला है। प्रचीन काल के बुद्धिमान् लोग इस मार्ग पर चला करते थे। (संयुक्त निकाय १२, ६५, १९ २१ ) मैं भी इसी मार्ग पर आगे बढ़ता जा रहा हूँ। ( १२, ६५, २२ )

पण्डित धर्म देव जी विद्यामार्तण्ड ने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि महात्मा बुद्ध सचमुच ऐसा ही कर रहे थे और उन्हों ने प्राचीन वैदिक ऋषियों और ज्ञानियों के मार्ग के विषय में प्रामाणिक सूचना देने का प्रयास किया है। उन्होंने जो आवश्यक महत्वपूर्ण कार्य इस सम्बन्ध में किया है इस के लिये मैं उन्हें बधाई देता हूँ। पर मैं यह भी आशा करता हूँ कि विशाल वैदिक साहित्य और साथ ही बौद्ध साहित्य में जो विशालता उन्हें प्राप्त है वे अपने इस विषय का और भी अधिक विस्तृत विवेचन करके वैदिक धर्म और बौद्ध मत के सम्बन्ध के विषय में जो बहुत काल से भ्रान्तियां चली आ रही हैं उनके निवारण में सहायक होंगे।

---

# वानप्रस्थी श्री नन्दलाल वैदिक मिशनरी

प्रसिद्ध प्रचारक श्री नन्दलाल जी वानप्रस्थी १६१६ से प्रमुख राष्ट्रीय कार्यकर्ता रहे हैं। स्वतन्त्रता आन्दोलन में उन्होंने अनेक बार जेल यात्रा की। दयानन्द सालवेशन मिशन होशियारपुर के प्रमुख उपदेशक के रूप में लगभग १५ वर्ष तक सारे भारत में प्रचार करते रहे।

काश्मीर की १६३० की गड़बड़ में शेख अब्दुला के षडयन्त्रों का पता लगाने के लिए अपने आप को भारी संकट में डाल कर मुस्लिम वेश और मुस्लिम नाम से सारे जम्मू काश्मीर में घूमते रहे। १६३६ में हैदराबाद दक्षिण के सत्याग्रह, १६५८ में पंजाब के हिन्दी आन्दोलन, १६६६ के गौरक्षा आन्दोलन में निर्भय हो कर काम किया और अनेक बार जेल यात्रा की। १६४२ में डाक्टर श्यामाप्रसाद मुकर्जी की आज्ञानुसार बंगाल के भयंकर दुर्भिक्ष में कई मास तक काम करते रहे। १६४७ से १६६२ तक लगातार १७ वर्ष तक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से अधीन उपदेशक के रूप में काम करते रहे।

१६५७ में पण्डित जी ने लगातार छः मास नैपाल में प्रचार कार्य किया। अपनी आयु के ६७ वर्षों में लगभग ५० वर्ष लगन और निष्ठा के साथ जन-सेवा करने के पश्चात् ३ फरवरी शनिवार वसन्त के पवित्र अवसर पर अपने निवास स्थान बाली मुहल्ला जालन्धर में श्री पं० दीनानाथ जी सिद्धान्तालंकार के निरीक्षण में लगातार दस दिन दोनों समय यजुर्वेद पारायण यज्ञ करने के साथ भारत के प्रसिद्ध महात्मा भक्त खेमचन्द जी चाँदपुरा वाले तथा हरिद्वार आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर की संन्यासी आनन्द रीति द्वारा भारी जनता के सम्मुख विधिपूर्बक दीक्षा लेकर वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश किया। दीक्षा के पश्चात् आप मध्य प्रदेश और दक्षिण के दौरे पर जा रहे हैं। आप अपना कार्य क्षेत्र आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर में बनाएंगे।

# अखिल भारतीय प्राच्य विद्या ( आर्य विद्वत् ) परिषत्

१३१, भगतसिंह मार्केट, दिल्ली—१

परिषत् ने निम्न विशिष्ट सम्मानार्थक उपाधियों से निखिलविश्व के प्रख्यात विद्वानों को सम्मानित करने का निश्चय किया है :—

| | वेद व वैदिक साहित्य | दर्शन |
|---|---|---|
| (१) प्रथम श्रेणी | प्रभाकर | प्रभाकर |
| (२) द्वितीय श्रेणी | भूषण | भूषण |
| (३) तृतीय श्रेणी | रत्न | रत्न |
| (४) श्रेणीचतुर्थ | विशारद | विशारद |

पाठकों से सानुरोध प्रार्थना है कि सुयोग्य विद्वानों के नामों की सूची, उनकी विशिष्ट योग्यता का संक्षिप्त परिचय हमारे कार्यालय में भेजने की कृपा करें।

परिषत् ने यह भी निश्चय किया है कि ऊपरि-लिखित उपाधियों को उन विद्वानों को भी प्रदान किया जायगा जिन्होंने अपनी खोज पूर्ण कृतियाँ वेद, वैदिक साहित्य अथवा दर्शनों के आधार पर, मौलिक रूप से लिखी वा प्रकाशित की हों। प्रत्याशी महानुभाव इस सम्बन्ध में परिषत् से पत्र-व्यवहार करें।

परिषत्, वेद, दर्शन, संस्कृत साहित्य तथा ज्ञान विज्ञान सम्बन्धी विषयों में वार्षिक परीक्षायें लेने तथा उत्तीर्ण प्रत्याशियों को विभिन्न उपाधि/प्रमाण पत्रों से अलंकृत करने का प्रबन्ध कर रही है। नियमावली और पाठ-विधि परिषत् के कार्यालय से ५० पैसे भेजकर प्राप्त करें। इन परीक्षाओं का स्तर साधारणतः उच्च होगा। प्रमाण-पत्र विशिष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय श्रेणी के उपलब्ध अङ्कों के आधार पर दिये जायेंगे।

**रामगोपाल भारती**
संयोजक

# प्रसिद्ध शास्त्रार्थ केसरीजी का चतुर्थाश्रम में प्रवेश

संस्कृत, अरबी और फारसी के विद्वान् शस्त्रार्थ महारथी श्री पं० अमर सिंह जी "आर्य-पथिक" ने आर्यसमाज स्थापना दिवस चैत्र शुक्ल प्रतिपदा सम्वत् २०२५ विक्रमी शुक्रवार तारीख २९ मार्च सन् १९६८ को वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर, जि० सहारनपुर में संन्यास धर्म ग्रहण किया। उनका नाम अमरस्वामी सरस्वती रखा गया है।

श्री पण्डितजी ने सनातनधर्मियों, जैनियो, ईसाइयों, मुसलमानों और अहमदियों की कादयानी और लाहौरी दोनों पार्टियों से सैकड़ों शास्त्रार्थ और मुबाहसे करके विजय प्राप्त की और आर्य-समाज के गौरव को बढ़ाया। श्री पण्डितजी को उपदेशक बने लगभग ५० वर्ष हुए और लगभग ७० वर्ष उनकी आयु है। उनके संन्यास ग्रहण पर वेदप्रकाश शुभ कामना करता है। वे वैदिक धर्म के लिए और भी अधिक लाभदायक सिद्ध हों और चिरकाल तक वैदिक धर्म की सेवा कर सकें।

—ॐ—

# सत्यार्थप्रकाश की परीक्षाएँ

गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी ८ सितम्बर ६८ को सत्यार्थप्रकाश की परीक्षाएं सारे देश में होंगी। परीक्षा, पाठ-विधि, आवेदन-पत्र, केन्द्र स्थापना फार्म आदि परीक्षा मन्त्री, आर्य-समाज दरियागज, २, अन्सारी रोड, दिल्ली के पते पर पत्र लिखकर मंगवाएं।

धन्यवाद !

**चमनलाल**
परीक्षामंत्री

—❀—

मुद्रक, प्रकाशक, विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दाईवाड़ा में मुद्रित कर वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क दिल्ली में प्रकाशित किया।

# वेदप्रकाश

वेदोऽखिलो धर्म-मूलम्

वर्ष १६ अङ्क ११ | संस्थापक—गोविन्दराम हासानन्द, ज्येष्ठ २०२५, जून १९६८ | वार्षिक मूल्य ५-०० इस अङ्क का ४० पैसे




## नारियाँ

**शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा आपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः ।**
**अदुः प्रजां बहुलान् पशून् नः पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम् ॥**

अथर्व० ११ । १ । १७ ॥

( शुद्धाः ) शुद्ध, ( पूताः ) पवित्र, ( शुभ्राः ) गौर वर्णवाली ( यज्ञियाः ) पूजनीय ( इमाः योषितः ) ये स्त्रियें ( आपः चरुं ) जल और अन्न के कार्य के प्रति ( अव सर्पन्तु ) प्राप्त हों । ये स्त्रियें (नः) हमें (प्रजां) सन्तान (अदुः) देती रहती हैं । तथा ( बहुलान् पशून् ) बहुत पशुओं को हम प्राप्त होते हैं । ( ओदस्य पक्ता ) चावल आदि पाक का पकाने वासा ( सु-कृतां ) उत्तम करने वालों के (लोक) स्थान को (एतु) प्राप्त हो ।

(१) स्त्रियें शुद्ध, पवित्र, निर्मल और पूजनीय बनकर अपने गृहकृत्य में दत्त-चित्त हों, घर में पानी तथा अन्न का इन्तजाम अति उत्तम रख । (२) उत्तम संतान उत्पन्न करें । (:) गौ आदि गृहोपयोगी पशुओं का निरीक्षण करें । (४) कोई यह न समझे कि अन्न पकाने का कार्य हीन कार्य है । नहीं । यह अन्न पकाने का कार्य इतना महत्त्वपूर्ण कार्य है, कि जो यह कार्य उत्तम करता है, वह स्त्री हो अथवा पुरुष हो, श्रेष्ठ समझा जाता है । इस का हेतु स्पष्ट ही है, कि भोजन आदि पकाने का सम्बन्ध हरएक मनुष्य के स्वास्थ्य के साथ सम्बन्ध रखता है । इसलिये सब का ध्यान इस विषय में आकर्षित होना आवश्यक है । उत्तम पाक बनाने की विद्या जानना जैसा [illegible] उसी प्रकार पुरुष के लिये भी अति उपयोगी है ।

॥ ओ३म् ॥

# वेद प्रकाश

सम्पादक—विजयकुमार आदरी सहसम्पादक—ब्र० जगदीश विद्यार्थी
फो० नं० २६२७६५ फो० नं० २२१३२८

## आत्म-जिज्ञासा

( स्व० श्री पं० जगदीशचन्द्रजी शास्त्री न्यायवेदान्त वाचस्पति )

प्रायः लोग प्रकृति और प्राकृतिक पदार्थों के जानने के लिए शिर-तोड़ प्रयत्न करते हैं। आज कल के हमारे युग में जितने भी जिज्ञासु देखने सुनने में आते हैं वे सब भौतिक तत्त्वों के अन्वेषण में ही अपना बहुमूल्य जीवन लगा देने वाले हैं। कोई आकाश का आर-पार पाना चाहता है, कोई वायु की कांट-छांट में संलग्न है और कोई अग्नि अथवा जल के तत्त्वों का परीक्षण करने में अस्त व्यस्त है और कोई २ तो पृथिवी के गर्भ और समुद्र के अन्तस्तल की छान-बीन करना ही अपने जीवन का चरम लक्ष्य बना लेते हैं। इतना ही नहीं अपितु कोई२ साहसिक तो मंगल चन्द्रमा तक पहुंचने के लिए जनता को प्रेरणा करता दिखाई देता है। अरे ओ, मंगल की उड़ान उड़ने वाले और समुद्र के अन्तस्तल की छान-बीन करने वाले ! कभी यह भी सोचगा कि तू क्या है, दूसरे नाशवान् पदार्थों की खोज करने वाले, कभी अपने आप को भी खोज करेगा या जैसा जन्मता

मरता आया है वैसे ही जन्मता-मरता चला जाएगा ?

वेद को ऐसे साहसी परन्तु अनात्मज्ञानी लोगों पर बड़ी दया आती है और वह करुणापूर्ण शब्दों में आश्चर्य प्रकट करता हुआ उपदेश देता है कि :—

**को ददर्श प्रथमं जायमान**
**मस्थन्वन्तं यदनस्था विभर्त्ति ।**
**भूम्या असुरसृगात्मा क्वस्वित्**
**को विद्वांसमुपागात् प्रष्टुमेतत् ।**

ऋ० १ । १६४ । ४

(१) **कः प्रथमं ददर्श** :—संसार में ऐसा कौन व्यक्ति है जिसने शरीर से भी पहिले विद्यमान आत्मतत्त्व का साक्षात्कार कर लिया हो ? शरीर पीछे की वस्तु है, आत्मा उस की उत्पत्ति से वहुत पहिले की सत्तासम्पन्न वस्तु है, किसने शरीर की उत्पत्ति से भी पहिले विद्यमान रहने वाले आत्मतत्त्व को देखा है, दृढ़ निश्चय-पूर्वक जान लिया है । क्या सचमुच कोई ऐसा व्यक्ति है जिसने शरीर और आत्मा पर सूक्ष्म विचार करके यह जान लिया हो कि शरीर की रचना का उपक्रम होने से भी बहुत पहिले से जीवात्मा का अपना अस्तित्व विद्यमान था। जीवात्मा के विषय में यह जानना कि वह प्रथम अर्थात् शरीर की रचना से भी बहुत पहिले विद्यमान रहने वाला चेतन तत्त्व है यही आत्मदर्शन का प्रारंभिक स्वरूप है, यदि कोई आत्मा के इस पृथक्त्व तथा नित्य चेतनत्व को नहीं देख सकता, तो वह आत्मतत्त्ववेत्ता आत्मद्रष्टा कभी नहीं माना जा सकता इसीलिए क्षणिक विज्ञानवादी बौद्ध और शरीर परिमाणवादी जैनों को आत्मज्ञानी कहना किसी प्रकार से उचित नहीं है ।

(२) **जायमानं अस्थन्वन्तं यत् अनस्थाः बिभर्त्ति** :—उत्पन्न होने वाले अस्थिपञ्जर शरीर को देखो यह अस्थिशून्य आत्मा किस प्रकार हृष्ट-पुष्ट बना देता है ।

जिस आत्मा को अर्थात् पहिले से विद्यमान नित्य चेतन तत्त्व कहा गया है उस को अनस्था कहकर यह भी संकेत किया कि वह अभौतिक, है उसमें अस्थि जैसा कोई विकारी तत्त्व नहीं है। एक ओर जायमान और अस्थन्वान् विकारी शरीर है दूसरी ओर प्रथम विद्यमान और अस्थिरहित अविनाशी आत्मा है । इतने पर भी आश्चर्य यह है कि आत्मा स्वयं अस्थिरहित होता हुआ भी शरीर का पालन-पोषण करता है और अन्न से रस, से रक्त, रक्त से मांस और मांस से अस्थि आदि बनाकर शरीर को हृष्ट-पुष्ट

बना देता है।

जो व्यक्ति आत्मा की सत्ता सिद्ध करने वाले प्रमाण और युक्ति की खोज में रहा करते हैं वे कृपा कर जायमानम् और बिभर्त्ति इन दो पदों की गम्भीरता पर ध्यान दें।

जायमान कहकर मन्त्र ने युक्ति दी है कि यदि आत्मा न होता तो शरीर की रचना ही न हो पाती। यह मिथ्या प्रलाप है कि शरीर अस्थियों के विविध संघात पर आश्रित है। शरीर का वास्तविक आधार अस्थिएँ नहीं आत्मा है और वह भी बिना किसी प्रकार की अस्थि वाला अभौतिक और अजायमान चेतन तत्त्व। यदि आत्मा को स्वीकार न किया जावे तो शरीर में अस्थिएँ तो क्या रक्त की एक बिन्दु भी नहीं बन सकती। उत्पन्न होने वाला अस्थिमय छोटा-सा शिशु शरीर गर्भावस्था में इसी आत्मा के कारण क्षण-क्षण में वृद्धि को प्राप्त होता है और इसी आत्मा के कारण गर्भ से बाहिर आने में समर्थ होता है। यदि आत्मा न होता तो गर्भ में रचना भी न हो पाती।

**बिभर्ति:** – कह कर परोक्ष से प्रत्यक्ष की ओर ध्यान दिलाया गया है। गर्भावस्था में जो कुछ रचना होती है वह तो प्रत्यक्ष की पहुंच से बहुत दूर की बात है क्योंकि वहाँ होने वाले आत्मा के कार्य को कोई भी न तो देख सकता है और न ही किसी को दिखा सकता है परन्तु प्रत्यक्ष में यह बात नहीं है, आप प्रत्यक्ष में जीते जागते व्यक्ति को देख सकते हैं। आपके देखते २ वह व्यक्ति शिशु से कुमार, कुमार से युवा और युवा से वृद्ध हो जाता है। इस प्रत्यक्ष परिवर्तन पर विचार करना आवश्यक है। मन्त्र कहता है कि शरीर को अच्छी प्रकार देखने से प्रतीत होता है कि कोई शरीर के अन्दर चेतन है जो शरीर का पालन-पोषण करता रहता है। जब तक आत्मा शरीर में रहता है तब तक शरीर की उन्नति और जीवन-क्रियाएँ बराबर चालू रहती हैं और ज्यों ही किसी कारण-वशात् आत्मा शरीर से निकल जाता है उसी क्षण शरीर की उन्नति रुक जाती और जीवन-क्रियाएँ समाप्त हो जाती हैं।

**(३) भूम्या: असु: असृक, आत्मा क्वस्वित्** :—भूमि से उत्पन्न अन्न जलादि भोजन से विविध-क्रयायें और रक्त बन सकता है। परन्तु शरीर में आत्मा, जीवन-शक्ति का संचार करने वाला चेतन कहाँ से आता है।

सूक्ष्म विचार करने से यह तो पता लगता है कि हम जो भोजन तत्त्व खाते-पीते हैं उसी का शरीरान्तर्वर्ती जठराग्नि के द्वारा रस, रक्त आदि बन जाता है और

उसी के कारण शरीर में अनेक प्रकार की क्रियाएं और रचनायें होती हैं। परन्तु यह सब कुछ तभी होता है जब तक शरीर में आत्मा की प्रभावशालिनी सता विद्यमान है।

प्रश्न यह है कि आत्मा कहाँ से आया—यह शरीर का पालन-पोषण करने वाला कौन तत्त्व है और नव-शरीर में कहाँ से आ गया। इसके शरीर में जाने के पीछे अवश्य कोई रहस्य छिपा हुआ है, इस रहस्य को जानने के लिये अवश्य प्रयत्न करना चाहिये।

**(४)क' एतम् प्रष्टुम् विद्वांसम् उपागात्**—कौन ऐसा व्यक्ति है जो इस रहस्य को जानने के लिये किसी आत्मज्ञानी विद्वान् की शरण में गया हो ?

हमने आत्म तत्त्व विज्ञान को जीवन का परम लक्ष्य माना है और आत्म-जिज्ञासा को परमावश्यक कर्तव्य स्वीकार किया है। संसार में कोई विरला ही मनुष्य होता है जो आत्मा के जानने की इच्छा करता है और इच्छा करने वालों में से कोई ही परिश्रमी होता है जो किसी विद्वान् की शरण में जाकर इस रहस्य को समझने की योग्यता रखता है और सैंकड़ों योग्य जिज्ञासुओं में कोई सौभाग्यशाली ही व्यक्ति होता है जिसको आत्मदर्शी गुरु की संगति प्राप्त हो और वह इस रहस्य को समझ सके।

ऋषि दयानन्द ने अपनी बहिन और चाचा की मृत्यु को देखकर घर-बार त्याग दिया और बलवती आत्मजिज्ञासा को शान्त करने के लिये वन-वन में भटक-कर अनेक प्रकार के दुःख उठाये, अन्त में स्थितप्रज्ञ प्रज्ञाचक्षु गुरु विरजानन्द जी के दुर्लभ दर्शन प्राप्त किये और उनकी चरण-शरण में रह कर इस महान् रहस्य को समझने में सफलता प्राप्त की। ईश्वर करे कि हम में भी आत्म-जिज्ञासा की प्रबल इच्छा उत्पन्न हो और हम भी आत्मज्ञानी बनकर जन्म-मरण के रहस्य को समझ सकें।

—*—

★ मुनीश्वर देव

# सन्मार्ग को मत छोड़ो

**ओ३म् मा प्रागाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः।**
**मान्तःस्थुर्नो अरातयः। ( अथर्व० )**

अर्थ—(इन्द्र) ये एश्वर्यशाली परमेश्वर! (वयं) हम (पथो मा प्रागाम) सन्मार्ग को छोड़ कर मत चलें। (सोमिनः) शान्तिदायक ( यज्ञात् ) परोपकारयुक्त कर्म से ( मा ) मत पृथक् होवें। (अरातयः) और कृपणतादि दोष (मा) मत (नः) हमारे (अन्तःस्थुः) अन्दर ठहरें, निवास करें।

व्याख्या - यह छोटा-सा वैदिकवाङ्मय मानव जन्म की एक विशेष समस्या को मानो सुलझा-सा रहा है। यदि मनुष्य इस पर गम्भीरता से विचार करे तो उसकी सभी समस्याएँ इस वेदोपदेश द्वारा हल हो सकेंगी, ऐसा विश्वास है। क्षुद्र से क्षुद्र जन भी वेदनिर्दिष्ट मार्ग पर चलता हुआ अपना जीवन सफल बना सकता है, इस में लेशमात्र भी सन्देह नहीं। प्रस्तुत मंत्र में एक भावुक हृदय मानव-इन्द्र—ऐश्वर्यशाली भगवान से याचना करता है कि हे संसार के कण-कण को प्रकाशित करने वाले, उत्तम ज्योति के पुञ्ज परमेश्वर! आप अपने ज्ञानालोक द्वारा हमारे हृदयांधकार को मिटा दो, जिससे हम कभी सुपथ-वेद पथ-भ्रष्ट न हो, सुमार्ग से विचलित न हों। आप की भक्ति व ज्ञानरूपी किरण की चमक हमें सदैव सचेत करती रहे, जिससे विवेक-मार्ग के पथिक बन कर हम सब भ्रष्टाचारों व अनीतियों से सदा विमुख रहें। हम सदैव पारस्परिक आदान-प्रदान, परोपकार-मय श्रेष्ठ कर्मों से भी पृथक् न हों। (यज्ञोवैश्रेष्ठतमं कर्म) इस श्रेष्ठतम कर्म का अनुष्ठान करते हुए हम संसार में आगे बढ़ें। जैसे यज्ञ द्वारा यजमान मित्र-शत्रु के भेदभाव को मिटाकर (मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि

( शेष १९ पर )

# बुद्धि और धर्म

★ श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय, एम. ए.

## धर्म

अंग्रेजी का रिलीजन ( धर्म ) शब्द लैटिन के लिगरे Ligre धातु से बना है जिसका अर्थ है 'बाँधना'। धर्म का अर्थ प्राय: उन नियमों से लिया जाता है जो मनुष्य को बाँधते हैं। स्वतन्त्रता-प्रिय लोग स्वभावत: इसीलिए धर्म का विरोध करते हैं। वे प्रश्न करते हैं कि स्वतन्त्र मनुष्य बाह्य बंधनों के प्रति आत्म-सात् क्यों करे? स्वर्ग के चाव और नरक के भय के कारण मनुष्य परमात्मा की पूजा-उपासना क्यों करे? क्या मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं नहीं है? क्या वह जैसा बोयेगा वैसा नहीं काटेगा? मनुष्य के दैनिक जीवन में परमात्मा के लिए स्थान कहाँ है और वह स्थान होना भी क्यों चाहिये? क्या इतने अधिक धार्मिक सिद्धान्त ढकोसला मात्र नहीं हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि धर्म एक प्रकार का नशा है जिसने मनुष्य के दिमाग को विकृत कर दिया है। इतना ही नहीं, इससे उन्नति रुक गई है और इसने मनुष्य को मनुष्य का विरोधी बना दिया है। क्या धार्मिक जन कुत्तों की तरह आपस में नहीं लड़ते हैं? क्या परमात्मा के पीछे दीवाने की तरह लगने से मनुष्य की प्रवृत्ति कुत्तों जैसी नहीं हो गई है? क्या धर्म के कारण मनुष्य वास्तविकता से दूर पड़ कर मृग-मरीचिका के पीछे नहीं भाग रहा है? ये प्रश्न हैं जो वातावरण में गूँज रहे हैं और प्राय: सभी इन प्रश्नों का उत्तर हाँ में देते हैं।

इसमें सत्य का कुछ अंश हो सकता है परन्तु वह अंश ही हो सकता है, पूर्ण सत्य नहीं। प्रथम तो मनुष्य बड़े सीमित अर्थ में स्वतन्त्र होता है। वह विश्व का निरंकुश शासक भी नहीं होता। उसका तो अपने शरीर पर भी अधिकार नहीं है। वह अपने शरीर का निर्माता नहीं है और न उसका शरीर सदैव उसकी आज्ञा में ही चलता है। शरीर में कहीं जरा-सा भी विकार हो जाने पर वह लँगड़ा या पागल बन जाता है। इसके

साथ ही प्राकृतिक शक्तियाँ हैं जो उसकी स्वतन्त्रता को सीमित करती रहती हैं। आगे बढ़ने के लिए उसे निरंतर संघर्ष करते रहना होता है और वह अनेक बार अपनी दुर्बलताओं को स्वीकार करता है। उस जैसी शक्ल-सूरत के अन्य व्यक्ति या उसकी आकृति से मिलते-जुलते पशु भी हैं। इनकी इच्छाओं की टक्कर भी होती रहती है। एक पग और आगे बढ़ो। मनुष्य के सदैव एक जैसे विचार नहीं रहते, उसका दृष्टिकोण बदलता रहता है। कभी वह घृणा से और कभी वह प्रेम से आविर्भूत होता है। वह गति करता है परन्तु यह नहीं जानता कि किधर जा रहा है। वह कर्म करता है परन्तु यह नहीं जानता कि कर्म क्यों करता है? इस प्रकार की परस्पर विरोधिनी बातों के मध्य गति हुए उसे समाधान की खोज करनी पड़ती है। इस प्रकार के भँवरों में से तैर कर उसे किनारे पर जाना होता है। हम में से बड़े-बड़े अहंकारियों को भी घुटने टेकने पड़ते हैं और एक दिन वह आता है जब उन्हें अपनी पराजय अंगीकार करनी होती है। मनुष्य अपने भूतकाल को भूल सकता है। वह अपने पूर्व जन्म के जीवन की ऊहापोह करने से उपराम रह सकता है, परन्तु उसे अपने भावी जीवन का ध्यान रखना पड़ता है। भले ही वह येनकेन संसार में आ जाय—अचानक संयोगवश अथवा कार्य-कारण की शृङ्खलावश भले ही अभाव से उसकी उत्पत्ति हुई हो या उसका भूतकाल अनादि रहा हो, परन्तु वह भविष्य की ओर से अपनी आँखें बन्द नहीं करता। उसे अपने लक्ष्य पर ध्यान देना होता है। हम में से मूर्ख-से-मूर्ख व्यक्ति में भी दूर-दर्शिता होती है भले ही वह कम हो। वह अपने भविष्य के सम्बन्ध में चिन्तित रहता है। जब मनुष्य की इस चिन्ता के साथ उसकी परवशता की भावना जुड़ जाती है तो उसके हृदय पर किसी अमानवीय और अलौकिक सत्ता की भावना बलात् अधिकार कर लेती है जो न केवल प्रकृति पर ही शासन करती है अपितु मनुष्य का कर्म करने में सहायता देती या बाधा डालती है मनुष्य यह सोच कर कि वह समस्त वस्तुओं का अधिपति है और यह जगत् अन्धी शक्तियों का समूह है वा अन्धी करने वाली पहेली है, अपने को धोखे में रख सकता है। परन्तु इस प्रकार की मान्यता अधिक समय तक नहीं टिकती और किसी न किसी दिन उसका भ्रम दूर हो ही जाता है। घोर-से-घोर नास्तिकों को भी जब वे मरने लगते हैं, इस प्रकार का अनुभव हो जाता है भले ही जीवन में होने वाले इस प्रकार के अनुभवों को

वे स्वीकार न करें। ब्राडला ( Bradlaugh) के विषय में यह कहा जाता है कि उसने जीवन,पर्यन्त दिव्य अलौकिक सत्ता की विद्यमानता की भावना का मखौल उड़ाया और उसने भौतिक शरीर से पृथक् अपनी आध्यात्मिक सत्ता की भावना को अंगीकार न किया, परन्तु जब अन्त समय निकट आया तो उसके मन में यह बात बैठ गई कि मैं किसी अज्ञात स्थान की ओर खिंचा जा रहा हूँ जिसका मुझे निश्चित ज्ञान नहीं है। यह भावना, चाहे इसे भ्रम कहा जाय, धर्म की आधार, भित्ति है और यह सहज ही हिलाई नहीं जा सकती। यदि यह भ्रम माना जाय तो यह ऐसा भ्रम है जो हमारे स्वभाव में निहित है और शुष्क तर्क से दूर नहीं किया जा सकता। आपको इसका नितान्त तर्क-संगत प्रमाण भी नहीं मिल सकता। परन्तु आप इस बात से इन्कार नहीं कर सकते कि संसार में ऐसी बहुत, सी बातें हैं जिनकी नाप तोल तर्क से नहीं हो सकती। क्या ज़ीनो (Zeno) ने यह सिद्ध करने की दर्पोक्ति नहीं की थी कि यूनान का अत्यन्त द्रुतगामी एचिलीं दौड़ में कछुए को नहीं पकड़ सका था? परन्तु क्या यह बात सत्य थी? क्या आप आजकल यह नहीं देखते कि एक साधारण बच्चा कछुए को पकड़ लेता है? ज़ीनो का तर्क वास्तविकताओं के सम्बन्ध में तर्क-वितर्क नहीं करता अतः यह भ्रम, पूर्ण है। लड़कों की स्कूलों में प्रतिदिन दौड़ें होती हैं, वे पारितोषिक प्राप्त करते हैं और ज़ीनो के काल और स्थानविषयक विचित्र विचार एक ओर धरे रह जाते हैं। यदि आपके तर्क की प्रक्रिया आपको वेहूदा बातों की ओर ले जाए तो यह अधिक समय तक आपका मार्ग, प्रदर्शन न करेगी और न कर सकेगी। आपको मिथ्या परिणाम ज्ञात हो ही जायेंगे, अथवा आपको इनकी अनुभूति हो जायगी। ह्यूम प्रसिद्ध संशयवादी थे। उन्होंने एक स्थल पर कहा है :—

"सौभाग्य से ऐसा होता है कि यतः बुद्धि में इन बादलों के साथ तर्क-वितर्क करने की क्षमता नहीं है, अतः प्रकृति उस उद्देश्य की पूर्ति कर देती है। यह प्रकृति मेरे मस्तिष्क को हल्का करके अथवा मेरी ज्ञानेन्द्रियों पर जीवित और मनोरम छाप डाल कर मेरी दार्शनिक उदासी और तन्द्रा को तथा असम्भव कल्पनाओं को भगा देती है। मैं खाता हूँ, खेलता हूँ, वार्तालाप करता हूँ और मित्रों के साथ मनोविनोद करता हूँ और जब ३-४ घंटों के मनोरंजन के पश्चात मैं उनकी याद करता हूँ तो वे बड़े नीरस, विकृत और हास्यास्पद जान पड़ते हैं यहाँ

तक कि मेरी उनकी ओर जरा भी रुचि नहीं रहती।"[1]

ह्यूम महोदय की इन बुद्धिसंगत कल्पनाओं और उनके प्रति उनकी घृणा और अरुचि पर विचार करो। अपने सिरजनहार परमात्मा को धन्यवाद देना उनकी दृष्टि में भले ही ढोंग हो, परन्तु वे प्रकृति का गुणगान करने के लिए विवश हुए। उस प्रकृति को जो अन्धी प्रकृति नहीं है और जो दयामयी माता और सहृदय चिकित्सक के सदृश सुख देती है।

धर्म चिरकाल-पर्यन्त हौआ बना रहा है। यह विज्ञान वेत्ताओं, तत्त्ववेत्ताओं और समाज-विज्ञान वेत्ताओं के आरोपों का लक्ष्य भी बना रहा। परन्तु यदि हम उन आरोपों के कारणों और उद्देश्यों पर विचार करें जो प्रत्येक अवस्था में एक जैसे नहीं हैं तो हम स्थिति को अधिक अच्छी तरह से समझ सकते हैं। विज्ञान के पण्डितों ने परमात्मा और धर्म का विरोध दो कारणों से किया। एक तो प्रकृति के दर्शन से उन्होंने जो खोजें कीं, प्रायः उन सबका पण्डों, पुजारियों, पुरोहितों और उनके अन्धभक्तों ने विरोध किया। दूसरे प्रकृति का ऐसा स्वरूप ग्रहण किया गया जो सुस्पष्ट और पर्याप्त है और बिना विशेष तर्क-वितर्क के यह मान लिया गया कि विज्ञान का उद्देश्य प्रकृति की ऊहापोह से अधिक और कुछ नहीं है।[2] परन्तु अब "स्वयं विज्ञान को यह बोध हो गया है कि वह अत्यन्त गम्भीर दार्शनिक समस्याओं को जन्म दिये बिना अपने उचित अनुसन्धानों को जारी नहीं रख सकता। इसके अतिरिक्त विज्ञान की प्रगति मुख्यतया शरीर विज्ञान की उन्नति इन समस्याओं पर प्रकाश डालती प्रतीत होती है।" "परमाणुओं के अनुसन्धान के फलस्वरूप भौतिकवाद की नींव नष्ट-भ्रष्ट हो गई है। शरीर-शास्त्र ने 'काल और समय' विषयक जो क्रान्तिकारी विचार प्रस्तुत किये हैं उन्होंने भी इस नींव के विनाश में बहुत योग दिया है।"

"प्रकृति के आधुनिकतम अध्ययन से हमारी स्थिति ऐसी हो गई है कि हम इस प्रश्न का समाधान करने के लिए

---

१. एकिन की 'पिलासफी आफ ह्यूम' Aikins Philosophy of Hume
२. प्रो० डब्यू० आर० मैथ्यू के 'परमात्मा की भावना' विषयक विचार। 'आधुनिक ज्ञान की रूपरेखा' पुस्तक पृ० ५९ Pro. W. R. Matthews on 'The idea of God' in 'An outline of Modern Knowledge P. 59.

विवश है कि अन्तिम वास्तविकता को मनुष्य का मस्तिष्क क्यों न माना जाय और प्रकृति के पीछे कोई गूढ़ विचार है ऐसा क्यों न स्वीकार किया जाय ?"

यदि आज का एक प्रसिद्ध विज्ञान-वेत्ता मैक्स प्लैन्क निम्नलिखित उद्‌गार प्रकट करने के लिए विवश हो गया है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

"धर्म और साइन्स में वास्तविक विरोध कभी नहीं हो सकता क्योंकि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। मेरी सम्मति में प्रत्येक गम्भीर और विचारशील व्यक्ति यह अनुभव करता है कि यदि मानवीय शक्तियों को एक साथ संयम-पूर्वक कार्य करना है तो मनुष्य के स्वभाव में निहित धर्म-तत्व को स्वीकार करके उसे विकसित करना चाहिए। यह एक मात्र संयोग की बात न थी कि समस्त युगों के महान् विचारक धर्मात्मा भी थे, भले ही उन्होंने अपनी धार्मिकता का सार्वजनिक प्रदर्शन न किया हो। इच्छा-शक्ति के साथ समझौता और सहयोग करने से ही दर्शन शास्त्र के विज्ञिष्टतम फल ( आचारिक श्रेष्ठता ) उपलब्ध हुए हैं। विज्ञान के द्वारा जीवन के नैतिक गुणों में वृद्धि होती है क्योंकि यह सत्य के प्रति प्रेम और निष्ठा उत्पन्न करता है। आत्मा और प्रकृति का अधिकाधिक ठीक ज्ञान प्राप्त करने के प्रयास में सत्य के प्रति प्रेम प्रतिलक्षित होता है। ज्यों-ज्यों ज्ञान में वृद्धि होती है त्यों-त्यों हम अपनी हस्ती के रहस्य के निकट पहुँचते हैं जिससे आदर और निष्ठा का प्रादुर्भाव होता है।"[1]

मैं तत्व-वेत्ताओं को एक ओर छोड़े देता हूँ क्योंकि जब तक विज्ञान और दर्शन एक साथ मिल कर नहीं चलेंगे तब तक कोई उपयोगी वस्तु हाथ न लगेगी। वे दिन लद गये जब सृष्टि के तथ्यों का निरीक्षण किए बिना दार्शनिक सिद्धान्त घड़ लिए जाते थे। उन दिनों तत्त्व-वेत्ता का मस्तिष्क अपनी दुनिया का निर्माण कर लेता था और जीनों के समान साधारण मानवीय अनुभूतियों को अशुद्ध वता देता था। अब विज्ञान के अनुसन्धान दार्शनिक मान्यताओं को जन्म दे रहे हैं और इन मान्यताओं को निरन्तर विज्ञान की कसौटी पर परखा जा रहा है।

समाज-विज्ञान-वेत्ताओं द्वारा धर्म का विरोध करने के अपने कारण हैं। वे मानव-समाज में क्रान्ति लाना चाहते हैं परन्तु संगठित धर्म उनके मार्ग में बाधक है। अतः वे बुराई की जड़ पर ही

१. मैक्स प्लैन्क कृत 'साइन्स कहाँ जा रही है ?' पृ० १६६, Where is Science going ?

कुठाराघात कर देना चाहते हैं परन्तु जरा-से अनुसन्धान से विदित होगा कि वे लोग बड़े अदूरदर्शीत हैं। उनका कहना है कि परमात्मा का कोई महत्व नहीं है और यदि हमें किसी वस्तु की पूजा ही करनी है तो मानव-समाज की पूजा करनी चाहिए। 'हमें परम्परागत धर्म के इष्टदेव की ओर से धार्मिक भावनाओं को हटा कर समूचे मानव-समाज को इष्टदेव मानकर उसकी पूजा सिखानी है।" यह ठीक है कि मानवीय भावनाओं से शून्य धर्म नहीं है। धार्मिक प्रणालियों के जन्मदाताओं ने मानव-समाज की अवहेलना भी नहीं की थी। समस्त मनुष्यों के समूह से भिन्न समष्टिगत मानवता क्या है?" और परमात्मा की ओर से निष्ठा हटा कर मानव-समाज की ओर प्रेरित कर देने का अभिप्राय क्या है? हम मानव-समाज की पूजा का क्या स्वरूप निर्धारित करते हैं? क्या वर्तमान मानव-समाज पूर्ण और नियमबद्ध है? उपासक स्वयं उस मानव-समाज का एक अंग है। मानव-समाज की पूजा का अर्थ है अपनी पूजा करना। पूजा-उपासना का सदैव यह अर्थ होता है कि उपासक उपास्य के उच्च स्तर तक उठ जाय। क्या इससे वातावरण अशान्त नहीं बन सकता है? मैं अपने स्तर तक उठने का यत्न कर रहा हूँ। मैं जो कुछ हूँ उसके अनुरूप अपने को बनाने की चेष्टा कर रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि पूजा की हमारी भावना अनिश्चित है। मानव-समाज की सेवा करना एक वस्तु है और उसकी पूजा करना उससे नितान्त भिन्न वस्तु है। मानव-समाज की सेवा करते हुए हम दूसरे व्यक्ति को गन्तव्य स्थान की ओर ले जाते हैं। यदि हम "आदर्श रूप में मानी हुई मानवता" की पूजा करते हैं तो हम उस वस्तु की पूजा करेंगे जिसका सिवाय हमारे मस्तिष्क के अन्यत्र कहीं अस्तित्व न होगा।

सौभाग्य से समझदारी से परिपूर्ण विचारों का प्रभुत्व होने लगा है और १०० वर्ष से अधिक पूर्व जो धर्म-विरोधी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ था और जो बाद में जन-साधारण में व्याप्त हो गया था, उसका प्रभाव समझदार व्यक्तियों पर नहीं रहा है। भयंकर तूफान तो निम्न-वर्ग के लोगों के हृदयों में घर किए हुए हैं। वे भी कालान्तर में शान्त हो जायेंगे। धर्म-विरोधी आन्दोलन का जन्म उच्च मस्तिष्कों में हुआ। वे कुछ समय पर्यन्त उन मस्तिष्कों में स्थिर भी रहे और जन-साधारण के मस्तिष्कों तक पहुँचने में पर्याप्त समय भी लगा। परन्तु उच्च-वर्गों की मनोवृत्तियों में जो अन्तर आ रहा है उससे निश्चय ही जनसाधारण के मन भी बदलेंगे। इस प्रकार के धर्म-विरोधी आन्दोलनों का हमें पर्याप्त कटु अनुभव हो चुका है और इनकी प्रतिक्रिया अवश्य होनी है।

# "महर्षि दयानन्द जी के अनमोल बोल"

★ श्रीमती संतोष आर्या, बी० ए० बी०पी० डी०

बीसवीं शताब्दी में सर्वत्र नास्तिकता का प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहा है जिसके परिणामस्वरूप अशान्ति, ईर्ष्या, द्वेष आदि कुभावनाओं का प्रादुर्भाव हुआ। समय-समय पर दैवरूपी कई महात्माओं ने जन्म लेकर धर्म का प्रचार कर जनता में ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास उत्पन्न करने का प्रयास किया। उनमें वन्दनीय महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज का भी नाम आता है। इन्होंने सनातन धर्म (आर्य धर्म) का प्रचार किया और समयानुसार इस विषय पर वार्त्ता (उपदेश देकर) कर लोगों में आस्तिकता की भावना भरी। इनके कथन शिक्षाप्रद एवं कल्याणकारी होते थे। प्रातःवन्दनीय महर्षि दयानन्द जी की कुछ अमृतमय वचनावलि निम्नलिखित है :—

**धर्म पालन :—**

महाराज ने महाराणा सज्जनसिंह जी को मनुस्मृति पढ़ाते हुए उपदेश किया—"यदि कोई अधिकारी धार्मिक आज्ञा दे, तभी उसका पालन करना चाहिये, अधर्म्म-युक्त कथन को कभी नहीं मानना चाहिये।'

इस पर सरदारगढ़ के ठाकुर मोहनसिंह जी ने कहा—"महाराज! आपके उपदेशानुसार करें, तो जागीर गँवा बैठें।"

महाराज जी ने इसके उत्तर में कहा—"कोई चिन्ता नहीं। धर्म के लिये धन और ठुकराई भले ही चली जाये, धर्म हीन हो जाने से और अधर्म के काम कर के खाने से तो भीख माँगकर पेट पालन करना बहुत ही अच्छा है।"

**अभिमानादि दोष :—**

"किसी को अभिमान न करना चाहिये। छल, कपट व कृतघ्नता से अपना ही हृदय दुःखित होता है, तो दूसरे की क्या कथा कहनी चाहिये?

छल और कपट उसको कहते हैं, जो भीतर और, बाहर और, रखके, दूसरों को मोह में डाल और दूसरों की हानि पर ध्यान न देकर स्वप्रयोजन सिद्ध करना।

कृतघ्नता उसको कहते हैं, जो किसी के किये हुए उपकार को न मानना है।

क्रोधादि दोष और कटुवचन को छोड़ शान्त और मधुर वचन बोलें बहुत बकवाद न करें।

जितना बोलना चाहिये, उससे न्यून व अधिक न बोलें। बड़ों को मान्य दें, उनके सामने उठकर, जाकर उनको उच्चासन पर बैठावें। प्रथम 'नमस्ते' करें। उनके सामने उच्च आसन पर न बैठें। विरोध किसी से न करें।

सम्पन्न होकर गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग रखें।"

**सत्य :—**

"वह पदार्थ सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश करे। किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है।"

( स. प्र. भू. )

**आठ सत्य —**

(१) "ऋग्वेद से महाभारत-पर्यन्त परमेश्वर और ऋषि-प्रणीत ग्रन्थ सत्य है।

[ टि. ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ये चार वेद परमेश्वर-प्रणीत हैं। शेष शाखा, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, दर्शन, अंग आदि ऋषि-प्रणीत हैं। (स)

(२) ब्रह्मचर्य्याश्रम में गुरुसेवापूर्वक अपना धर्मानुष्ठान निभाते हुए वेदाध्ययन करना चाहिये।

(३) वेदोक्त वर्णाश्रम का धर्म और सन्ध्यावन्दन, अग्नि-होत्र आदि कर्म करने उचित हैं।

(४) जैसा धर्मशास्त्र में ऋतु-काल आदि के नियमों से गृहस्थ धर्म लिखा है, उसके अनुसार चलना, पंच महायज्ञों और श्रौतकर्मों का करना कर्त्तव्य है।

(५) शम-दम तपश्चर्य्या का धारण, यमादि समाधि पर्यन्त उपासना के साधनों का करना, और सत्संगपूर्वक वानप्रस्थाश्रम का अनुष्ठान करना विधि-विहित है।

(६) विचार, विवेक, वैराग्य, पराविद्या का अभ्यास करना और संन्यास ग्रहण करके सकल कर्मों के फल की वांछा छोड़ देना उचित है।

(७) जन्म-मरण, हर्ष-शोक, काम-क्रोध, लोभ-मोह और संगदोष यह सब अनर्थकारी हैं, इसलिये इन्हें त्यागना शुभ है।

(८) अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश रूप क्लेशों से और तमो-रजस्-सत्त्वगुणों से निवृत्ति पाकर पाँच महाभूतों से अतीत मोक्षरूप स्वराज्य को प्राप्त करना परम लक्ष्य है।"

**सत्य निष्ठा :—**

१. अजमेर में राबिन्सन, ग्रे, तथा शूलब्रेड पादरियों के साथ ऋषि का सात दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा। आठवें दिन पादरियों ने किसी आक्षेप से चिढ़कर

कहा—"ऐसी बातों से आपको कारावास जाना पड़ेगा।" यह सुनकर ऋषिराज बोले, "सत्य के लिये कारावास कोई लज्जा की बात नहीं है। धर्म-पथ पर आरूढ़ होकर, मैं ऐसी बातों से सर्वथा निर्भय हो गया हूँ। प्रतिपक्षी लोग यदि अपने प्रभाव से ऐसा कष्ट दिलायेंगे, तो जहाँ कष्ट सहते हुए मेरे चित्त में शोक की कोई तरंग भी नहीं उत्पन्न होगी, वहाँ मैं अपने प्रति-पक्षियों की अकल्याण भावना भी कभी नहीं करूँगा। पादरी जी! मैं लोगों के डराने से सत्य को नहीं छोड़ सकता। ईसा को भी लोगों ने फाँसी पर लटकवा ही दिया था। ( द० प्र० )

२. जिस पुरुष ने जिसके सामने चोरी-जारी, मिथ्या भाषणादि कर्म किया, उसकी प्रतिष्ठा उसके सामने मृत्यु-पर्यन्त नहीं होती। जैसी हानि मिथ्या प्रतिज्ञा करने वाले की होती है, वैसी अन्य किसी की नहीं। इससे, जिसके साथ जैसी प्रतिज्ञा करनी, उसके साथ वैसी ही पूरी करनी चाहिये। अर्थात् जैसे किसी ने किसी को कहा कि 'मैं तुमसे अमुक समय में मिलूंगा, या तुम मुझको मिलना, अमुक वस्तु अमुक समय में तुमको मैं दूंगा," इसको वैसे ही पूरा करें, नहीं तो उसकी प्रतीति कोई भी नहीं करेगा। इसलिए सदा सत्य भाषण और सत्य प्रतिज्ञायुक्त सब को होना चाहिये।" (स. प्र.)

**असत्य का कारण—**

"मनुष्य की आत्मा सत्यासत्य को जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्ध, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।" (स० प्र० भू०)

**मनुष्य—**

(१) "जैसे पशु बलवान होकर निर्बलों को दुःख देते और मार भी डालते हैं, शरीर पाके वैसा कर्म करते हैं तो वे मनुष्य स्वभावयुक्त नहीं पशुवत् हैं। जो बलवान निर्बलों की रक्षा करता है, वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश होकर पर-हानि मात्र करता है, वह मानो पशुओं का भी भाई बड़ा है।" (स० प्र०)

(२) मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं, किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुणरहित क्यों न हों, उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महा बलवान और गुणवान भी हो तथापि उसका नाश,

अवनति, अप्रियाचरण सदा किया करें। इस काम में चाहे उसको कितना ही दुःख प्राप्त हो; चाहे प्राण भी भले जावें परन्तु इस मनुष्यरूप धर्म से कभी पृथक् न होवे। (स्व. म. प्र.)

**द्वेष नाश का उपाय—**

भरूच में एक पारसी कैथोलिक नव-कृस्टान ने ब्राह्मणों की सहायता से मूर्ति-पूजा पर व्याख्यान का प्रबन्ध किया। महाराज को भी बुलाया। महाराज (स्वामीजी) वहाँ श्रोताओं में ही बैठे। व्याख्याता ने महाराज जी को लक्ष्यकर अनेक कुवाक्य कहे। वहाँ कुछ पूर्वी सैनिक भी उपस्थित थे। वे सहन न कर सके। व्याख्याता की ताड़ना करने पर उतारू हो गये। महाराज ने उस समय उन्हें शान्त करने को यह उपदेश दिया—

"अपमानकर्ता का अपमान करने से उसका सुधार नहीं होता किन्तु सम्मान देने से वह सुधर जाता है। जैसे आग में आग डालने से वह शान्त नहीं होती ऐसे ही द्वेषी की द्वेष बुद्धि, उसके साथ द्वेष करने से दूर नहीं हो सकती। अग्नि को शान्त करने का साधन जल है, इसी प्रकार द्वेष को मिटाने का साधन शान्ति धारण करना है।"

**भोजन—**

"जिस प्रकार आरोग्य, विद्या और बल प्राप्त हो उसी प्रकार भोजनाच्छादन और व्यवहार करे-करावें। अर्थात् जितनी क्षुधा हो, उससे कुछ न्यून भोजन करें। मद्य-मांसादि के सेवन से अलग रहें।" (स प्र.)

**भोजन शुद्धि—**

(१) फरुखाबाद में "साधु" नामक एक अछूत जनसमुदाय रहता है। वे सब घरबारी होते हैं, काम, धंधा करके निर्वाह करते हैं। उनके हाथ का बना भोजन ब्राह्मण, वैश्य आदि ग्रहण नहीं करते। एक दिन एक साधू कढ़ी और दाल परोस कर श्रद्धा सहित महाराज के पास ले आया। महाराज (स्वामी दयानन्द) जी ने श्रद्धा-रूपी उसी भक्ति का आदर किया। इस पर उपस्थित ब्राह्मणों ने कहा "स्वामी जी ! आप तो 'साधू' का भोजन पाकर भ्रष्ट हो गये। आपको ऐसा करना कदापि उचित न था।"

स्वामीजी ने हँसते हुए कहा—"अन्न तो दो प्रकार से दूषित होता है, एक तो तब जब दूसरे को दुःख देकर प्राप्त किया जाये और दूसरे जब कोई मलिन वस्तु उस पर अथवा उसमें पड़ जाये। इन लोगों का अन्न परिश्रम के पैसे का है और पवित्र है। इसलिये इसके ग्रहण करने में दोष का लेश भी नहीं है।"

२. अनूपशहर में 'उमेदा' नाई रहता

था। वह महाराज का भक्त था। एक दिन वह महाराज जी के लिये भोजन लाया। महाराज ने उसे अंगीकार किया। वहाँ उपस्थित २०-२५ ब्राह्मणों ने आक्षेप किया 'छिः छिः, स्वामीजी! यह क्या करते हो। यह रोटी तो नाई की है।" महाराज ने हँसते हुए कहा—'नहीं, यह रोटी तो गेहूँ की है। इसलिये मैं इसे अवश्य ही खाऊँगा—" (द. प्र.)

**मांसाहार—**

मुलतान के एक कृष्ण नारायण ने कहा—"मैं मांस खाता हूँ परन्तु कोई हानि अनुभव नहीं करता। महाराज जी ने कहा—आज्ञायें दो प्रकार की होती हैं, एक शरीर के साथ सम्बन्ध रखने और दूसरी आत्मा के साथ। शरीर से संबन्ध रखने वाली आज्ञा को वह भंग करता है, इसलिये मांस खाने वाले को योग-विद्या नहीं आती। उसे योग की सिद्धियाँ भी नहीं होती।" (द. उ.)

**अपकार न करना—**

अमृतसर में महाराज के सत्संग में एक दीन मनुष्य नित्य आया करता था। एक दिन उसने कहा—"महाराज! मैं निर्धन हूँ, दान, पुण्य तो नहीं कर सकता। फिर मेरा निस्तार कैसे होगा?" दयालु ने कहा—"सौम्य! आप भी बड़े उपकारी और पुण्यात्मा बन सकते हैं। एक मनुष्य यदि दानी और पवित्र बन सकता है; तो दूसरा पर—अपकार और पाप कर्म न करने से भी अपना मंगल साधित कर लेता है। सो आप अपने हृदय में पर-अपकार और अनिष्ट चिंतन का भाव कदापि न लाइये। इससे आप बड़े धर्मात्मा बन जायेंगे। अपकार न करना ही संसार का उपकार है।" (द. प्र.)

[ शेष पृष्ठ ५ का ]

भूतानि समीक्षे) इस उदात्त भावना को क्रियात्मक रूप देता हुआ प्राणीमात्र के हित में आत्महित अनुभव करता है, वैसे ही हम साधारण जन भी अपने भीतर प्रशंसित यज्ञ-भावना को सदैव जागृत रखें और सबकी उन्नति में आत्मोन्नति का सद्भाव लावें। मंत्र के अन्त में पवित्र वेद ने एक और उत्तम निर्देश दिया है कि यदि तुम ससार में सफल होना चाहते हो तो अरातिभाव अर्थात् कृपणता, कंजूसी आदि महादोषों को भी अपने निकट न आने दो। यह महादोष मानव को मानवता के पथ से भ्रष्ट कर देता है। महादानी महादेव भगवान जिसके अखुट भण्डार के द्वार पर संसार का प्रत्येक याचक अपनी याचना को पूर्ण हुआ समझता है, यह कृपण उससे भी वंचित रह जाता है। इसलिए भगवत्प्रिय बनने के लिये यह आवश्यक है कि हम सुपथग भी हों, उत्तम कर्मों में हमारी प्रवृत्ति हो, और कृपणतादि दोषों से सदा रहित हों।

# मरने के पश्चात् जीवात्मा कहाँ जाता है ?

★ स्व० आचार्य नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ,

जब जीव शरीर में से चला जाता है तब साधारण जीव, ज्ञानी जीव अथवा उपासक जीव की दशा एक-सी नही होती श्रेष्ठ उपासक मूर्धन्य नाड़ी द्वारा अर्थात् सुषुम्णा नाड़ी के द्वारा बाहर पड़ता है। वेदांत इस बात की पुष्टि करता है।

आत्मा का स्थान है हृदय, उसका अग्रभाग प्रज्वलित होता रहता है इसलिए आत्मा के बाहर जाने का द्वार प्रकाशित रहता है। उपासना की शक्ति के कारण और विद्या की गति-चिन्तना के कारण उपासित ब्रह्म के अनुग्रह से पवित्र हुआ आत्मा सौ से भी अधिक श्रेष्ठ मूर्धन्य नाड़ी जो सुषुम्ना उसके द्वार से जीव बाहर जाता है।

शरीर से बाहर पड़ने वाले ज्ञानी और अज्ञानी दोनों प्रकार के जीवों की देवयान मार्ग तक एक-सी ही उत्क्रांति (उड़ान) होती है। सगुणोपासक जीव देवयान मार्ग से ही जाकर मुक्ति प्राप्त करते हैं। अन्य जीव बीच में से ही जन्म -बन्ध की ओर आते हैं, जन्म-मरण के चक्र में फंस जाते हैं।

उपासक की क्रम मुक्ति इस प्रकार होती है—

उपासक जब इस लोक को छोड़ जाता है तब सब से पहिले जीव वायुलोक में जाता है। वहाँ वायु आकाश में बड़ा छेद डालकर आगे का मार्ग खुला कर देता है। वहाँ से वह जीव आगे सूर्यलोक में जाता है। वहाँ सूर्य आकाश में छेद करके जीव चन्द्रलोक में जाता है। वहाँ भी चन्द्र आकाश में भी छेद करके आगे का मार्ग खुला कर देता है। वहाँ से जीव आगे बढ़ कर शोकरहित हिमरहित लोक में जाकर रहता है (बृहदारण्यक का सार)। अर्थात् उपासक जीव की गति इस प्रकाररहती है :—

यह लोक छोड़ा ; फिर वायुलोक में गया, वहाँ से फिर आगे शोकरहित लोक में, फिर वहीं रहा सदैव के लिए।

(बृहदारण्यक)

यह पहिले ज्योति से दिन की ओर, दिन से शुक्लपक्ष उत्तरायण के छह मास, इससे अयन की ओर, अयन से सूर्य की ओर, सूर्य से चन्द्र की ओर, चन्द्र से

विद्युत् की ओर। वहाँ से कोई दैवी पुरुष उसको ब्रह्म की ओर ले जाता है। इसी को देवयान अथवा ब्रह्म मार्ग कहते हैं। इस मार्ग से जाने वाले जीव फिर जन्म-मरण के चक्र में कभी नहीं फँसते, कभी नहीं फंसते—(छान्दोग्य)

## क्रम मुक्ति का मार्ग

यदि उपासनाओं का मार्ग भिन्न-भिन्न है तो भी उपासकों के जीवों का मार्ग एकमेव है—वह है देवयान।

उपासक जीव अर्चि (किरण) अग्नि, दिवस, पक्ष, मास, अयन, संवत्सर इनकी अभिमानिनी देवताओं की सहायता से देवलोक की ओर जाता है। वहाँ से वायु, आदित्य, चन्द्र, विद्युत् इन मार्ग-दर्शक देवताओं की सहायता से आगे बढ़ता है—वहाँ कोई अमानव देवता मिलता है वह उपासक के जीव को वरुण, इन्द्र, प्रजापति लोक में से ब्रह्मलोक में ले जाता है। वहीं उपासक जीव हिरण्यगर्भ ब्रह्म सहित ब्रह्मलोक के प्रलय के प्रलय पर्यन्त रहता है। वह फिर लौटता नहीं, जन्म-मरण के चक्र में आता नहीं। इस प्रकार की क्रममुक्ति श्रुति-स्मृति-संमत है। यह वेदान्त का तात्पर्य है—

## ब्रह्मलोक का ऐश्वर्य

जो जीव अर्चिरादि मार्ग से देवयान मार्ग द्वारा ब्रह्मलोक में पहुंचते हैं वे जीव वहाँ जाकर, भोग भोगने के पश्चात् सामान्य जीव की तरह, चन्द्रलोक से वापस नहीं आते। वे तो ब्रह्मलोक में ही पहुँचते हैं। किस तरह?

## इस तरह

यहाँ तीसरे लोक में 'अर' और 'ण्य' ऐसे दो समुद्र अथवा दो समुद्रतुल्य बड़े-बड़े सरोवर हैं। वहाँ अन्नमय हर्षोत्पादक एक और सरोवर है। वहाँ अमृतस्राव (अमृत को टपकाने वाला) करने वाला एक अश्वत्थ वृक्ष है। इस लोक में ब्रह्म (हिरण्यगर्भ) की अपराजिता नाम नगरी है। इस लोक में प्रभु ब्रह्मदेव द्वारा विशेष रूप मे बनाया हुआ सुवर्णमय गृह है।

सुषुम्ना नाड़ी से ऊपर जाने वाला मुक्त होता है। उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती। इस देवयान मार्ग से ब्रह्मलोक को जाने वाले जीव इस संसार के भँवर में कभी नहीं पड़ते। ऐसे जीव मरते ही ब्रह्मलोक की ओर जाते हैं। शरीर धारण करने के लिए फिर कभी नहीं लौटते। सगुणोपासकों का ऐश्वर्य यद्यपि विनाशी है तो भी वे शरीर ग्रहण करने के लिए नहीं आते। सम्यग्दर्शन के कारण उनके अज्ञान का पूर्णतया विध्वंस होता जाता है अथवा विध्वंस हुआ करता है और वे नित्य सिद्ध मोक्ष के लिए तत्पर

रहते हैं, फिर उनको जन्म-मरण कहाँ ?

स्वामी दयानन्द को यह मुक्तिक्रम पसन्द था कि नहीं हम नहीं कह सकते । पर वे पितृयान, देवयान मार्ग को मानते हैं यह स्पष्ट है । वे ब्रह्मलोक को एक विशिष्टलोक नहीं मानते हैं । मोक्षावस्था में जीव ब्रह्म के एक होने को ही ब्रह्म-लोक-ब्रह्मदर्शन मानते हैं ।

पापात्मा तो 'जायस्व म्रियस्व' जन्म-मरण के चक्र में फँसा रहता है । पुण्यात्मा अपने शुभ कर्मों के फलों को भुगताने, भोगने के लिए चन्द्रादि लोक में जाकर, वहाँ फलों का भुगतान करके फिर पृथ्वीतल को लौटते हैं । जो जीव ब्रह्मलोक में पहुँचते हैं उनके लौटने न लौटने का प्रश्न ही क्या है । ३६००० बार इस सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय हो तब तक ब्रह्मदर्शन की अवधि मानी गयी है । इसकी कल्पना करना भी कठिन है । जो पुरुष बहुत दूर परदेश जाता है और १०-२०-३० वर्षों के लिए जाता है वह भी यह समझ कर जाता है कि देखिए कब लौटना होगा । इसलिए मुक्ति से लौटने न लौटने के निरर्थक वाद में न पड़ना ही श्रेयस्कर है । स्वामी जी मुक्ति से लौटना होगा मानते हैं । वेदान्ती नहीं मानते । वेदान्तियों के पक्ष में उपनिषदों के प्रमाण भी मिलते हैं । स्वामी जी ने भी लौटने के पक्ष में एक वेदमन्त्रदिया है । मुक्ति से न लौटने के पक्ष में :— **"इममानवमावर्तं नावर्तन्ते नावर्तन्ते"** यह छान्दोग्य का प्रमाण है ?

और यह जो प्रमाण मिलता है— **"यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसंपद्यते, न च पुनरावर्तते, न च पुनरावर्तते"** इसमें यावदायुषं जितनी की आयु है, अवधि है तब तक ब्रह्मलोक में रहते हैं, फिर नहीं लौटते । जितनी की आयु है ?

## कितनी ? किसकी ?

ब्रह्मलोक की ओर किस की ? ब्रह्म लोक की अवधि हम पहिले ही लिख चुके हैं कि ३६००० बार इस सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय हो तब तक की आयु अथवा अवधि । इसका गणित लगाने बैठें तो सिर चकराने लगेगा ।

इन सब उलझनों को छोड़ दिया जाय तो भी यह सिद्ध है कि मनुष्य, जन्म सबसे ऊँची सीढ़ी है उस पर चढ़कर भी वह यहि ब्रह्मलोक तक न पहुँच सका, जन्म-मरण के चक्र में ही फंसा रहा तो केवल सांसारिक भोगोंमें फँसे रहने में क्या अर्थ है ? परमार्थ सत्य तो एकब्रह्म है । यह जगत् तो बदलता रहता है और इसी अर्थ में मिथ्या है, कभी एक रूप में नहीं रहता । इस जगत् का अधिष्ठान वही ब्रह्म है, वही सत्यस्वरूप है—यही वेदान्त का सार है । वेदान्त का अर्थ और वेद जहाँ समाप्त होते हैं उसके सिरे का तात्पर्य है—प्रत्येक समर्थ व्यक्ति को वेदान्त के इस तत्त्व को समझ लेने का प्रयत्न करना चाहिये । 'नान्यः पन्थाः विद्यतेऽयनाय' । ●

# शीर्षासन से रोग नाश

★ विश्वम्बर आर्य "छीलर"

वैसे तो आसनों की संख्या बहुत है और वे सभी आसन अपने-अपने स्थानों में रोगनाशक एवं गुणकारी हैं। परन्तु शीर्षासन सर्व आसनों में ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ है। शीर्षासन को विधि विधान नियमानुकूल करने से मानव देह के सर्व रोगों का अन्त होता है। जिस प्रकार अग्नि में पड़ कर धातुयें शुद्ध एवं निर्मल हो जाती हैं उसी प्रकार शीर्षासन से शरीर सर्व दोष रहित हो जाता है।

शीर्षासन स्वास्थ्य का सोपान है, ओज तेज कान्ति बलदायक है, शरीर को सुडौल बनाने वाला और दीर्घायु का विधायक है।

स्वास्थ्य की रक्षा करने वाला इससे उत्तम और दूसरा साधन है ही नहीं, यह कह देना अनुचित न होगा। हमने स्वयं कतिपय ऐसे रोगियों को शीर्षासन द्वारा रोग रहित एवं स्वस्थ किया है। जो कि धातु रोग, स्वप्न दोष और उदर रोग से त्राण पाने के लिये नाना प्रकार की चिकित्सा करके निराश हो बैठे थे।

दो बहनें तो प्रदर रोग से जीर्ण-शीर्ण हो चली थीं। इन सब को शीर्षासन ने नव जीवन प्रदान किया है। जिस प्रकार बुझते दीपक में तेल डालने से पुनः प्रकाश उत्पन्न हो जाता है उसी प्रकार तेल वाला कार्य शीर्षासन ने किया। रोगियों ने शीर्षासन के मुक्त कंठ से गीत गाए और भविष्य में गाते रहेंगे।

शीर्षासन के नियम अवश्य कुछ कठिन हैं परन्तु स्वास्थ्य के अभिलाषियों को यह कठिनता सफलता में परिवर्तन हो जायेगी। कठिनता सरलता एवं सरलता की कुञ्जी है। जिस कार्य में कठिनता नहीं होती वह कार्य मानव को उन्नत नहीं कर सकता अर्थात् उस कर्म से मनुष्य ऊपर नहीं उठ सकता। कठिनता किस कार्य में नहीं है? सब कार्यों में कठिनता है। वह कठिनता है। वह कठिनता ही विजय का मुकुट पहनाती है। स्मरण रखो! कठिनता को परिश्रमी उद्योगी वीर पुरुष अपने अनुकूल बना लेता है और वही वास्तविक मनुष्य कहलाने का अधिकारी है।

अतः स्वास्थ्य के अभिलाषियो! ऋषि सन्तानों! अपने ऋषियों की महान् देन योगासन चिकित्सा प्रणाली को अपना कर स्वास्थ्य के धनी बनो, जिससे "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।" ऋ० ९।६३।५ के आधार पर विश्व को आर्य रूप बना सको।

शीर्षासन के करने से मिटते रोग अनेक॥<br>
स्वास्थ्य का सोपान है, एक बार करके देख।<br>
ऋषि मुनि विद्वान् सब महिमा इसकी गा रहे<br>
इसके द्वारा स्वास्थ्य बन,<br>
उद्देश्य मनुष्य का पा रहे॥

# वैदिक अर्थ-व्यवस्था

★ पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

आज समस्त विश्व में साम्यवाद, समाजवाद, पूंजीवाद, व्यक्तिवाद आदि अनेक वाद उपस्थित हैं। इस सम्बन्ध में वेद का सिद्धांत क्या है, यह जनता को विदित होना उचित है। वैदिक अर्थ व्यवस्था में स्वयं अपने अनुशासन पर अधिक बल दिया जाता था। स्वयं जनता ही इस सुशिक्षा से जाग्रत होकर आर्थिक समता को राष्ट्र में प्रस्थापित करती थी। यजुर्वेद के ४०वें अध्याय का प्रथम मन्त्र है :—

**ईशावास्यमिदं सर्वं:, यत्किंच जगत्यां जगत्, तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा:, मा गृध:, कस्य स्विद्धनम्।**

इस मन्त्र से प्रश्न पूछा गया है—'कस्य स्वित् धनं' अर्थात् यह धन किसका है? आज भी विश्व में सर्वत्र यही प्रश्न पूछा जा रहा है। वैश्य कहते हैं कि यह धन मेरा है, क्षत्रिय कहते हैं कि यह धन मेरा है, शूद्र कहते हैं कि यह धन मेरा है, तथा ब्राह्मण कहते हैं कि यह धन मेरा है। तो फिर आखिर किसका है यह धन?

जब सभी व्यक्ति किसी वस्तु को अपनी बतायें तो उसका अर्थ यह हुआ कि या तो वह वस्तु उनमें से किसी की नहीं है अथवा सबका उस पर समान अधिकार है। धन समाज का है, यह उसका स्वयंसिद्ध अर्थ है। उपर्युक्त पद में प्रश्न का उत्तर भी दिया हुआ है। 'स्वित्' का अर्थ 'निश्चय' भी होता है तथा का' का अर्थ है 'प्रजापति'। अर्थात् प्रजापति का यह धन है। प्रजापति से यहाँ तात्पर्य राज्य और उसकी जनता से है। पुराने समय में राजा प्रजापति होते थे। राजसूय यज्ञों में जनता उसका चयन करती थी। राजा का अर्थ ही यह था कि जो प्रजा का रंजन करे। राजा की यह संस्था भी आदिकालीन नहीं है। वेदों में एक प्रजापति को हटाकर उसके स्थान पर दूसरे प्रजापति को रखने का वर्णन है। तात्पर्य यह है कि धन को प्रजा का मानकर प्रजापति उसका विनियोग करता था। प्रजा या समाज स्थायी तत्त्व

है और प्रजापति गौण ।

यह सब भाव धारण करके ही 'कस्य स्वित् धनं' के पहले कहा गया— 'मा गृधः' अर्थात् 'मत ललचाओ' । इसका अर्थ यह है कि 'धन मात्र का लालच मत करो' । अनेक विद्वान् दोनों मंत्रभागों को एक करके अर्थ करते हैं कि 'किसी के धन का लालच मत करो ।' लेकिन मन अर्थ अशुद्ध है । इसका तात्पर्य तो यह होता है कि अपने धन का लालच करने में वेद को आपत्ति नहीं । धनी व्यक्ति अपने धनका लालच करेगा, तभी कलह तथा वर्गद्वेष उत्पन्न होंगे । मुख्य प्रश्न यही है कि अपने धन का ही उपयोग किस प्रकार किया जाय ।

प्रश्न का उत्तर मंत्र के तीसरे भाग में है—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा' अर्थात् 'धनका भोग त्यागपूर्वक करो' । भोग मनुष्य के लिए आवश्यक है, यह पहली बात है । भोग दो प्रकार से होता है-- आसक्ति से भोग और त्याग से भोग । वेद ने आसक्तिपूर्वक भोग को वर्जित ठहराया है । इसकी वैसे भी अपनी मर्यादाएं हैं । मान लीजिये, कोई व्यक्ति मिठाई का भोग करता है, तो वह निश्चित मर्यादा से अधिक मिठाई नहीं खा सकता । यदि वह उससे अधिक मिठाई का भोग करेगा, तो परिणाम में मिठाई ही उसका भोग करने लगेगी । जो भोग प्रकृति द्वारा ही वर्जित है, उसका समर्थन कौन करेगा ? इसीलिए वेद ने कहा कि 'त्याग से भोग करो'। ध्यान देने की बात है कि त्याग से भोग की कोई मर्यादा नहीं, वह अपरिमित है । आप अन्नदान, औषधदान, धनदान, आदि जितना चाहें कर सकते हैं। फिर त्यागपूर्वक भोग में सच्चा आत्मसुख है । यह समाज-सेवा है । अर्थनीति पर राज्य का नियंत्रण न होते हुए भी अर्थ के वितरण और बहाव की यह कैसी व्यवस्था है ! इसमें व्यक्ति को ही अपने-आप पर, अपने आर्थिक व्यवहार पर नियन्त्रण रखना पड़ता है । कम्युनिस्ट देशों में यह समस्या खड़ी हो गयी है और वेदों में उसका समाधान उपस्थित है ।

सब धन यज्ञ के लिए है, यह वैदिक विचारधारा है । यह कहने से भी यही तात्पर्य निकलता है कि सब धन प्रजा के लिये ही है और उसके पालन में लगना चाहिए । यज्ञ का अर्थ किया गया है:

१. जिससे श्रेष्ठों का सत्कार हों,
२. प्रजा का संगठन हो, तथा
३. असहायों को सहायता मिले ।

'सत्कार-संगतिदानात्मक कर्म' यज्ञ कहलाता है ।

यज्ञ की कल्पना मूलतः किस

सिद्धान्त से उत्पन्न हुई है, यह देखना चाहिए। वेद ने मानव-समाज की व्यवस्था दो शब्दों में कही है—'जगत्यां-जगत्' यह भी उपर्युक्त मन्त्र का ही एक खंड है। इस वचन का पदशः अर्थ है, जगती के के आधार से जगत् रहता है। जगत् का अर्थ है 'गच्छति इति जगत्' अर्थात् जो गतिमान है, चलता है, प्रगति करता है, वह जगत् है। सब विश्वगतिमान है, अतः उसे जगत् कहते हैं। परन्तु यह सब विश्व अपनी धुरी पर ही घूमता है; देखना यह है कि जगत् के अंगोंपांगों अर्थात् प्राणियों में सच्ची प्रगति कौन करता है, आगे कौन बढ़ता है। मनुष्य ही अपनी बुद्धि-शक्ति के कारण सब चराचर प्रणियों से अधिक गतिमान् है, इसलिए यद्यपि सामान्यतः सब विश्व-पदार्थ जगत् कहलाता है; परन्तु पूर्ण रीति से केवल मनुष्य ही है।

एक व्यक्ति को 'जगत्' कहा जाता है तथा उन अनेक जगतों की समष्टि को 'जगती' कहते हैं। 'जगत्' और 'जगती' में यह भेद है। 'जगत्' मरता है, 'जगती' स्थायी है। व्यक्ति मरता है, समाज स्थायी है। धन भी मरनेवाले का कभी नहीं हो सकता है, अमर का ही हो सकता है। 'जगत्यांजगत्' के अनुसार 'जगती के आधार पर जगत्' है अथवा 'समष्टि के आधार पर व्यष्टि' है। व्यष्टि समष्टि के आधार से रहती है, अतः उसके लिए उचित है कि वह समष्टि के लिए अपने भोग का त्याग करे। यज्ञ की मूल कल्पना वेद के इस सिद्धान्त में हैं।

प्राचीन काल में जो अनेक प्रकार के यज्ञ किये जाते थे, उनमें एक सर्वमेध यज्ञ होता था। इस यज्ञ में सब धन जनता के लिये दे दिया जाता था। इस को करनेवाले धनहीन बन जाते थे। सम्राट् भी दूसरे दिन से मिट्टी के पात्र बरतने लगते थे। सर्वमेध यज्ञ का उद्देश्य ही यह था कि किसी के पास धन संग्रहित न हो, वह समय २ पर वितरित होता रहे। आज ऐसा नहीं होता। इसी कारण भारत, यूरोप, अमेरिका आदि में व्यक्ति के पास धन संग्रहित हो रहा है। अयज्ञीय जीवन है यही, दुःखों के बढ़ने का कारण है।

अब यह देखें कि धन के स्वामित्व के विषय में वेद क्या कहता है। उपर्युक्त मन्त्र में ही कहा गया है—'ईशावास्यम् इदं सर्व यत् किंच' अर्थात् यहाँ पर जो कुछ भी है, उस पर ईश का स्वामित्व है। अनीश का उस पर कोई अधिकार नहीं! जिसमें ईशन शक्ति अर्थात् 'शासन करने,

शक्तिमान होने, समर्थ होने' की शक्ति होती है, उसे 'ईश' कहते हैं। स्वामित्व का यह सिद्धान्त सब देशों में दिखाई देता है। प्रभावी वीर ही स्वामी होने योग्य है ऐसे व्यक्ति ही सदा स्वामी बनते हैं,। यही नहीं, अपितु जो राष्ट्र प्रबल होते हैं, वे दूसरे राष्ट्रों के भी स्वामी बन बैठते हैं। राज्य-शासन के मुख्य स्थान पर अथवा छोटे २ अधिकारियों के स्थानों पर ऐसे ईशन शक्ति वालों की ही नियुक्ति करनी चाहिये। अनीशों के हाथ में अधिकार होने पर शासन शिथिल हो जायेगा और दुराचारियों की प्रबलता बढेगी।

वेदों ने धन के महत्व को भलीभाँति समझ लिया था। सब झगड़े, कलह, स्पर्धा, युद्ध आदि धन के कारण ही होते हैं यह उनके सामने स्पष्ट था। इसीलिए उन्होंने युद्ध को एक नाम 'महाधन' भी दिया। इस तरह वेद के युद्ध-नामों में 'वाजसाती' भी एक है। 'वाजसाती' का अर्थ है 'धन का बँटवारा' धन का बँटवारा ही झगड़ों का कारण होता है। अतः यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि धन पर किसका अधिकार है? धन किसका है? इसी प्रश्न को रखने तथा उसका विधिपूर्वक उत्तर देने के लिए उपर्युक्त महत्वपूर्ण मंत्र की रचना हुई। पाठक उस मन्त्र से प्रचलित आर्थिक वादों की तुलना करें और देखें कि दोनों में कितना साम्य का असाम्य है और दोनों में से कौन हितकर है।

---

# ईशावास्योपनिषत्

★ "सत्यभूषण" "वेदालंकार एम० ए०

पुरातन भारतीय संस्कृति, धर्म, अध्यात्मवाद के जाज्वल्यमान रत्न हैं उपनिषत्। उप० नि० पूर्वक सद् धातु से उपनिषत् शब्द व्युत्पन्न होता है. जिसका अर्थ है, सच्चिदानन्द घन परब्रह्म के समीप बैठना । प्रभु के निकट बैठने, उसका साक्षात्कार करने के हम कैसे अधिकारी बनें, यह उपनिषदों में बतलाया गया है, ईश, केन, कठ आदि ११ उपनिषदों में सर्वप्रथम ईशावास्योपनिषत् अथवा ईशोनिषत् है । इसके नाम से ही प्रकट है, कि इसमें उस सार्वभौम गहन तत्त्व ईश का विवेचन किया गया है, जिसे पाना मानवमात्र का लक्ष्य है । सर्वोच्च ध्येय है । ईशावास्यामिदᳬसर्वं से प्रारम्भ होने से इसे ईशावास्योपनिषद् कहते हैं संक्षेपतः ईशोपनिषद् कहते हैं । उस महती शक्ति ईश से यह सब, बसा हुआ है । मानवीय जीवन की आधारशिला है, श्रद्धा' अत् सत्यं धार्यते यया सा "श्रद्धा", जिससे सत्य का धारण किया जाय उसका नाम श्रद्धा है । अतः सर्वप्रथम यही सन्देश, उपदेश, आदेश एवं निर्देश है, कि इस गतिशील जगत् में जो कुछ भी गतिमय है वह सब परब्रह्म से परिव्याप्त, परिवेष्ठित है । पहले यह विश्वास, आस्था मन में दृढ़ कर लो । नींव दृढ़ होगी, तो भवन खड़ा हो सकेगा । जीवन-रूपी भव्य प्रासाद की आधारशिला श्रद्धा है और वह है यह अटूट विश्वास, सुदृढ़ धारणा कि यह सम्पूर्ण विश्व केवल घटनाओं का प्रवाह मात्र नहीं, कार्यकारण-शृंखला से ओत-प्रोत है । इसके पीछे एक महान् सत्ता शासन कर रही है । मानव का उद्देश्य है घटनाओं के अविरत चक्र के अन्तराल में उस शासनकर्त्री, नियन्तृ शक्ति, सर्वोपरि सत्ता "यस्य भासा सर्वमिदं विभाति" जिसके प्रकाश से सूर्य, चन्द्र आदि सब कुछ प्रकाशित हो रहे हैं, जो सब पदार्थों में सर्वतः अनुप्रविष्ट, व्यापमान हो रही है उसका ईक्षण, अन्वेषण, साक्षात्कार ।

कहो ! अपार जल-राशि, विद्युत् असंख्य नक्षत्र, पादप, पत्र, पुष्प, बालुका-

राशि मणि, मूंगा विविध रत्न भण्डार,··· आदि के मूल में कौन है। गम्भीर सागर की गहराई में किसकी सत्ता है? जीवों को कर्मों का फल कौन देता है? इत्यादि अनेक प्रश्नों का समाधान केवल इसी वाक्यांश में हो गया। "ईशावास्यम्" यह सब ईश, ईश्वर से बसा हुआ, व्याप्त है। इस पर पूर्ण निष्ठा, श्रद्धा करो।

श्रद्धा उत्पन्न हो गई, तो करें क्या? केवल श्रद्धा से काम न चलेगा। सत्य को धारण, चरितार्थ करना है, जीवन में। तो क्या करें। "तेनत्यक्तेन भुञ्जीथाः" तो त्यागभाव से प्रत्येक वस्तु का उपभोग करो। लालच मत करो, किसी का निश्चय से अपना धन नहीं है, हाँ कस्य, कः प्रजापतिः, तस्य, उस सुखस्वरूप परमात्मा का ही निश्चय से अपना धन है। संसार में रहकर उसके समस्त पदार्थों, तज्जन्य सुखों का त्यागभाव से भोग करते हुए भी जल में कमलवत् जीवन व्यतीत करना, निष्काम भाव से कर्म करना, यही है जीवन-यापन की कला, (The art of life) हाँ तो कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करे, इस प्रकार मनुष्य कर्म में लिपायमान नहीं होता। इसके बिना कोई चारा नहीं। गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को ऐसा ही उपदेश देते हैं:—

**"न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् कार्यते ह्यवशः कर्मः सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥**

कोई भी पुरुष किसी काल में क्षण-भर भी बिना कर्म किये नहीं रहता, निश्चय से सभी प्रकृति से उत्पन्न गुणों द्वारा परवश हुए कर्म करते हैं। कर्म करना है, अवश्य करना है। सब उसी का है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि हाथ पर हाथ धरकर बैठ जाओ। 'कृत मे दक्षिणे हस्तेजयो मे सव्य आहितः" पर कर्म करने हैं निष्काम, निर्लिप्त होकर, शुभ कर्म करने हैं। आत्मा का हनन करके नहीं, जो मनुष्य आत्मा का हनन करते हैं वे मरकर गहरे अन्धकार से आवृत असुर्य लोकों में प्रवेश करते हैं। आत्मा के अधःपतन के मार्ग पर चलना ही आत्म हनन है, हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्मचर्य, परिग्रह काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह अहंकार से युक्त होकर कर्म करना ही आत्म-हनन के मार्ग पर अग्रसर होना है। Believe upon your Conscious अन्तरात्मा की पुकार सुनो। सड़क पर जाते हुए तुम्हें सौ रुपये का नोट मिल गया। चट से जेब में डालकर आगे बढ़े। लोभ ने धर दबाया, चौर्य कर्म में प्रवृत्त हुए। भीतर से आवाज़ आई—धिक्कार है तुम्हें, सौ रुपये पर ईमान बेचने वाले! नहीं

सुना उस पुकार को । यह अन्तर्यामी परमात्मा की शिक्षा है। अन्धकारावृत असुर्य लोकों में भटकना होगा । "जब इन्द्रियाँ अर्थों में, मन इन्द्रियों और आत्मा मन के साथ संयुक्त होकर प्राणों को प्रेरणा करके अच्छे वा बुरे कर्मों में लगाता है तभी वह बहिर्मुख हो जाता है, उसी समय भीतर से आनन्द, उत्साह, निर्भयता और बुरे कर्मों में भय, शंका, लज्जा उत्पन्न होती है, वह अन्तर्यामी परमात्मा की शिक्षा है। देखो स० प्र० ९म समु० पृ० २१०, बृहत् सं० ।

तो इस आत्म-हनन के मार्ग से कैसे बचा जाय ? इसका उत्तर स्पष्ट देते हुए कहा "अनेजदेके मन सो······वह परम तत्त्व परब्रह्म, कंपन तक नहीं करता, पर मन से भी अधिक वेगवान् है। इन्द्रियाँ वहाँ तक पहुँच नहीं सकतीं । वह इन्द्रियों से पहले ही वर्तमान है। स्वयं ठहरा हुआ भी अन्य दौड़ते हुओं को लाँघ जाता है। वायु जो मेघ आदि जल परमाणुओं को इकट्ठा करता है वह सब ब्रह्म के साहाय्य से करता है। अथवा माता के गर्भ में जीवात्मा उसी की सहायता से सब काम पूरे करता है । उस सर्वाधिक गतिशील जीवनाधार परमात्मा पर दृढ़ आस्था करने से "सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्, स भूमिं सर्वतस्पृत्वाऽत्य तिष्ठद्द-शाङ्गुलम्" हजारों सिरों, आँखों, पाँवों की शक्ति रखने वाले सर्व शक्तिमान प्रभु का अहर्निश चिन्तन करने और उसे सर्व-व्यापक जानकर ही पाप कर्मों से जीव बच पाता है। कैसा विरोधाभास है यह ! वह चलता है, वह नहीं चलता । वह दूर है, निकट भी है। वह आत्मतत्त्व स्वयं अचल रहकर भी चलता हुआ-सा जान पड़ता है । "स्वतोऽचलमेव सत् चलती व किंचतद्दूरे, वर्ष कोटिशतैरप्य विदुद्याम प्राप्यत्वाद द्रइव विदुधा आत्मत्वान्न केवलं दूरेऽन्तिके च" अज्ञानियों को सैंकड़ों करोड़ों वर्षों में भी अप्राप्य होने के कारण दूर जैसा है। विद्वानों का आत्मा होने के कारण समीप भी है। सांख्य दर्शन में किसी वस्तु के न दीखने के अनेक कारण बताये हैं, उनमें से प्रथम दो यही हैं। "अतिदूरात् सामीप्यादिन्द्रिय घातान्मनोऽनवस्थानात् सौक्ष्म्याद् व्यव-धानाद् अभिभवात् सभानाभिहाराच्य— अंजन आँख में लगा है पर दिखाई नहीं देता, अत्यन्त समीप होने से। परमात्मा भी हमारे अत्यन्त समीप है पर चित्त पर मल, विक्षेप, अज्ञान के दोष होने के कारण वह दिखाई नहीं देता है । अज्ञा-नियों के लिए वह दूर तत्व ज्ञानियों के लिए अतिनिकट है ।

तो. मोह और शोक से कैसे ऊपर

उठा जाय ? इसका एक ही साधन उपनिसत् के ऋषि बताते हैं "आत्मौपम्य भावना" जिस जानने वाले के ज्ञान में सब भूत आत्मोपम हो गये उसे मोह और शौक कैसा ? जो सब प्राणियं को आत्मा में ही देखता है और सब आत्मा को सब प्राणियों में उस सूक्ष्मद्रष्टा, अन्वीक्षक को कोई पाप नहीं लगता । आत्मौपम्य-भावना सब प्राणियों को आत्मवत् देखना ही अन्वीक्षण, दार्शनिक दृष्टि से देखना है । जैसे मेरी पीठ में कोई सुई चुभोए, तो मुझे पीड़ा होती है, वैसे मैं यदि किसी की पीठ में सुई चुभोऊँगा, तो उसे भी पीड़ा होगी ।

**"सर्वाणि परमार्थात्मिदर्शनादात्मैवाभूद् आत्मैव संवृत्तः परमार्थवस्तु विजानतः तत्रात्मनि वा को मोहः कः शौकः (शांकर भा०)**

जिस परमार्थ तत्त्ववेत्ता पुरुष की दृष्टि में सब भूत परमार्थ आत्मस्वरूप के दर्शन से आत्मभाव को हि प्राप्त तो गये, उस समय उस आत्मा में क्या मोह, क्या शोक रह सकता है ? वह परमार्थ-तत्त्व परमात्मा कैसा है ? इस बारे में उपनिषद में स्पष्ट घोषणा है कि वह सर्वगत, शुद्ध, अशरीरी अक्षत, नस नाड़ी के बन्धन से रहित, और स्वयम्भू है । शाश्वत काल से चलायमान सृष्टिचक्र में वही पदार्थों की ठीक व्यवस्था कर रहा है ।

"स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण·········

"शिवमात्मनि पश्यन्ति प्रतिमासु न योगिनः । वह सर्वगत, निराकार, अशरीरी, सर्वशक्तिमान्, नियन्ता, क्रान्त-द्रष्टा, स्वयम्भू, (खुद, आ,=खुदा) और सर्वशक्तिमान् है । "न तस्य प्रतिभा अस्ति यस्य नाम महद्यशः (यजु०) उसी ने शाश्वत, चिरन्तन प्रजाओं के लिए कर्तव्य का विभाजन किया हुआ है । उनकी योग्यतानुसार पृथक्-पृथक् कर्तव्य बाँट रखे हैं।

इसके उपरान्त विद्या, अविद्या, संभूति, असम्भूति का वर्णन किया गया है । अविद्या-विद्या आदि के आशय को भली-भाँति समझ लेना चाहिये । अविद्या, कर्म, विद्या, ज्ञान अथवा, अविद्या, भौतिकवाद (Materialism) विद्या, अध्यात्मवाद (Spiritualism)

असम्भूतिः, सम्भवनं, सम्भूतिः सा यस्य कार्यस्य कारणं अविद्या अव्याकृता ख्याताम् – (शांकर भा०) असम्भूति अनादि प्रकृति, सम्भूति, प्रकृतिजन्म कार्य जगत् अथवा कार्यजगत्, कारण-जगत् जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है, वह अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को वर के विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष

को प्राप्त होता है। (देखो स० प्र० वृ० पृ० २००) इसी प्रकार जो केवल कार्य अथवा कारण जगत्, प्रकृति अथवा सृष्टि की उपासना करते हैं, वे घोर अन्धकार में जाते हैं। जो पुरुष इन दोनों की उपासना के समुच्चय को जानता है, वह मृत्यु को पाकर उन दोनों से भी परे अविनाशी तत्त्व को जानकर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

अब अमृतत्त्व, मोक्ष किस मार्ग से प्राप्त हो ? इस बात को बतलाते हैं हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्—हे मनुष्यो ! जिस ज्योतिरूप रक्षक अविनाशी यर्थार्थ कारण के आच्छादित मुख के तुल्य उत्तम अंग का प्रकाश किया जाता है जो वह आदित्य, प्राण वा सूर्यमण्डल में पूर्ण परमात्मा है वह परोक्षरूप में आकाश के तुल्य व्यापक ब्रह्म सबसे गुण, कर्म और स्वरूप करके अधिक हूँ। सबका रक्षक जो मैं उसका 'ओ३म्' ऐसा नाम जानो। यजु० भा० पृ० ११७७. परमात्मा व्यापक है प्रकृति में, सर्वत्र जीव में भी वही व्यापक है। ये दोनों व्याप्य हैं। प्रकृति से परे है परमात्मा —इस तथ्य को जीव नहीं जानता। वह इस सीमित परिधि आवरण से ऊपर उठकर तो आदित्य सूर्यमण्डल व प्राण में पूर्ण परब्रह्म है, उसे जाने। तभी उसका जन्म सफल होगा। वह सत्य, सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा का रूप प्रकृति के सुन-हले आवरण से आवृत है। हे पूषन् पुष्टि के इच्छुक, उपासक सत्य धर्म को देखना चाहता है, तो उस आवरण को हटा दे। "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि सब उसी के प्रकाश से प्रकाशित हो रहे हैं। उसी सर्वत्र प्रकाशमान भासमान तत्त्व को प्राप्त करना ही मानव का परम ध्येय है। इसी चरमोद्देश्य, पूर्णावस्था, अन्तिम गति का विशद वर्णन करते हुए कहा···"वायु-रनिल ममृतमथेदं भस्मान्त शरीरम्"—हे कर्म करने वाले जीव ! तू शरीर के छूटते समय ओ३म् पद वाच्य ईश्वर का स्मरण कर ! अपने सामर्थ्य के लिए परमात्मा और अपने स्वरूप का स्मरण कर ! अपने किये हुए, कृतकार्य-कलाप का स्मरण कर ! यह बाह्य वायु अनिल, कारणरूप वायु, प्राण को धारण करता है। इसके बिना यह शरीर राख की ढेरी बन जाने वाला है, नश्वर है। जीवन के सब आदर्शों की चरम परिणति यही है, "ओ३म् स्मर" ओ३म् का स्मरण कर। वही सबका रक्षक एवं पालक है। वही प्राणाधार है। देह नश्वर, भस्मीभूत हो जाने वाला है।

**"धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे**
**नारी गृहद्वारि सखा श्मशाने।**
**देहश्चितायां परलोक मार्गे,**
**धर्मानुगो गच्छति जीव एकः।"**

# ब्राह्मण ग्रन्थ संज्ञा विवेचन

★ आचार्य शिवपूजनसिंह कुशवाहा एम० ए०

[ मार्च अंक से आगे ]

"ऊर्ध मूल जिस साख तलाहा चार वेद जित लागे ।"

[गुजरी अष्टपदियाँ मह० १ अष्ट० १]

"सामवेद, ऋग्, जजुर, अथर्वण।
ब्रह्मे मुख माइया है त्रैगुण ।
ताकी कीमत कह न सकै को।
तिउ बोले जिउ बोलाइदा ।"

[ मारु सोलहे महला १ शब्द १७ ]

"ओंकार उत्पाती ।
किया दिनस सभराती ।
वण तृण त्रिभवन पाणी ।
चार वेद चारे खाणी ।
खंढ दीप सभ लोआ ।
एक कवावे ते सभ होआ ।"

[ राग मारु महला ५ शब्द १७ ]

"चार वेद जिह्वा भने ।"

[राग सारंग महला ५ शब्द १३१]

"चतुरवेद मुख वचनी उचरे ।"

[ राग गौडी महला ५ शब्द १६४ ]

"चतुरवेद पूरन हरि नाइ ।"

[ रामकली महला ५ शब्द १७ ]

"चार पुकारहि नतूमाने ।"

[ रामकली महला ५ शब्द १२ ]

"चार दीवे चहु हथ दीए एका एकी वारी ।"

[ वसन्त हिंडोल महला १ शब्द १ ]

इसका भाव चार दीवे, चारवेद, चहु हथ दीए अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा को दिए, एक वार ही अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ में चार वेद चार ऋषियों को दिए गए हैं ।

चारों वेदों के नित्यत्व में प्रमाण :—

शब्द दो प्रकार का होता है, एक नित्य और दूसरा कार्य । इन में से जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध परमेश्वर के ज्ञान में हैं वे सब नित्य ही होते हैं। और जो हम लोगों की कल्पना से उत्पन्न होते हैं वे कार्य होते हैं। क्योंकि जिसके ज्ञान और क्रिया, नित्य स्वभाव से सिद्ध और अनादि हैं उसका सब सामर्थ्य भी नित्य ही होता है, इससे वेद

भी उसकी विद्या स्वरूप होने से नित्य ही है, ईश्वर की विद्या अनित्य कदापि नहीं हो सकती।

जैसे इस कल्प की सृष्टि में शब्द, अक्षर, अर्थ और सम्बन्ध वेदों में हैं इसी प्रकार से पूर्व कल्प में थे और आगे भी होंगे।

ऋग्वेद से लेकर चारों वेदों की संहिता अब जिस प्रकार की है अर्थात् इनमें शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, पद और अक्षर जिस क्रम से वर्तमान हैं इसी क्रम से सदा बने रहते हैं।

सृष्टि के समय में जैसा वेद था वैसा अब भी है यथा :—

श्री कैगी साहब कहते हैं :—

"Since that time, nearly 3000 years ago, if (the text) has suffered no changes whatever with a care such that the history of other literatures has nothing similar to compare with it."[१]

अर्थात्—"तीन सहस्र वर्ष से अब तक वेदों की संहिताओं में कोई पाठ भेद नहीं हुआ। इसकी समानता किसी दूसरे साहित्य में नहीं पायी जाती।"

जब कभी किसी ने कभी वेद विषय में धोखा देना चाहा वह पकड़ा गया और लज्जित हुआ।

"सन् १७६१ ई० में रॉबर्ट डी० नोबली ने एक जाली यजुर्वेद बनवाया जिसके विषय में प्रो० मैक्समूलर ने कह दिया कि—"In plain English the whole book is Childishly derived."

अर्थात्—वह समग्र पुस्तक लड़कों का खेल है।"[२]

मुस्तफापुर के शास्त्रार्थ में यजुर्वेद में पं० गङ्गाविष्णु काव्यतीर्थ ने "आखु-वाहनं गजाननाय" ऐसा पाठ अपनी ओर से जोड़ दिया था, सो वह भी पकड़े गये थे।[3]

महर्षि कणाद कहते हैं :—

"तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्।"
[वैशेषिक द० अ० १। आ० १। सू० ३]

अर्थात्—"वेद ईश्वरोक्त हैं। इनमें

---

१. Kege's Rigeveda" P-P. 22.

२. पं० रघुनन्दन शर्मा कृत "वैदिक सम्पत्ति" द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ५३६ से ५४७ तक "ईसाई और आर्य शास्त्र" शीर्षक प्रकरण।

३. पं० शिव शर्मा जी कृत "धर्म शिक्षा" तृतीय भाग, पृष्ठ २४।

सत्य विद्या और पक्षपात रहित धर्म का ही प्रतिपादन है। इससे चारों वेद नित्य हैं। ऐसा ही सब मनुष्यों को मानना उचित है क्योंकि ईश्वर नित्य है इससे उसकी विद्या नित्य है।"

महर्षि गौतम कहते हैं :—

"मन्त्रायुर्वेद प्रामाण्यवच्चतत्प्रामाण्यमाप्त प्रामाण्यात्।"

[न्याय दर्शन, अ० २। आ० १। सू० ३]

अर्थात्—"मन्त्रायुर्वेदों की भाँति वेदवाक्यों का भी प्रामाण्य है क्योंकि आप्त वाक्यों का प्रामाण्य सबको स्वीकृत है।"

सृष्टि के प्रारम्भ से ब्रह्मा से लेकर दयानन्द पर्यन्त जितने आप्त होते आये हैं वे सब वेदों को नित्य और प्रामाणिक मानते हैं।

कृष्ण द्वैपायनजी कहते हैं :—

"शास्त्र योनित्वात्।"

[वेदान्त दर्शन अ० १। पा० १। सू०३]

इस प्रकार श्री आद्य शङ्कराचार्य जी का भाष्य: —

"महत: ऋग्वेदादे: शास्त्रस्यानेक विद्यास्थानोपवृंहितस्य प्रदीपवत्सर्वार्थविद्योतिन: सर्वज्ञ कल्पस्य योनि: कारणं ब्रह्म। नहीदृशस्य शास्त्रस्य ऋग्वेदादि लक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यत: सम्भवोऽस्ति। यद्यद्विस्तरार्थं शास्त्रं यस्मात्पुरुष विशेषात्सम्भवति यथा व्याकरणादि पाणिन्यादेर्ज्ञेयैकदेशार्थमपि सततोऽप्यधिकतर विज्ञान इति प्रसिद्धं लोके, किमुवक्तव्यमिति।'

अर्थात्—"ऋग्वेदादि जो चारों वेद हैं वे अनेक विद्याओं से युक्त हैं, प्रदीप के समान सब सत्य अर्थों के प्रकाश करने वाले हैं। उनका बनाने वाला सर्वज्ञादि-गुणों से युक्त परब्रह्म है। क्योंकि सर्वज्ञ ब्रह्म से भिन्न कोई जीव सर्वज्ञ गुणयुक्त इन वेदों को बना सके ऐसा संभव कभी नहीं हो सकता। किन्तु वेदार्थ विस्तार के लिए किसी जीव विशेष पुरुष से अन्य शास्त्र बनाने का सम्भव होता है। जैसे पाणिनि आदि मुनियों ने व्याकरणादि शास्त्रों को बनाया है। उनमें विद्या के एक-एक देश का प्रकाश किया है। वे भी वेदों के आश्रय से बना सके हैं और जो सब विद्याओं से युक्त वेद हैं उनको सिवाय परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं बना सकता. क्योंकि परमेश्वर से भिन्न सब विद्याओं में पूर्ण कोई भी नहीं है।

## महर्षि दयानन्द कृत पुस्तकें

| पुस्तक | मूल्य |
|---|---|
| सत्यार्थ प्रकाश सजिल्द | ५-०० |
| आत्म कथा | ०-४० |
| स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश | ०-१० |
| वेदान्तिध्वान्त निवारण | ०-१९ |
| वेद विरुद्ध मत खण्डन | ०-३७ |
| शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण | ०-३७ |
| आर्याभिविनय | ०-७५ |
| आर्योद्देश्यरत्नमाला | ०-१० |
| ऋग्वेद भाष्य का प्रथम सूक्त | ०-२५ |
| भ्रान्ति निवारण | ०-२७ |
| व्यवहारभानु | ०-२५ |
| भ्रमोच्छेदन | ०-२५ |
| गोकरुणानिधि | ०-२० |
| गृहस्थाश्रम | ०-६२ |
| काशी शास्त्रार्थ | ०-२० |
| सत्यधर्म विचार | ०-२५ |
| आर्यसमाज के नियमोपनियम | ०-१० |
| ईशोपनिषद् | ०-२५ |
| बालशिक्षक | ०-३७ |
| यजुर्वेदमूल संहिता सजिल्द | २-५० |

## जगदीश विद्यार्थी की पुस्तकें

| पुस्तक | मूल्य |
|---|---|
| वैदिक प्रश्नोत्तरी | २-०० |
| वेद सौरभ | २-०० |
| ईशोपनिषद् | २-०० |
| वैदिक उदात्त भावनाएँ | २-०० |
| कुछ करो कुछ बनो | २-०० |
| मर्यादा पुरुषोत्तम राम | १-५० |
| विद्यार्थियों की दिनचर्या | १-५० |
| दिव्य दयानन्द | १-२५ |
| प्रार्थना प्रकाश | १-२५ |
| प्रभात वन्दना | १-२५ |
| हास्य विनोद | १-०० |
| ब्रह्मचर्य गौरव | ०-६० |
| राधास्वामी मत दर्पण | ०-५० |
| भारत की अवनति के कारण | ०-२० |
| विष्णु पुराण की आलोचना | ०-४० |

### संकलित

| पुस्तक | मूल्य |
|---|---|
| ऋग्वेद शतकम् | १-०० |
| यजुर्वेद शतकम् | १-०० |
| सामवेद शतकम् | १-०० |
| अथर्ववेद शतकम् | १-०० |

## अन्य विद्वानों की पुस्तकें

| पुस्तक | मूल्य |
|---|---|
| ईश, केन, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय तैतरीय | ४-२५ |
| वैदिक सिद्धान्त व्याख्यान माला | २-०० |
| व्याख्यानमाला (अच्युतानन्द) | २-५० |
| अष्टाध्यायी प्रकाशिका | ८-०० |
| आर्य राजनीति के तत्त्व | ०-३० |
| बृहदारण्यक उपनिषद् कथा | ३-०० |
| दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह उत्तरार्द्ध | २-५० |
| दयानन्द चित्रावली | २-५० |
| स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग | ३-०० |
| विवाह और विवाहित जीवन | २-५० |
| आर्य समाज क्या है ? | ०-७५ |
| वैदिक सन्ध्या रहस्य | ०-३७ |
| आर्य सिद्धान्त दीप | १-२५ |
| महर्षि दयानन्द | ०-७५ |
| स्वामी श्रद्धानन्द | ०-३७ |

**गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६**

मुद्रक, प्रकाशक, विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दाईवाड़ा में मुद्रित कर वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया।

## तिथि दर्शक

गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी हमने महर्षि दयानन्द के चित्र पर तिथि [दर्श]क [कलैण्डर] तैयार कराये हैं। गायत्री मन्त्र अर्थसहित तथा आर्यसमाज [के] नियम भी इस पर छपे हुए हैं।

| | |
|---|---|
| एक तिथि दर्शक | –०-५० |
| २५ | १०-०० |
| १०० | ४०-०० |

| चित्र | चित्र | चित्र |
|---|---|---|
| महर्षि दयानन्द रंगीन | २०×३० | १-२५ |
| स्वामी श्रद्धानन्द एक रंग | ,, | १-०० |
| स्वामी दर्शनानन्द ,, | ,, | १-०० |
| पं० गुरुदत्त विद्यार्थी ,, | ,, | १-०० |
| महर्षि दयानन्द दो रंगा | १८×२२ | ०-७५ |
| स्वामी श्रद्धानन्द ,, | ,, | ०-७५ |
| गुरु विरजानन्द | | ०-७५ |
| पं० लेखराम | ,, | ०-७५ |

गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क, दिल्ली।

## दयानन्द सूक्ति और सुभाषित

वेदप्रकाश का यह विशेषांक साधारण पाठकों तथा आर्य विद्वानों ने एक [स]ाथ पसन्द किया। धन्यवाद।

हमें खेद भी है वेदप्रकाश के ग्राहकों की मांग हम अब पूरी न कर सकेंगे। [उ]क्त विशेषांक अब पुस्तक रूप में तैयार है। मूल्य चार रुपये है।

# दयानन्द सूक्ति और सुभाषित अंक पर विद्वानों एवं लेखकों की सम्मतियाँ

"दयानन्द सूक्ति और सुभाषित" मिला। पढ़ा। अब से पूर्व जितने भी वेदप्रकाश के अंक निकले हैं वे सभी अपना विशेष स्थान रखते हैं परन्तु इस अंक जैसा सुन्दर, आकर्षक और महत्त्व पूर्ण अंक मैंने कभी नहीं देखा।

मुख पृष्ठ पर महर्षि का मनमोहक तथा यथार्थ चित्र अंक पर चार चाँद लगाये हुए है। सर्व प्रथम महर्षि की संक्षिप्त जीवनी, अन्दर वेद मन्त्रों का सारगर्भित मधुर भाष्य और सुन्दर मोती जैसी छपाई को देख कर कौन आकर्षित नहीं होगा लेखक के अथक परिश्रम पवं पावन मेधा बुद्धि का परिचय तो अंक के पढ़ने से ही हो जाता है। —विश्वम्बर

'वेद प्रकाश' का 'दयानन्द सूक्ति और सुभाषित अङ्क' विशेषांक प्राप्त हुआ, तदर्थ धन्यवाद! यह विशेषांक सर्वोत्तम है। वैदिक सिद्धान्तों को एक स्थान पर महर्षिजी के शब्दों में एकत्रित करके मित्रवर ब्रह्मचारी पं० जगदीश विद्यार्थी एम० ए० ने जो कार्य किया है वह स्तुत्य है। आप प्रशंसा के पात्र हैं।

प्रत्येक आर्य के घर में इस विशेषांक का होना अनिवार्य है। छपाई सफाई सुन्दर है। मूल्य ३ रु० विशेष नहीं है। —शिवपूजन सिंह

महर्षि दयानन्द सुभाषित एवं सूक्तियों का आपका सङ्कलन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी बन पड़ा है। यों विशेषाङ्कों के रूप में आपके प्रयास उत्तम रहे हैं, यह अत्युत्तम है। निःसन्देह आपकी कलम से जो कुछ लिखा गया है वह सभी कुछ मानवता का पोषण और कल्याणकारी है, आपकी यह अनूठी कृति आपकी श्रेष्ठ सम्पादन कला का परिचायक है। बहुत अधिक प्रसन्नता हुई। वैदिक धर्म की ऐसी सनिष्ठ सेवा के लिये आप शतायु हों, यह कामना है। —ईश्वरीप्रसाद प्रेम

———

॥ ओ३म् ॥

# वेद प्रकाश

| वर्ष १८<br>अङ्क ३ | संस्थापक—गोविन्दराम हासानन्द<br>आश्विन २०२५, अक्तूबर १९६८ | वार्षिक मूल्य<br>३-०० |
|---|---|---|

सम्पादक : विजयकुमार  आदरी सम्पादक : जगदीश विद्यार्थी

## ऋषिराज चालीसा

[ रचयिता—स्व० पं० लोकनाथ तर्क वाचस्पति ]

॥ दोहा ॥

चरण कमल गुरुराज के, बन्दौं बारम्बार।
उनकी रज निज सीस धर, प्राप्त करूँ फल चार।१।
अल्प बुद्धि हूँ तनु शिथिल, मन चांचल्य अपार।
तौ भी मैं ऋषिराज यश, वर्णौं हित चित धार।२।

॥ सोरठा ॥

विमल भावना धार, जो श्रद्धा से नित पढ़े।
हो भवसागर पार, वैदिक सत्य विचार से।१।

॥ चौपाई ॥

जय ऋषिराज ज्ञान के सागर, जय हो विश्ववंद्य करुणाकर।
गुर्जर प्रान्त नगर टंकारा, उसमें जन्म लिया जग तारा॥
पुत्र यशोदा बाई जी का, आतमज कर्षण जी का नीका।
बान्धव जन ने नाम धराया, सुन्दर नाम मूलजी आया॥
सीस मुँडाय गेरुआ धारा, दयानन्द बन जगत सुधारा।
वज्रांगी अति विक्रम धारी, सत्यव्रती निर्भय हितकारी॥
कनक समान चमत्कृत देहा, गठित शरीर मंजुता गेहा।
वेदशास्त्र पढ़ने के रसिया, सत्य रूप शिव में मन बसिया॥

दिव्य चक्षु गुरुवर पै आये, सत्य रूप शिव उन दिखलाये।
हाथ ओ३म् ध्वज वेद विराजे, सिर उष्णीष मनोहर साजे ॥
जग में वैदिक धर्म प्रचारा, प्राणि मात्र को मिला सहारा।
निखिल जगत तुम्हरा यश गावे,तव करणी को सीस झुकावे ॥
ईसाई मूसाई सारे, दादू पंथी गुरु के प्यारे।
देव समाजी ब्रह्म समाजी भक्त कबीरी काजी हाजी ॥
सभी करें अनुकरण तुम्हारा, मन में आदर भाव अपारा।
दलित जातियों को अपनाया, राज सभा तक जा पहुँचाया ॥
अबलाओं में बल संचारा, विधवाओं का दुःख निवारा।
दीनजनों के कष्ट मिटाये, उच्चासन उनको दिलवाये ॥
कन्याशाला जब दिख पाये, नाम तुम्हारा मन में आये।
जिसने मन्त्र तुम्हारा माना उसने प्राप्त किये सुख नाना ॥
कठिन कार्य थे जग में जेते सुगम हुए करुणा ते तेते।
अमित तेज अपना दिखलाया, पाखंडों का दुर्ग गिराया ॥
भूत पिशाच प्रेत भग जायें, नाम तुम्हारा जब सुन पायें।
ब्रह्मचर्य रखना सिखलाया, अतुल सुबल अपना दिखलाया ॥
सबके संकट मेटनहारे, कर्म वचन मन एक तुम्हारे।
गोकरुणानिधि को छपवाया, गोरक्षा का लाभ बताया ॥
दृढ़ता से सत्यार्थ प्रकाशा, तब दंभिन को हुई निराशा।
सब विधि ऋद्धि सिद्धि के दाता वेद धर्म रक्षक जन त्राता ॥
ओ३म्कार है जपन तुम्हारा, ओ३म्कार प्राणों से प्यारा।
जन्म जन्म के पाप मिटाये, सब हितकर शुभ मार्ग बताये ॥
जीवन का उद्देश्य बताया, कल्पित पूजा पाठ छुड़ाया।
जो नर तव आज्ञा अपनावें, सुख से भवसागर तर जावें ॥
जय जय जय ऋषिराज तुम्हारी, धर्म धुरंधर सत्य प्रचारी।
प्राणि मात्र हैं ऋणी तुम्हारे, सब के सब विधि कष्ट निवारे ॥
मोक्ष मार्ग सबको दर्शाया, भक्त जनों का मन हर्षाया।
तव करुणा का वार न पारा, नव जीवन सब जग ने धारा ॥

ईश भक्ति गुरु भक्ति सिखाई, देश भक्ति महिमा समझाई ।
जो तुम्हरे विश्वासी प्यारे, छल कपटों से रहते न्यारे ।।
जो छलछिद्री कपटाचारी, बगला भक्त बड़े अधिकारी ।
उनको सत्य शस्त्र संहारे, उनका पाप उन्हीं को मारे ।।
चालीसा ऋषिराज का—पढ़ो प्रेम मन धार ।
कल्पित माया जाल छल—छोड़ तरो संसार ।। ३ ।।

# संकटमोचन ऋषिराजाष्टक

कौन नहीं जाने जग में ऋषिराज पखंड मिटाय गये हैं ।। टेक ।।

बाल समय शिव मंदिर में शिवजी का व्रत धार पधारे ।
शिव पिंडी पर मूस चढ़ा तब-देख उसे मन माहिं विचारे ।
कल्पित वह शिव छोड़ दिया घर-त्याग दिया वन बीच सिधारे ।
सन्त बने पर सत्य न पाया पुनि मथुरा में आय गये हैं ।
कौन नहीं जाने० । १ ।

मान गुरु विरजानन्द दंडी को निज माथ झुकाय उचारे ।
वन पर्वत सब छान थका मैं-आन पड़ा अब तुम्हरे द्वारे ।।
शिव का सत्य स्वरूप दिखाओ संशय मन के मेटो सारे ।
वेदादिक पढ़ शास्त्र गुरु से-सत्यासत्य जनाय गये हैं ।।
कौन नहीं जाने० । २ ।

दीक्षा लेकर के गुरु से जब-धर्म प्रचार का चक्र चलाया ।
डाकिनी शाकिनी भूत भगे-राहु केतु का त्रास मिटाया ।।
ज्योतिष का फल भाग वृथा कह-कर्मों का सब खेल बताया ।
इस विधि से सर्वत्र भ्रमण कर-भ्रम के जाल कटाय गये हैं ।।
कौन नहीं जाने० । ३ ।

पाखंड खंडिनी झंडी को जब-गंगा के तट पर जा गाड़ा ।
धर्माधर्म विचार करण हित, बाबा लोगों को ललकारा ।।
वैदिक शस्त्र उठा करके सब, पाप प्रपंच का दुर्ग उखाड़ा ।
स्वामि विशुद्धानन्द को जितकर, काशी धूम मचाय गये हैं ।।
कौन नहीं जाने० । ४ ।

फिरे महाराष्ट्र सुराष्ट्र सकल, ब्रजमंडल बंग ब्रिहार जगाया ।
ज्ञान प्रचार पंजाब किया तब, जालंधर का शिष्य बनाया ।।
मुंशी से श्रद्धानन्द बन जिस, गुरुवर का शुभ कार्य चलाया ।
भाँति अनेक सुधार करा कर, जीवन भेंट चढ़ाय गये हैं ।।
कौन नहीं जाने० । ५ ।

छूआछूत मिटी अब तो सब, योग्य गुणी जन आदर पाते ।
जाति पाँति का ध्वंस हुआ है, सब गुण कर्म स्वभाव मिलाते ।।
भ्रम में पड़कर पतित हुए जो, शुद्धि करा निज लौटे आते ।
मदिरा मांसादिक छुड़वा कर, उलटा मार्ग हटाय गये हैं ।।
कौन नहीं जाने० । ६ ।

दूर विदेशों के अधिवासी, भारत में निज राज्य चलाते ।
देश निवासी भूख मरें पर, वे धन धान्य स्वदेश पठाते ।।
देख अनर्थ रहा न गया, तब राज्य विदेशी के दोष गिनाते ।
राज्य स्वदेशी के गुण गाकर, राज्य प्रबन्ध दिलाय गये हैं ।।
कौन नहीं जाने० । ७ ।

जड़ देवों की पूजा छूटी, विद्वानों को देव बखानें ।
गंग यमुन से मोक्ष न मिलता, व्यर्थ स्नान प्रयाग का जानें ।।
घट घट वासी अन्तर्यामी, जब चाहें उसको सनमानें ।
'नाथ' निरंजन की भक्ति, का सीधा मार्ग बताय गये हैं ।
कौन नहीं जाने० । ८ ।

॥ श्लोक ॥

सुखकर बलराशिं हेम कूटाभ कायम् ।
कुटिल जन वनाग्नि-पण्डितानां महेशम् ।।
सकल शुभ निकायं योगिनामग्र गण्यम् ।
भवपतिवरदासं-कार्षणिं तं नतोऽस्मि ।। १ ।।

॥ दोहा ॥

भू मंडल में कर दिया—वैदिक ज्ञान प्रकाश ।
शनैः शनैः हो जायगा—पाप तिमिर का नाश ।। ४ ।।

बने अनाथ सनाथ सब—विधवाओं का मान ।
जन्म जात पूजा हटी—अब तो पुजता ज्ञान ॥ ५ ॥
फहराया ध्वज ओ३म् का—किये सफल सब काज ।
'नाथ' बने गई दासता—जय जय जय ऋषिराज ॥ ६ ॥
श्रद्धा से जो नित पढ़े—अष्टक बारं बार ।
सत्यासत्य विवेक से—हो भवसागर पार ॥ ७ ॥
ऋषिवर दयानन्द की जय—पण्डित लेखराम की जय ।
स्वामी श्रद्धानन्द की जय—सभी हुत आत्म जनों की जय ॥

## टंकारे का शिवालय

मौर्वी राज्य में था ग्राम-नाम विख्यात टंकारा ।
वहाँ सुन्दर शिवालय था—जहाँ शिव को रिझाते थे ॥ १ ॥
भक्त दिन रात मन्दिर में—बजाकर शंख घंटादिक ।
अति श्रद्धा से जय शंकर—तथा बंबं बुलाते थे ॥ २ ॥
भेंट फल पत्तियाँ करके—धतूरा भांग सुलफा भी ।
उपासक जन पुनः पीते—प्रथम शिव पर चढ़ाते थे ॥ ३ ॥
वहाँ कर्षण जी शिव-पूजक उदीची विप्र रहते थे ।
राज्य के कर्मचारी थे—सदा शिव मन्त्र गाते थे ॥ ४ ॥
जभी शिवरात्रि आती थी—पुत्र निज साथ लेजाकर ।
व्रती शिव का बना उसको—वह शिव भक्ति सिखाते थे ॥ ५ ॥
मूल जी आज मन्दिर में—गये आराधने शिव को ।
सत्य पर जो अटल रहते—सत्य को सिर झुकाते थे ॥ ६ ॥
बैठे शिव लिंग के आगे—लगे शिव मन्त्र को जपने ।
ऊँघता जब कभी कोई—तुरत उसको जगाते थे ॥ ७ ॥
रात आधी गई जब तब—सबों को नींद ने घेरा ।
धराशायी हुवे सारे मूल व्रत को निभाते थे ॥ ८ ॥
तभी मूषिक निकल बिल से-चढ़ा शिवलिंग के ऊपर ।
फूल पत्ती गिरा दी सब-भक्त जो भेंट लाते थे ॥ ९ ॥
चकित हो मूलशंकर ने-जगाया निज पिता जी को ।
कहा शंकर यही है क्या ? जिसे त्राता बताते थे ॥ १० ॥

करेगा त्राण क्या किसका-नहीं चूहा हटे जिससे ।
आप शंकर की शक्ति के-सदा ही गीत गाते थे ॥ ११ ॥
नहीं है पाशुपत इस पै-जगत को जो मिटा सकता ।
न यह शिव या न वह लक्षण-मुझे जो नित जनाते थे ॥ ११ ॥
यह शक्ति शून्य जड़ पत्थर-नहीं कल्याण कर सकता ।
भला पूजूँ इसे कैसे बड़ी बातें सुनाते थे ॥ १३ ॥
पिता से घुड़कियाँ खाकर-पहुँच घर मात से बोले ।
अरी मात: वह पत्थर था-जिसे सब शिव बताते थे ॥ १४ ॥
मुझे अब सत्य शिवजी को-ढ़ूँढ करके बताना है ।
सत्य अनुराग की विद्या-पिता मुझ को पढ़ाते थे ॥ १५ ॥
किसी को कुछ बताये बिन-रात को भाग कर घर से ।
मिले संतो महंतों से-योगिजन जो कहाते थे ॥ १६ ॥
पुन: श्री पूर्णानन्द से-किया संन्यास व्रत धारण ।
दयानन्द बन गये तो भी-नहीं आनन्द पाते थे ॥ १७ ॥
किसी ने सत्य शिवजी का-उन्हें कुछ भी न बतलाया ।
परन्तु उनके संशय दिन-प्रतिदिन बढ़ते जाते थे ॥ १८ ॥
भटकते थे पता उनको लगा दिव्याक्षि दण्डी का ।
जो बिरजानन्द जी साधु ज्ञान से जगमगाते थे ॥ १९ ॥
उन्हीं के शिष्य बनने को-गये मथुरा परम हित से ।
रात बीती बहुत तो भी लोग गाते बजाते थे ॥ २० ॥
पूछते पूछते जाते कहीं दण्डी कुटी ढूँढ़ी ।
प्रफुल्लित हर्ष से होकर द्वार को खटखटाते थे ॥
मिला सौभाग्य टंकारे-के द्वारे से ऋषिवर को ।
वहीं से "नाथ" को समझा जहाँ सुलफा उड़ाते थे ॥

## दण्डी की कुटिया

दंडी का जब द्वार जा खटखटाया कौन हैं ? कुटी से तभी शब्द आया
गंभीर बन कर दयानन्द बोले-कौन हूँ यही तो नहीं जान पाया
यही जानने को निजू ग्राम छोड़ा-सकल त्याग संबंध सिर को मुड़ाया
बहुतों से मैंने यही प्रश्न पूछा-किसी ने अभी तक नहीं कुछ बताया

सुना आप इसका समाधान देंगे-यही भाव मुझ को यहाँ खींच लाया
कृपया गुरो द्वार कुटिया का खोलें-बताओ कि हूँ कौन किस भांति आया
दंडी ने उत्तर सुना जब विलक्षण-निज मन में प्रेमांकुरों को उगाया
हर्षित हुए द्वार कुटिया का खोला-दयानन्द ने सिर चरण पर टिकाया
महानन्द से पीठ पर थपथपाकर-भुजायें पकड़ कर उठाया सुनाया
तुझसा ही मैं ढूंढ़ता था मनस्वी-स्वयं आ मुझे ढूँढ़ने से बचाया
सफल कामना मैं तुम्हारी करूँगा-ऐसा जता करके ढारस बँधाया
दयानन्द बोले अहोभाग्य मेरे-जिन्हें ढूँढ़ता था उन्हें ढूंढ़ पाया
महाराज की आज करुणा हुई है दर्शन किये मन में संतोष आया
इस विध हुआ शान्त दोनों का मन जब समय शेष रात्रि का सुख से बिताया
उठ करके प्रातः क्रिया ईशवन्दन-यथाविधि परस्पर गुरु शिष्य बनाया
श्रद्धा से पाठन पठन ही हुवा सब-दंडी से सत्यार्थ का मर्म पाया
भौतिक प्रपंचों के सब जाल टूटे, गुरुवर ने जब 'नाथ' अनुभव कराया।

---

## षष्ठ श्रीयज्ञ

प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी दीपावली के पावन पर्व पर हमारे गृह पर १९।१०।६८ से २७।१०।६८ तक श्रीयज्ञ **पं० वीरसेन जी वेदश्रमी** के आचार्यत्व में सम्पन्न होगा।

यज्ञ का समय प्रातः ६ से ८।। बजे
सायं ४।। से ६ बजे
वेदोपदेश रात्रि ८।। से ९।। बजे

'वेद प्रकाश' के सभी पाठक और सहयोगी सादर आमन्त्रित हैं।

ब्र० जगदीश विद्यार्थी

यज्ञ स्थान
एच १/२ माडल टाउन
दिल्ली-९
तीसरा बस स्टाप

# ब्रह्मचर्य समस्या का हल

[ सितम्बर मास के अङ्क से आगे ]

एक बार एक नवयुवक ने गांधी जी को लिखा था— "विधवा स्त्री तथा विधुर पुरुष को पुनर्विवाह करके जीवन की सार्थकता सिद्ध करनी चाहिए।" गांधी जी ने लिखा—"मैं ऐसे स्त्री-पुरुषों को सलाह देता हूँ कि वे उस जीवन को ईश्वरेच्छा समझकर व्यतीत करें। आरोग्यता की दृष्टि से लाभकर रहेगा। उन्होंने युवकों को चेतावनी दी कि उन्हें चाहिए कि क्षणिक रस-आनन्द के लिए तेजहीन न बनें। जिस वीर्य में सन्तान उत्पन्न करने की अतीव क्षमता हो और जिसे रखने में बल, बुद्धि और तेजस्विता कायम रहे इसे गँवाने से क्या फायदा ?

वाराणसी के एक दैनिक पत्र में उच्चाधिकारी की पत्नी ने एक लेख लिखा जिसमें परिवार-नियोजन के आधुनिक साधनों का पूर्ण समर्थन करते हुए गांधी-ब्रह्मचर्य का खुला मजाक उड़ाया। उन्होंने लिखा है कि महँगाई से सभी वेहाल हैं, इसलिए परिवार-नियोजन ही उसका एकमात्र हल हो सकता है। परिवार में दुख के काले बादल न छा जाएँ, इसलिए प्रजनन रोकना है, महिलाओं का सौन्दर्य न बिगड़ जाए इसलिए प्रजनन रोकना है, परिवार-निग्रह से ही भारत की महिलाएँ अन्य देशों की महिलाओं के साथ आगे बढ़ सकेंगी।

मुझे इन लेखिका के उत्साह पर तरस आता है। सौन्दर्य के नाम पर न जाने आज क्या-क्या हो रहा है! दर्जियों ने नए-नए फैशन निकाल कर बड़े-बड़े घर की बेटियों को सड़कों पर नंगे घुमाना शुरू किया है। अधिकांश युवकों में सिलाई का काम सीखने में रुचि इसलिए बढ़ रही है ताकि वे हर फैशनेबुल लड़की के अंग-प्रत्यंग को छू कर नाप ले सकें। शहरों में जाइये तो शर्म के मारे आपकी आँखें ऊपर नहीं उठ सकेंगी। जब इन सब के कारणों की तह को खोज हुई तो निष्कर्ष यही मिला कि परिवार-नियोजन से उनका सारा भय दूर हो गया है--मनमाना करने के लिए वे आजाद हैं।

विद्वान् डा० शशिशेखर ने लिखा है—"आज दुनिया जितने लोगों को समुचित भोजन, मकान, कपड़ा या शिक्षा देने की स्थिति में है, उससे कई

गुनी ज्यादा जनसंख्या है। प्रतिवर्ष ५ करोड़ १० लाख नए बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था करना अत्यन्त कठिन है।" उन्होंने जनसंख्या-वृद्धि के आँकड़े प्रस्तुत करते हुए कहा है कि वृद्धि का यदि यही क्रम चलता रहा तो निकट भविष्य हम मानव ६॥ अरब हो जाएंगे। कुछ अन्य विशेषज्ञों ने जन्म-निरोध के लिए मानवीय मार्ग अपनाने की सिफारिश की है। उनका कहना है कि भूख, महामारी और युद्ध द्वारा जनसंख्या कम न होने के तरीकों की खोज मानव ने कर ली है। अब जन्म-गति तो बढ़ रही है, पर मृत्यु-गति एकदम ठप है। इसके लिए अब दो ही तरीके कारगर हो सकते हैं, पहला है आत्म-संयम द्वारा संतति-निरोध और दूसरा है युद्ध द्वारा भीषण नर-संहार।

जब गांधी जी ने अपने एक लेख में कहा कि राष्ट्र को बलशाली बनाने के लिए हर पति-पत्नी का यह कर्त्तव्य है कि वे अलग-अलग कमरों में रहा करें, दोनों के खास करके पत्नी की इच्छा सन्तानोत्पत्ति की हो तभी परस्पर संभोग करें, बस फिर क्या था! सैकड़ों नवयुवक और युवतियों ने इसके विरोध में गांधी जी के पास पत्र भेजे। गांधी जी ने उत्तर दिया कि वर्तमान स्थिति में अतिशय संभोग पुरुष और स्त्री के मन में निराशा की भावना बढ़ाता है। इसलिए यदि वे अपने दायित्व को ठीक से समझें तो मेरे कथन की सत्यता अवश्य समझ में आएगी।

मेरा विश्वास है कि कोई भी स्त्री स्वेच्छा से कृत्रिम साधनों को स्वीकार नहीं करती, क्योंकि ऐसा करने से उसे वास्तविक आनन्द नहीं मिल सकेगा। आज अतिशय आधुनिक कहलाने वाले पति ही कृत्रिम साधनों का बहुलता से प्रयोग करते हैं, ताकि पत्नी को गर्भ न ठहरे और वे काफी समय उसके रूप-लावण्य का स्वच्छन्दतापूर्वक उपभोग कर सकें।

अन्त में मुझे परिवार-नियोजन के प्रचारकों से सिर्फ इतना ही कहना है कि लोगों के जीवन को निचोड़ने के लिए टिकिया, ट्यूब और अन्य दवाओं का प्रचार न करें। इन कृत्रिम साधनों से सम्भव है कि प्रजजन में कुछ, रुकावट पड़े, किन्तु जिस वीर्य-संग्रह से बल बुद्धि और तेज प्रकट हो, उसे व्यर्थ गंवाने की सीख क्यों युवकों को दी जाए? देश के सामने आज अनेक समस्याएँ हैं, जिन का हल युवकों को देना है।

———

# चारों दरवाजे खुले रखो

★ शिवनारायण उपाध्याय

एक समय एक नगर में एक श्रीमन्त रहता था। उसका लम्बा-चौड़ा रोजगार था।

उसके मकान में चार दरवाजे थे। वह चारों के मध्य में एक दरी बिछाकर, नीचा सिर किये बैठा रहता था और किसी भी दरवाजे से कोई भी माँगने वाला आता, तो उसे दो गज कपड़ा देता था।

धीरे-धीरे उस सदाव्रत की चर्चा चारों ओर फैल गई।

एक दिन राजा ने सुना तो सोचा कि इसकी परीक्षा लेनी चाहिए। अतएव वह भिखारी के रूप में उसके मकान के एक दरवाजे पर पहुँचा; तो उसे दो गज कपड़ा मिल गया। उसने कपड़े को झोले में छिपा लिया और दूसरे दरवाजे पर पहुंचा तो वहाँ से भी उसे दो गज कपड़ा मिला। फिर तीसरे दरवाजे पर पहुँचा तो वहाँ से भी उसने दो गज कपड़ा ले लिया और बाद में चौथे दरवाजे पर पहुँचा, तो वहाँ से भी उसे दो गज कपड़ा मिल गया।

इस तरह चारों दरवाजों से कपड़ा लेने वाले इस नये भिखारी पर मुनीम लोगों की कड़ी निगाह लगी थी।

लेकिन उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह भिखारी स्वयं श्रीमन्त के पास पहुँचा और शिकायत के स्वर में बोला, "आपके यहाँ तो बड़ी ही अव्यवस्था है।"

श्रीमन्त ने विनम्रता से पूछा, "हमसे क्या गलती हुई है, कृपया बता दीजियेगा ताकि उसे सुधारा जा सके।"

भिखारी ने कहा, "आज मैं आपके मकान के चारों दरवाजों पर गया। और चारों दरवाजों से मुझे दो-दो गज कपड़ा मिल गया है। इस तरह दान करने से तो आपकी सारी सम्पत्ति नष्ट हो जाने वाली है।"

श्रीमन्त ने बिना सिर ऊपर उठाये अत्यन्त ही विनीत भाव से कहा, "भगवान् जब चारों दरवाजों से देता है, तो चारों दरवाजों से दान करने में क्या हर्ज है?"

सुनते ही राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ। और तभी से यह कहावत प्रसिद्ध है कि, "लेने के लिए नहीं, देने के लिए भी अपने चारों दरवाजे खुले रक्खो!"

# वेद प्रवचन

★ स्व० गंगाप्रसाद उपाध्याय

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद्भद्रं, तन्न आसुव ।। (यजुर्वेद)

अर्थ : हे प्रेरक प्रभो ! सब बुराइयों को दूर कीजिये।
जो कल्याणकारक वस्तु हो वह हमारे लिए दिलाइये ।।

व्याख्या—यह ऋषि दयानन्द का प्रियतम मन्त्र है। अपने वेदभाष्य के प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में ऋषि ने इसी मन्त्र से ईश्वर से सहायता के लिए प्रार्थना की है और प्रत्येक मतमतान्तर का मानने वाला मनुष्य इस मन्त्र से बिना संकोच के प्रार्थना कर सकता है। इस प्रकार की प्रार्थना सब प्रकार की साम्प्रदायिकताओं से मुक्त है। सभी 'दुरित' से बचना चाहते हैं और 'भद्र' को ग्रहण करना चाहते हैं।

इस मन्त्र में तीन विशेष शब्द हैं जिनके अर्थ विचारणीय हैं। एक 'सविता', दूसरा 'दुरित' और तीसरा 'भद्र'। प्रार्थना का अर्थ है प्र+अर्थना। 'प्र' का अर्थ है 'प्रकर्षेण' तेजी से, विशेष उत्कण्ठा से। अर्थना का अर्थ है मांगना। प्रार्थी उसी वस्तु को उत्कण्ठा से मांगता है जिसका मूल्य उसको ज्ञात होता है और जिसको पा जाना उसकी शक्ति के भीतर है। भूखा भिखारी रोटी माँगता है ; अमेरिका के राज की प्रधानता नहीं चाहता। अज्ञात या अप्राप्य वस्तु की कल्पना हो सकती है। कभी-कभी इच्छा भी। परन्तु इसको प्रार्थना नहीं कह सकते। प्रार्थना के लिए आन्तरिक उत्कण्ठा या विह्वलता आवश्यक है। उसके लिए यह जानने की आवश्यकता है कि वह क्या वस्तु है जिसकी हमको माँग है ? बच्चा भूख से व्याकुल होकर चिल्लाता है। यह उसकी सबसे सच्ची प्रार्थना होती है। **'अर्थ'** बिना समझे **'प्रार्थना'** करना अपने को धोखा देना है। जिस वस्तु को तुम जानते ही नहीं उसको प्राप्त करने की इच्छा ही कैसे हो सकती है और यदि वह वस्तु प्राप्त भी हो जाय तो उससे तुमको क्या लाभ हो सकता है। संसार में लोग 'मोक्ष' या 'स्वर्ग' के लिए सबसे अधिक प्रार्थना करते हैं। वह नहीं जानते कि मोक्ष क्या वस्तु है या स्वर्ग कैसा और कहाँ है। इसलिये ऐसी अज्ञात प्रार्थनायें मोक्ष के स्थान में बन्ध और स्वर्ग के स्थान में नरक की प्राप्ति ही कराती हैं। इसलिये प्रार्थी को 'दुरित' और 'भद्र' के अर्थों को जानना चाहिये।

दुरित=दुः+इत। 'इण् गतौ'' से 'क्त' प्रत्यय करके 'इत' बना। 'इत' में 'दुः' लगा देने से 'दुरित' बना। सायण ने 'दुरितम्' का अर्थ किया है "अज्ञानात् निष्पन्नं'' (देखो ऋग्वेद भाष्य १-२३-२२) और 'दुरितानि' का 'पापानि' (देखो ऋग्वेद भाष्य २-२७-५)। आप्टे ने 'दुरित' का अर्थ किया है Difficult (कठिन), Sinful (पाप), A bad course (बुरा मार्ग)। धातु और प्रत्यय पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि मार्ग में जो कुछ बाधाएँ उपस्थित हैं वह सब '**दुरित**' हैं। आप कहीं पर पहुँचने के लिए कोई मार्ग खोजते हैं। यदि मार्ग अच्छा है तो यात्रा सुगम होती है। यदि मार्ग में कांटे हो तो यह 'दुरित' है। यदि ईंट-कंकड़ के रोड़े हों तो यह दुरित है। यदि खाबड़-खूबड़ हो तो यह दुरित है। यदि झाड़-झंखाड़ हो तो यह दुरित है। यदि बीच में नदी-नाला आ जाय तो यह दुरित है। यदि आपके पैरों में थकावट आ जाय और आपको यात्रा के बीच में ही बैठ जाना पड़े तो यह दुरित है। यदि मार्ग में डाकू मिल जायं तो वह दुरित है। सारांश यह है कि आपकी जीवन-यात्रा में जो बाधायें पड़ती हैं वह सब दुरित हैं। मंजिल एक है, मार्ग भी एक है। परन्तु बाधाएँ अर्थात् दुरित बहुत-से हैं। आपकी जीवन-यात्रा आपके जन्म से आरम्भ होती है; आरम्भ से ही 'दुरित' भी आ उपस्थित होते हैं। शैशव काल के अनेक रोग (Juvenile diseases) आपके मार्ग को रोकते हैं। यह 'दुरित' है। बड़े होने पर जिस कार्य में आप हाथ डालते हैं उसी में कोई-न-कोई वस्तु बाधक हो जाती है। कभी आपकी अविद्या, कभी आपका प्रमाद, कभी आपका लोभ, कभी किसी बाहरी शक्ति का विरोध। यह सभी तो 'दुरित' हैं, और इनमें यदि एक छोटा-सा भी दुरित शेष रह गया तो आपकी जीवन-यात्रा असम्भव हो सकती है। आपका समस्त शरीर सुदृढ़ और रोगरहित हो, केवल पैर की सबसे छोटी उंगली के एक किनारे पर सरसों के बराबर फोड़ा हो जाय; आप देखेंगे कि आपका सारा काम ठप्प हो जायगा। यदि आप राजा हैं और आपने अपने किले की दीवारें बहुत चौड़ी और मज़बूत बनाई हैं जिनका तोड़ना किसी शत्रु की शक्ति से बाहर है और यदि आपके किले के कई मील के सुदृढ़ घेरे में एक स्थान पर एक हाथ की लम्बाई में एक कमजोर जगह छूट गई तो उस हाथ-भर जगह में होकर ही शत्रु का प्रवेश हो सकता है और

आपका साम्राज्य एक क्षण में अस्तव्यस्त हो सकता है। इसीलिये वेद में 'दुरितानि' के साथ 'विश्वानि' विशेषण लगाया गया। आप जब भगवान् से 'दुरितों' के दूर करने की प्रार्थना करते हैं तो 'विश्वानि' पर विशेष बल है।

"यद् भद्र" —जो भद्र या कल्याणकारक होवे! भद्र क्या है? 'दुरितों' का दूर करना ही भद्र है। महामुनि गौतम ने न्यायदर्शन में दो सूत्रों द्वारा इस रहस्य को समझाया है। "बाधना लक्षणार्थं दुःखम्"। "तदत्यन्तविमोक्षो अपवर्गः" (न्यायदर्शन, १।१।२१,२२)। अर्थात् रुकावट ही दुःख है। दुःख ही को 'दुरित' कहते हैं। (दुः+ख=दुःख, दुः+इत=दुरित)। 'ख' नाम 'इन्द्रिय' का भी है और 'आकाश' का भी। आकाश में ही गति सम्भव है। इन्द्रियाँ भी आकाश में ही गतिवती हो सकती हैं। जिन वस्तुओं द्वारा इन्द्रियों की नैसर्गिक प्रगति में रुकावट होती है वही दुःख है। वही दुरित है, उससे 'अत्यन्तविमोक्ष' का नाम अपवर्ग है। अर्थात् कोई रुकावट शेष न रह जाय। रुकावटों के निःशेष होने पर जो स्थिति होगी वही 'भद्र' है। उसी की प्राप्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गई है।

इस मंत्र में ईश्वर को 'देव सवितः' कहकर पुकारा गया है। 'सविता' (सवितृ) शब्द के अर्थों पर विशेष विचार करना है। 'सविता का सम्बन्ध 'परासुव' और 'आसुव' दोनों से है। क्योंकि यह तीनों शब्द एक ही धातु 'षू' के सूचक है। 'सविता' का अर्थ है 'प्रसविता' अर्थात् प्रेरक। मोनियर विलियम्स ने अपने बृहद् संस्कृत कोष में 'सव' का अर्थ दिया है "One who sets in motion, impels, an instigator, a stimulator" सविता का अर्थ दिया है –a stimulator rouser, vivifier. हमने यह अंग्रेजी अर्थ इसलिये दिये हैं कि साधारण हिन्दी भाषा में हम सब प्रसव, सविता, प्रसविता के मुख्य धात्वर्थ की उपेक्षा कर जाते हैं। ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल के ८२वें सूक्त में ९ मंत्र हैं। उन सबकी देवता 'सविता' है। और हर मंत्र में सविता के साथ 'षू' धातु के किसी-न-किसी रूप का प्रयोग हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि 'सविता' और उसके सम्बन्धी 'परासुव और 'आसुव' विशेष अर्थों के सूचक हैं।

[ क्रमशः ]

## ब्र० जगदीश विद्यार्थी की कृतियाँ

| पुस्तक | मूल्य |
|---|---|
| वैदिक प्रश्नोत्तरी | २-०० |
| वेद सौरभ | २-०० |
| ईशोपनिषद् | २-०० |
| वैदिक उदात्त भावनाएँ | २-०० |
| कुछ करो कुछ बनो | १-०० |
| मर्यादा पुरुषोत्तम राम | १-५० |
| विद्यार्थियों की दिनचर्या | १-५० |
| दिव्य दयानन्द | १-२५ |
| प्रार्थना प्रकाश | १-२५ |
| प्रभात वन्दना | १-२५ |
| दयानन्द सूक्ति और सुभाषित | ४-०० |
| हास्य विनोद | १-०० |
| ब्रह्मचर्य गौरव | ०-६० |
| भारत की अवनति के कारण | ०-२० |
| विष्णुपुराण की आलोचना | ०-४० |

**संकलित**

| पुस्तक | मूल्य |
|---|---|
| ऋग्वेद शतकम् | १-०० |
| यजुर्वेद शतकम् | १-०० |
| सामवेद शतकम् | १-०० |
| अथर्ववेद शतकम् | १-०० |

## श्री महात्मा आनन्द स्वामी कृत

| पुस्तक | मूल्य |
|---|---|
| तत्त्वज्ञान | ३-०० |
| प्रभुदर्शन | २-५० |
| प्रभुभक्ति | १-५० |
| घोर घने जंगल में | २-५० |
| उपनिषदों का सन्देश | १-५० |
| मानव जीवन गाथा | १-०० |
| भक्त और भगवान् | १-०० |
| महामन्त्र | १-०० |
| सुखी गृहस्थ | १-०० |
| आनन्द गायत्री कथा | ०-७५ |
| एक ही रास्ता | १-०० |
| शंकर और दयानन्द | ०-५० |
| सत्यनारायण कथा | ०-७५ |
| बोध कथाएँ प्रथम भाग | १-५० |
| ,, द्वितीय भाग | १-५० |

**गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली**

मुद्रक, प्रकाशक, विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दाईवाड़ा दिल्ली में मुद्रित कर वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया।

**वर्च आ धेहि मे तन्वांसह ओजो वयो बलम् ।**
**इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि शतशारदाय ।।**

अ० १९।३७।२ ।।

(मे तन्वां) मेरे शरीर में (वर्चः) तेज, (सहः) शक्ति, (ओजः) पराक्रम, (वयः) पौरुष, (बलं) बल, (आधेहि) धारण कर। (इन्द्रियाय कर्मणे वीर्य्याय) इन्द्रिय, कर्म और वीर्य तथा (शत शारदाय) सौ वर्ष की आयु के लिए (त्वा प्रतिगृह्णामि) तेरा स्वीकार करता हूँ।

हर एक मनुष्य को अपने शरीर में तेज, शक्ति, स्फूर्ति, पराक्रम पौरुष, बल आदि धारण करके बढ़ाने चाहियें। इन्द्रियशक्ति, पुरुषार्थ वीर्य और दीर्घ आयुष्य की वृद्धि के लिए प्रयत्न करना चाहिये। इनकी वृद्धि से ही मनुष्य की योग्यता बढ़ जाती है और इनके घटने से मनुष्य की योग्यता घट जाती है। इसीलिए जितना शक्य हो, उतना प्रयत्न करके मनुष्य को उक्त शक्तियाँ अपने अन्दर विकसित करनी चाहिये। वर्चःशब्द तेजस्विता का बोध कराता है। सहःशब्द से शत्रुओं को पराजित करने की शक्ति का भाव ज्ञात होता है। ओजःशब्द शारीरिक शक्ति के पुरुषार्थ करने का भाव बताता है। वयःका अर्थ पौरुष= प्रयत्न है। बलः-शब्द सब प्रकार के, शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक बलों का बोध कराता है।

मनुष्य की योग्यता (१) इन्द्रियशक्ति, (२) उत्साहमय वीर्यशक्ति, (३) कर्मशक्ति और (४) दीर्घ आयु पर अवलम्बित होती है। इनमें से कोई शक्ति कम हो जाये तो योग्यता कम हो जाती है और अधिक होने से योग्यता बढ़ जाती है। इसीलिए हरएक मनुष्य को इनकी वृद्धि करने के पुरुषार्थ में पराकाष्ठा करनी चाहिये।

॥ ओ३म् ॥

# वे द प्र का श

वर्ष १७ | संस्थापक—गोविन्दराम हासानन्द | वार्षिक मूल्य
अङ्क ४ | कार्तिक २०२५, नवम्बर १९६८ | ३-००

सम्पादक : विजयकुमार    आदरी सम्पादक : जगदीश विद्यार्थी

## वेद प्रवचन

★ स्व० गंगाप्रसाद उपाध्याय

**अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।**
**युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥**

(ऋग्वेद १-१८९-१; यजुर्वेद ३-३६, ७-४३, ४०-१६, तैत्तिरीय संहिता १-१-१४-३; १-४-४३-१, तैत्तिरीय ब्राह्मण २-८-२-३, तैत्तिरीय आरण्यक १-८-८, शतपथ ब्राह्मण १४-८-३-१)

अन्वय : हे देव अग्ने, विश्वानि वयुनानि विद्वान् (जानंस्त्वं), राये अस्मान् सुपथा नय, अस्मत् जुहुराणं एनः युयोधि । (वयं) ते भूयिष्ठां नम उक्तिं विधेम ॥

अर्थ : हे सबके नायक या पथ-प्रदर्शक भगवन् ! आप सब ज्ञानों को जानने वाले हैं । इसलिए हम आपकी बहुत-बहुत स्तुति करते हैं । आप 'राये' अर्थात् धन-सम्पत्ति के लिए हमको ठीक मार्ग पर ले चलिये । हमसे कुटिल पाप को दूर रखिये ।

व्याख्या—इस मन्त्र में परमात्मा का विशेष नाम 'अग्नि' है और उससे पथ-प्रदर्शन की प्रार्थना की गई है । लोक-भाषा में 'अग्नि' आग को कहते हैं । आग से प्रकाश होता है, और प्रकाश मार्ग-प्रदर्शन करता है । अन्धेरे में चल नहीं सकते । अन्धेरी रात में घने जंगल में भटकने वाले पथिक के लिए जुगनू की चमक भी सहायक हो जाती है । और यदि कहीं विजली कौंध जाय तो कुछ-न-कुछ मार्ग दिखाई देने लगता है ।

अंधेरे रास्ते में दीपक, मशाल आदि मार्ग प्रदर्शन करते हैं । यह सब आग के ही भिन्न-भिन्न रूप हैं । सूर्य आग का सबसे बड़ा गोला है और सूर्य के समान दूसरी वस्तु भौतिक अर्थ में पथ-प्रदर्शक है ही नहीं । अतः 'अग्नि' का पथ-प्रदर्शन से घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

वेद में ईश्वर को 'अग्नि' शब्द से सम्बोधित किया है। ऋग्वेद का सबसे पहला शब्द अग्नि है। मानव जाति के साहित्य में ऋग्वेद प्राचीनतम पुस्तक है, और ऋग्वेद का पहला शब्द अग्नि है। अतः कोई संशय नहीं कि ईश्वर के लिए हमारे ऋषियों ने जिन शब्दों का प्रयोग किया उनमें 'अग्नि' सबसे पहला है। ईश्वर के पर्यायों में अग्नि से पुराना कोई शब्द नहीं है। सृष्टि के आरम्भ में जब वेदों का आविर्भाव हुआ होगा तो ऋषियों को सबसे पहली आवश्यकता यह हुई होगी कि कोई उनका पथ-प्रदर्शक होता। एक तो ईश्वर की बनाई सृष्टि थी, उसकी वस्तुएँ मनुष्य का पथ-प्रदर्शन करती थीं। इसको आप 'नेचर' या सृष्टि कह सकते हैं। घास की छोटी-सी पत्ती से लेकर सूर्य जैसे विशाल पदार्थ सभी मनुष्य को कुछ-न-कुछ पाठ पढ़ाते ही हैं। चींटी से लेकर हाथी तक सभी मनुष्य के गुरु बनना चाहते हैं, और बुद्धिमान् मनुष्य सभी से आचार ग्रहण कर सकता है। परन्तु सृष्टि पथ-प्रदर्शन का ठीक-ठीक कार्य करने में असमर्थ है। सृष्टि विशाल है। यह एक अद्भुत भिन्नताओं का संग्रहालय है। मनुष्य इतनी भारी भीड़ में से किसका अनुकरण करे, यह एक प्रश्न रहता है। जो मनुष्य केवल प्रकृति का अनुकरण करते हैं वे प्रायः धोखे में पड़ जाते हैं। बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को खा जाती हैं। शेर छोटे पशुओं को खा जाता है। बहुत-से मनुष्यों का विचार है कि कुदरत या नेचर हमको क्रूर होना सिखाती है। 'हिंसा' स्वाभाविक है और 'अहिंसा' अस्वाभाविक है। यदि मनुष्य पशुओं को ही गुरु बनावे तो मानव-समाज में मत्स्यराज या सिंहराज्य हो जाय। सभ्यता कहाँ रहे ? सभ्य समाज के सभी नियम उलट-पलट हो जायें। कुछ लोगों का विचार है कि मनुष्य माँ के स्तनसे दूध पीने वाला जन्तु है। इस कोटि के कोई विवाह की प्रथा को नहीं मानते। गाय और बैल, या घोड़े और घोड़ी, या कुत्ते और कुतिया में पति-पत्नी का स्थायी सम्बन्ध नहीं होता। केवल कुछ पक्षियों में वैवाहिक जीवन के कुछ चिह्न पाये जाते हैं। अतः समय-समय पर किसी-किसी देश में ऐसे नेता उत्पन्न हो गये हैं जिन्होंने वैवाहिक प्रथा को सृष्टिक्रम के प्रतिकूल बताया है। यूनान का यशस्वी और कीर्तिमान् दार्शनिक प्लैटो (अफ़लातून) तो उच्चकोटि के मानव के लिए पति-पत्नी के स्थायी सम्बन्ध को आदर्श नहीं मानता था।

र उसके तत्सम्बन्धी विचारों का आधार केवल पशु-जगत् ही था। अतः
ष्टि या कुदरत हमारा नेतृत्व तो करती है परन्तु अचूक नेतृत्व नहीं। सृष्टि
वस्तुतः जड़ है। वह अपना एक अङ्ग ही प्रदर्शित कर सकती है। चेतन
पथ-प्रदर्शन के लिए चेतन चाहिये। ऐसा चेतन जो चेतनों में सबसे अधिक
नता का स्वामी हो। ऐसे चेतन को वेदों ने 'अग्नि' शब्द से सम्बोधित
या।

सृष्टि के आरम्भ में जब वेदों का प्रचार हुआ होगा, उस समय पाणिनि
दि के व्याकरण न रहे होंगे। शब्दों के धातु और प्रत्ययों को अलग-अलग
ना और फिर उनसे संश्लेषण करके नये शब्द बनाना यह आदिकाल की
नहीं थी। कालान्तर में ऋषियों ने निरुक्त, व्याकरण आदि शास्त्र
और उनके भिन्न-भिन्न नियम बनाये। आदि ऋषियों के हृदयों में ईश्वर
प्रेरणा से शब्द और अर्थ का साक्षात् सम्बन्ध रहा होगा। धातु और
यों के माध्यम से नहीं। इसीलिए आदि ऋषियों को साक्षात्-कृत् धर्मा
गया है। मधुच्छन्दा आदि ऋषि संज्ञा अग्नि और संज्ञी परमात्म-तत्त्व के
न्ध को साक्षात् अर्थात् बिना धातु-प्रत्यय के माध्यम के समझते रहे होंगे।
यम की आवश्यकता तो तब पड़ी होगी जब वैदिक भाषा जनसमुदाय की
बनी होगी।

इसीलिए हम देखते हैं कि प्राचीन व्याकरण या निरुक्त की पुस्तकों में
नि' शब्द की भिन्न-भिन्न व्युत्पत्तियाँ दी हुई हैं। यास्क ने कई आचार्यों
त दिये हैं। जैसे 'अग्नि' का अर्थ है अग्र+नी[1]=अग्रणी, नेता। एक
ार्य का मत है कि 'अग्नि' तीन अक्षरों का समुदाय है। 'अ' का अर्थ है
न'। 'अनक्ति' से क् या ग् अक्षर लिया है और 'नि' णीञ् प्रापणे से
गया है। यहाँ भी अग्नि से नेतृत्व का अर्थ मिलता है। वेद हैं किस-
? मनुष्य को ठीक मार्ग बताने के लिए। और वेदों का दाता है ईश्वर।
हमारा पथ-प्रदर्शक हुआ।

वेद मन्त्र में 'अग्नि' का एक विशेषण दिया है—"विश्वानि वयुनानि
न्"। यह अग्नि के उस गुण को व्यक्त करता है जिसके कारण हम

१. अग्रिर्हवैनामैतद् यदग्निः (शतपथ ब्राह्मण २।४।२।२)

ईश्वर का आश्रय चाहते हैं। 'वयुनम्' का अर्थ है 'प्रज्ञा' या ज्ञान। 'विश्वानि वयुनानि' का अर्थ हुआ समस्त ज्ञानों का भंडार। सृष्टि के पदार्थ हमको ज्ञान देते हैं। परन्तु आंशिक, एकदेशी या अधूरा। इसीलिये हम धोके में पड़ जाते हैं। ईश्वर पूर्ण ज्ञानी है, उसमें अज्ञान लेशमात्र भी नहीं है। उसका पथ प्रदर्शन सबसे उचित होगा। उपनिषद् में कहा है कि ईश्वर के दर्शन-मात्र से 'छिद्यन्ते सर्वसंशयाः' समस्त शंकायें निवृत्त हो जाती हैं। और मनुष्य का मार्ग सरल हो जाता है। वेदमन्त्र में 'जुहुराणं' अर्थात् कुटिल मार्ग को ही 'एनः' अर्थात् पाप बताया है। टेढ़े मार्ग पर चलने का नाम ही पाप है। इसका उलटा है 'सुपथ्' अर्थात् सीधा मार्ग। सीधा मार्ग एक होता है। बिन्दुओं के बीच के सबसे छोटे मार्ग को सरल रेखा कहते है। जो सरल न हों वह 'जुहुराणं' अथवा कुटिल हैं। मनुष्य यों तो जीवन-भर चलता ही रहता है। जैसे जंगल में पचासों रास्ते बने होते हैं, समझ में नहीं आता कि कौन-सा रास्ता ग्रहण करना चाहिए। यदि शेर ने कहीं से अपनी मांद तक जाने के लिए मार्ग बना लिया तो वह भी मार्ग है। भालू किसी ओर होकर गुज़र गया तो उसके पैरों के चिह्न भी पद्धति (पत्+हति) हैं। सैकड़ों भूल-भुलैयाँ हैं ; वे पथ तो हैं 'सुपथ' नहीं, यह सब 'जुहुराणं' कुटिल और मनुष्य को हानि पहुँचाने वाले हैं। इसी प्रकार संसार में भी मनुष्य दूसरे मार्गों का अनुसरण करके अपने लिए कितने आदर्श गढ़ता है। किसी ने जुआरी को देखा कि एक दाव पर उसे पाँच सौ रुपये मिल गये। वह जी कहता है—यही मार्ग है 'राये' अर्थात् सम्पत्तिशाली होने के लिए। जुआ का मार्ग, मार्ग तो है परन्तु सन्मार्ग या सुपथ नहीं। इस मार्ग पर चलकर हजारों जुआरी बन जाते हैं। वे स्वयं भी भ्रष्ट होते हैं और संसार के लि बुरा उदाहरण छोड़ जाते हैं। कोई डाका डालता है ; कोई अन्य अत्याचा करके सुखी रहना चाहता है। सच्चा प्रार्थी ईश्वर से प्रार्थना करता है कि 'जुहुराणं एनः युयोधि'—ऐसे कुटिल मार्ग से मुझे दूर रख। अर्थात् मुझे पाप करने की प्रवृत्तियों से बचा। जिस प्रार्थी के हृदय में पाप से बचने की इतनी उत्कट इच्छा होगी वह पाप से अवश्य बचेगा। पाप-कर्मों में प्रलोभन होता है ; कुछ मिठास होता है। मक्खी बैठी शहद पर पंख

पटाय।' शहद मीठा है। मक्खी को यह पता नहीं कि यह मिठास ही सकी मृत्यु का हेतु बनेगा। परन्तु जिसको पाप की प्रवृत्ति की कुटिलता हिंसकता का पता है, वह पाप से ऐसे ही डरता है जैसे बच्चा ग से। योगदर्शन में पाप से बचने के लिए एक सूत्र आया है— वितर्कबाधने प्रतिपक्ष-भावनम्" (योगसूत्र २-३४)। अर्थात् पाप की प्रवृत्ति बचना चाहो तो पाप से होने वाली हानियों को चित्रित करके अपने मन सामने रक्खा करो। यदि हम कुटिल मार्ग पर चलेंगे तो ऐसा दुःख होगा। बद-परहेज बीमार कभी-कभी आने वाली पीड़ा के डर से परहेज़ करने गता है। प्रार्थना का सबसे बड़ा लाभ यह है कि जब हम पाप से बचने के लिए प्रभु के सामने गिड़गिड़ाते हैं तो पापों की हानियाँ हमारे मन पर अंकित हो जाती हैं और यही पापों से बचने का उपाय है।

परन्तु प्रतिपक्ष-भावना सुगम काम नहीं हैं। पापी के हृदय में पाप के मिठास की तो भावना होती है, उसके प्रतिपक्ष अर्थात् दुःख की भावना उत्पन्न नहीं होती। जो विद्यार्थी खेल-कूद में पड़कर कुटिल मार्ग का अवलम्बन करता है और विद्यार्थी के कर्तव्यों से च्युत होता है उसके सामने परीक्षा में विफल होने वाले दुःख का पूरा चित्र बन ही नहीं पाता। जिसने उस चित्र को ठीक-ठीक मन के पटल पर खींच पाया उसको तो अपने कार्य में सिद्ध होना अवश्यम्भावी है। यह काम साधारण इच्छा मात्र से पूरा नहीं होता। सुख की इच्छा तो सभी करते हैं और पुण्य भी सभी करना चाहते हैं। परन्तु इच्छामात्र से ईश्वर किसी की सहायता नहीं करता। इच्छा उत्कट होनी चाहिए जो साधारण प्रलोभनों से चलायमान न हो सके। प्रलोभनों की आँधी छोटे वृक्षों को तो शीघ्र ही उखाड़ फेंकती है। इसके लिए लगातार कोशिश की जरूरत है। मन्त्र में कहा है "भूयिष्ठां ते नम उक्ति विधेम"—हे प्रभु, हम बहुत अधिक बार अर्थात् बार-बार आपसे प्रार्थना करते हैं। भूयिष्ठ शब्द के अर्थों पर विचार कीजिये। केवल 'भूयिष्ठ' शब्द कहने से कोई क्रिया भूयिष्ठ नहीं हो जाती। जिह्वा से भूयिष्ठ शब्द तो जल्दी से कहा जा सकता है, परन्तु क्रिया के भूयिष्ठ होने में तो समय लगता है परिश्रम करना पड़ता है; तप की आवश्यकता होती है। हम समझते हैं

कि जब हमने वेद मन्त्र में 'भूयिष्ठां' शब्द का प्रयोग किया तो हमारी प्रार्थना भी 'भूयिष्ठ' हो गई और ईश्वर भी यह समझकर कि मैं 'भूयिष्ठां नम उक्ति' करता हूँ, उसका फल मुझे दे ही देगा। हम प्रायः बहुत-से भजन गाते हैं जिनमें दिया होता है कि प्रभु हम तुम्हारी लाखों बार प्रार्थना करते हैं। यहां लाखों का अर्थ 'लाखों' नहीं होता। 'सहस्रों' में तीन अक्षर हैं, 'लाखों' में दो। वस्तुतः प्रार्थी एक छोटे-से शब्द का प्रयोग करके 'लाखों' का लाभ उठाना चाहता है। यह स्वयं अपने को धोखा देना है। दस बार प्रणाम करने का अर्थ है एक-एक क्रिया दस बार करनी। इसी प्रकार लाख प्रणामों का क्या अर्थ होगा? क्या कोई लाख बार प्रार्थना करता है? यदि करता ही नहीं तो उसको फल की प्राप्ति कैसे हो सकती है? वेद मन्त्र इस प्रकार की निरर्थक प्रार्थनाओं को विहित नहीं समझते। जो कहो उसको करो। जो वाणी में हो वही मन में हो। यदि प्रार्थी गम्भीरता से ऐसी प्रार्थना करेगा तो उसका जीवन अवश्य पवित्र होगा।

वेद मन्त्र में 'सुपथा' अर्थात् ठीक मार्ग की माँग की गई है। ईश्वर हमारा पथप्रदर्शक है। पथप्रदर्शन उसी का हो सकता है जो वास्तव में पथिक हो। जो पथिक ही नहीं उसके लिये पथप्रदर्शक व्यक्ति और पथप्रदर्शन करने वाले चित्र या पुस्तिकायें व्यर्थ हैं। यदि मैं कलकत्ते जाना ही नहीं चाहता तो रेल के टाइम-टेबिल या स्टेशन का इनक्वायरी आफिस किस प्रयोजन का? इसी प्रकार वैदिक प्रार्थनायें भी धर्मयात्रा के यात्री के लिये हैं। जो उस मार्ग का अनुगामी ही नहीं उसके लिये प्रार्थनायें बेकार हैं। मार्ग की खोज वह करता है जिसे मार्ग पर चलना है। प्रायः हर धर्ममन्दिर में प्रार्थनाएँ हुआ करती हैं। बड़े-बड़े कवि अपने मनोहर काव्य रचकर प्रार्थियों के हाथ में दे देते हैं। और प्रार्थी इन पदों को बड़ी श्रद्धा से गाते हैं। इसी का नाम प्रार्थना है परन्तु इन प्रार्थना करने वालों में एक भी धर्म-मार्ग पर चलने वाला नहीं होता। परमात्मा ऐसे प्रार्थियों को 'सुपथा' या अच्छे मार्ग से कैसे ले जा सकता है। सन्मार्ग पर चलने की इच्छा हो। सन्मार्ग खोजने की इच्छा हो। और वह इच्छा तीव्र, उत्कट और अमिट हो तो अग्निदेव उसका पथ-प्रदर्शन अवश्य करेंगे।

# ब्रह्म का साक्षात्कार

★ वा० विष्णुदयाल

धर्म से विमुख होने वाले धर्म-प्रेमियों की चाल को नापसन्द करते हैं। धर्म से प्रेम करना हो तो उसे बदनाम न करके उसका सत्य स्वरूप प्रकट करने में प्रयत्नशील होना चाहिए। हमने समझ रखा है कि जो मन्दिर पर हमेशा जाया करता है और जो साथ-साथ उस मन्दिर को चुनता है जो अधिक भव्य हो, वही धर्म-प्रेमी है।

वास्तव में ऐसे बेचारों का प्रेम इमारत, कुर्सी, मेज आदि से है, धर्म से नहीं। धर्म-द्रोही की दशा वही है जो भटकने वाले धर्म-प्रेमी की है। वह भी भवन पर लट्टू है, अपने शरीर पर गर्व करता है।

कई सज्जन जन्म-भर ईश्वर की पूजा-अर्चना करते आये हैं। अन्त में ईश्वर के दर्शन न कर पाने से निराश होते देखे जाते हैं, और यह कहते पाये जाते हैं, हमने व्यर्थ ही मेहनत की।

हम कान से खाना चाहेंगे और मुँह से सुनना तो क्या चिरकाल से ऐसी इच्छा होने पर मुँह से अन्ततः सुनने लग जायेंगे और ऐसा न हुआ तो अधीर होकर भोजन करना छोड़ देंगे ?

## जाग्रतावस्था

विरले ही भक्तों को ईश्वर के दर्शन प्राप्त हुआ करते हैं। प्रयत्न करना हमारा कर्तव्य है। सफल न हों तो निराश होने की कोई आवश्यकता नहीं है।

निराशा का कारण यह है कि हम भौतिक जगत् से अभिभूत हैं। जब तक जाग्रत रहते हैं इन्द्रियों से ज्ञान उपलब्ध करते हैं। यह शरीर २४ घंटों में १६ घण्टे जाग्रत रहता है। शेष ८ घण्टे शरीर शव-सम हो जाया करता है। ज्ञान दो-तिहाई समय में उपार्जित होता है।

रात्रि में जब हम सो जाते हैं तब नेत्र बन्द होते हैं, वह मुँह जो खाता

और बोलता रहता था, बन्द हो जाता है। कान भी आराम करने लगते हैं। नींद आने पर कान सुनते नहीं।

संतप्त पश्चिम एक-तिहाई समय में जो बीतता है, उस पर ध्यान देने को तैयार नहीं रहता। जाग्रतावस्था में हम प्रकृति के साथ विचरते हैं और प्रकृति दुःख देने वाली है, इसीलिए सांख्य शास्त्र में प्रकृति की तुलना नचनिया के साथ की गई है जो चंचला है।

## स्वप्नावस्था

सो जाने पर भी हम स्वप्न में खाते, सुनते, बोलते, देखते हैं यद्यपि शरीर काम नहीं करता। इन्द्रियाँ अन्तर्मुख हो जाती हैं।

हर रोज इन्द्रियाँ रात्रि में रुक-सी जाती हैं, फिर भी हमने मुँह को बंद होते पाकर कम बोलना नहीं सीखा। हम बोलते ही रहते हैं। यह सुन रखा तो है कि स्व० महायोगी श्री अरविन्द बोलते न थे और महात्मा गांधी कम-से-कम सप्ताह में एक दिन मौन धारण करते थे। बुरी आदत त्यागी नहीं जाती। दूसरों को बोलते सुन कर हमें उनके शब्दों और विचारों पर ध्यान देना चाहिए था। हम स्वयं बोलने को उत्सुक हैं। इस प्रवृत्ति के परिणाम-स्वरूप श्रोता न बन कर वक्ता बनते हैं, स्वप्नावस्था से रोज गुजर कर भी हम संभलते नहीं हैं।

एक मात्र मनुष्य है जिसे यह जानने का सुवर्ण अवसर प्राप्त है कि सपना क्या है। पशु और पक्षी की तरह रहना हो तो हम अन्तर्मुख न हों।

जो देश आत्मनिर्भर है, अपने अन्दर सब कुछ पाता है, वह सुखी है। उसे विदेश से माल मँगा कर, जहाज का किराया भरना नहीं पड़ता और न ही सूखी खाद्यवस्तु को लेकर ज्यादा दाम देना पड़ता है।

भौतिकवादी को केवल इस बात की चिन्ता है कि कैसे भोजन मिले, कैसे शरीर को जीवित रखा जाय। उसे भी मानना पड़ता है कि एक प्रकार से वही देश सुख पाता है जो उस मनुष्य के समान है जो अन्तर्मुख हुआ करता है।

जब कार्यकलाप भीतर होता है, हम दूसरी या स्वप्नावस्था से गुजरते हैं। दिन में मन खूब भागता रहा। शरीर श्रम करके थक जाय और आराम करे, तब भी मन भागता रहता है। मन शरीर और आत्मा के बीच की कड़ी है।

जाग्रतावस्था में आँखें वस्तुओं को देखा करती हैं, वे उनके चित्र उतारा करती हैं। वे चित्र सुरक्षित रहते हैं, इसी कारण वे वस्तुएँ सपने में दिखाई देती हैं।

स्वप्न स्वास्थ्यकर है, आनन्ददायक है। रात्रि में मन अधिक अन्दर रहता है।

## सुषुप्ति या तृतीयावस्था

कभी-कभी सपना देखने में नहीं आता। हम तब तीसरी अवस्था से गुजरने लगते हैं। एक दिन किसी ने आचार्य विनोबा से प्रश्न किया कि स्वप्न देखना अच्छा है? उन्होंने इतना ही कहा कि न देखना ज्यादा अच्छा है।

उपनिषदों का गम्भीर ज्ञान इनकी पहुँच के भीतर है। मितभाषी होने के कारण यह नहीं कहा कि मैं स्वप्न देखता नहीं हूँ, पर उनके उत्तर का यही मतलब हो सकता है कि स्वप्न देखना भी मुझे आया और न देखना भी।

तृतीयावस्था में मन की वही हालत होती है जो स्वप्नावस्था में देह की होती है। मन का तब होना न होने के बराबर होता है। पं० गुरुदत्त विद्यार्थी ने माण्डूक्योपनिषद् की व्याख्या करते हुए लिखा है: "जब स्वप्न देखने वाले को गाढ़ निद्रा आ घेरती है तो मन मस्तिष्क से पूर्णतः निवृत्त होकर केवल शारीरिक ढाँचे के जीवन को स्थिर रखता है।

शरीर निश्चेष्ट हुआ। तत्पश्चात् मन कार्यशील न रहा। आत्मा का तब प्रकटीकरण-सा हुआ। पं० गुरुदत्त ने क्या ही ठीक कहा—

"शरीर-मन्दिर खूब तैयार किया हुआ एक विशाल रंगमञ्च-मात्र है, इस पर मुख्य नाटककर्त्ता, अर्थात् मनुष्य का आत्मा, अपने प्रतिनिधियों को बारी-बारी एक दूसरे के बाद, नाटक खेलने और रंगमंच को दूसरे आने-वालों के लिए तैयार करने के लिए भेजता है। इन्द्रियानुभव के लिए स्थान तैयार होता है। वह, फिर अपनी बारी में, अपना खेल पूरा करके, विषय-

---

१. When sound sleep overtakes the dreamer, the mind wholly retires from the cerebrum, only maintaining the life of the physical frame.

—The Late Pt. Grudattta Vidyarthi M. A.

ग्रहण-शक्ति, तुलना, और स्मृति के बारी-बारी आने के लिए स्थान को ठीक करता है। यहाँ तक कि सब के अन्त में स्वयं मानव आत्मा पूर्णरूप से तैयार रंगमंच पर अपनी आत्म-सत्ता की शक्तियों का प्रकाश करने के लिए प्रकट होता है।"

तीसरी अवस्था में असली आनन्द की उपलब्धि होती है। भोजन ग्रहण करने या आंखों से रूप-यौवन, कामिनी-कांचन देखकर जो आनन्द पाया जाता है, वह निकृष्ट है। इससे सन्तोष-लाभ करने वाले तांबे के सिक्के से खुदा होने वाले बच्चे से बड़े नहीं हैं।

ऊपर वर्णित तीन अवस्थाओं के सूचक अ, उ, म् अक्षर हैं। अ आरम्भ या जाग्रतावस्था के लिए है। हम चक्षु से देह को देखकर अपने को पहचानने लगते हैं। यदि सारा ध्यान केवल शरीर पर रहे और उससे कभी न हटे तो हम प्रारम्भिक अवस्था में ही रहेंगे।

'उ' को अ से उत्कृष्ट बताया जाता है। जब उ को अ के साथ जोड़ा जाता है तो उ अ के सिर पर चढ़ जाता है। दोनों के मेल से ओ बनता है। उ स्वप्नावस्था का सूचक है। हम स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाने लगते हैं। जब मन की आँख से देखने लगते हैं। इन्द्रियों की अपेक्षा मन भीतर है।

'म्' को अ तथा उ या स्वर की सहायता अपेक्षित है। अकेला रहे तो पंगु होता है। प्रथम तथा द्वितीय अवस्थाओं के आने पर तीसरी अवस्था आती है।

अ प्रथम अक्षर है और म् अन्तिम। उ बीच का वर्ण है। मतलब यह कि सब अक्षरों को लेकर जितने भी शब्द बन सकें वे सब बनाये जायें तो केवल तीन अवस्थाओं का वर्णन किया जा सकेगा।

## तुरतीय या चौथी अवस्था

चतुर्थ अवस्था को वर्णित करने के लिए अक्षर या शब्द नहीं मिलते। जो विरले जन ब्रह्म-दर्शन करने में समर्थ होते हैं वे ही जान पाते हैं कि चौथी अवस्था से गुजर कर अपार आनन्द की अनुभूति होती है।

'ओम्' लिखना चाहें तो ३ अक्षरों का हमें प्रयोग करना होगा। कभी-कभी एक अक्षर से भी काम चल सकता है। वह खड़ा रहे तो एक रूप धारण करेगा और सुलाया जाय तो उसका अन्य रूप होगा। यहाँ दोनों रूप दिखाई दिये जाते हैं।

ऊं ऊ

आर्य्य समाज द्वारा संचालित "वैदिक मेगज़िन" नाम वाली मासिक पत्रिका में आज से ३-४ दशक पूर्व एक लेख[१] दिया गया था जिसमें गणेश-जी की कथा पर प्रचुर प्रकाश डाला गया था। लेख का सारांश यह था कि सुलाये गये ऊँ को जो ध्यानपूर्वक देखेगा वह इस नतीजे पर आये बिना न रहेगा कि यह हाथी के आकार का हैं। इसके ऊपर का अंग सूंड की तरह है तो शेषांश हाथी के शरीर के समान है।

गणपति की कथा का रचनाकाल निर्धारित करना असम्भव-सा है। जब भी इसकी रचना हुई हो तभी यह खयाल हुआ होगा कि वेदों के युग का ही ज्ञान नहीं अपितु उपनिषदों के युग का भी ज्ञान सर्वसाधारण तक पहुँचाना होगा।

हमें भूलना नहीं चाहिए कि गणेशोत्सव का दूसरा नाम गणेश चतुर्थी या

---

१. OM was truest and most comprehensive name for the God-head among the Hindus, It was a spiritual formulal which, when expanded by sutras ( aphorisms ) relating to it, gave us all the names and attribu of God. Its place in the spiritual discipline of the Hindus was supreme. God without OM was unthinkable and could not be worshipped.···OM appeared as a letter with a portion remotely resembling an elephant's trunk···

The worship of Ganesha is fixed for the 4th day of the bright half of the month of Bhadrapada. The purpose was the attainment of the fourth state of the mind (The Tureeya condition of sublimical and super conscious state also called Samadhi). The Mandukyopanishad deals with the subject and teaches contempation of OM and attaining the 4th state (Tureeya or Samadhi). —The Vedic Magazine and Gnrekula Samachar, Aug. and Sept., 1932

गणेश चौथ है। दि० ४ को अर्थात् भादों शुक्लपक्ष चतुर्थी को वह मनाया जाता है। हाथी ॐ है। और गणपति के शरीर पर स्थित हैं। ॐ को याद करते रहेंगे तो चतुर्थ अवस्था को प्राप्त होंगे, तब ब्रह्मानन्द उपलब्ध होगा। ओम् या ओ३म् आरम्भ, मध्य और अन्त में है।[1]

इस त्योहार के अवसर पर छात्रों को 'ओनामासीध' की शिक्षा दी जाती है। डा० वशिष्ठ नारायण सिन्हा के मतानुसार यह कदाचित् 'ओम् नाम सिद्धम्' का ही विकृत रूप है।

## कार्य्यारम्भ

आरम्भ में ओम् रहता है। हम ईश्वर को प्रथम स्थान देते हैं। हिन्दी में 'श्री गणेश करना' कार्य्यारम्भ करना, यह अर्थ रखता है।

हम ने पथ-प्रदर्शन किया। इतना कहने पर कि ओ३म् प्रथम स्थान पायेगा मानो हमने अन्य लोगों से ओ३म् को न सही, गणेश को पहला रखवाया।

जब पश्चिम में गणेश नाम पहुँचा वह बदल कर जेनस बना जिससे जनवरी नाम व्युत्पन्न है।

पश्चिमीय मानते हैं कि जनवरी मास प्रथम मास है। वे भी स्वीकार करते हैं कि गणेश का मतलब आरम्भ ही है।

ओ३म् का उच्चारण करना बन्द न किया जाय। उच्चारण मात्र से हम बाह्य जगत् से ध्यान हटाने लगते हैं, हम बहिर्मुख होने लगते हैं। ईश्वर के सान्निध्य में रहना इतना आनन्दप्रद है कि ईशोपनिषद् में कहा गया है कि यह जगत् ऐसा स्थल है जहाँ ईश्वर को बैठाना चाहिए, जहाँ ईश्वर रहने के, निवास करने के योग्य है। चतुर्थावस्था की चर्चा करके माण्डूक्योपनिषद्

---

१. He is the Alpha and the Omega and all thar is between, He is the A, U, and M, the beginning, the middle, the end; the Evolver, the Preserver and Dissoluer of worlds upon worlds; the warp and woof of the web of Careation.

—Vedic Teachings and Ideals

ईशोपनिषद् की याद दिलाती हैं। हम मनुष्य हैं तो चल बसने से पूर्व यहीं[1]
परमात्मा को पावें, यहीं यह ज्ञान प्राप्त करें कि जिस ईश्वर की खोज में
तीर्थ-यात्रा की जाती है, वह हमारे साथ ही है। वह तब तक दूर है[2] जब
तक कि उसे पहचान नहीं पाते। जिस क्षण उसे पहचानने लगते हैं हम उसे
अपने अन्दर पाते हैं:—

"चाँद बदली में छिपा था, मुझे मालूम न था।"

वेद और उपनिषद् प्राचीनतम ग्रन्थों में से हैं। जब से मानव का
आगमन हुआ तब से इन ग्रंथों का पाठ होता आ रहा है। कभी-कभी इनकी
उपेक्षा भी की जाती रही। जब-जब ये उपेक्षित हुए तब-तब इनका उदय
हुआ। अन्तिम बार महर्षि दयानन्द जैसे उद्धारक आये। सम्भव है कि किसी
युग में उन लोगों ने गणपति की कथा रची जिन्हें लगा कि ये विलुप्त होने
जा रहे हैं। उनका यह ख्याल हुआ होगा कि ओ३म् से हमारा ध्यान उचट
न जाय तो वेद, उपनिषद आदि आर्ष ग्रन्थों की कभी-न-कभी खोज होगी।

## सवेरे का प्रकाश

उद्धारक इस मत के नहीं होते कि जब प्राचीन है वह उपयोगी नहीं होता।
और तो और विदेशी लोग वेद और उपनिषद् पाते ही कह उठे कि ये ग्रन्थ
सूर्योदय सम रुग्ण लोगों को स्वास्थ्य प्रदान करने वाले हैं।

माक्समूलर लिखते हैं : "उपनिषद् वेदान्त दर्शन के स्रोत हैं जिसमें कि
मानवी चिन्तन अपने शिखर पर पहुँच गया जान पड़ता है।...मेरी सब से
अधिक आनन्द की घड़ियाँ वेदान्त की पुस्तकें पढ़ने में व्यतीत होती हैं। मेरे
लिए यह सवेरे के प्रकाश जैसी, व पहाड़ों की स्वच्छ वायु जैसी हैं। एक

[ शेष पृष्ठ २० पर ]

---

१. इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति।
—यहाँ इसी जन्म में, यदि ब्रह्म को जान लिया तो सत्य है, सफलता है।
(केन)

२. तद् दूरे तद्वन्तिके।
—वह परमेश्वर तत्त्व दूर है—अज्ञानियों से दूर है, इन्द्रियों से ग्रहण
नहीं किया जा सकता। वह परमेश्वर तत्त्व ही अत्यन्त समीप है—
विश्वात्मा है, आत्मग्राह्य है। (यजुर्वेद)

# हमारी प्रकाशित व प्रसारित पुस्तकें

## महात्मा आनन्द स्वामी कृत

| पुस्तक | मूल्य |
|---|---|
| तत्त्वज्ञान | ३-०० |
| प्रभुदर्शन | २-५० |
| प्रभुभक्ति | १-५० |
| आनन्द गायत्री कथा | ०-७५ |
| एक ही रास्ता | १-०० |
| शंकर और दयानन्द | ०-५० |
| सत्यनारायण व्रत कथा | ०-७५ |
| भक्त और भगवान | १-०० |
| मानव जीवन गाथा | १-०० |
| उपनिषदों का सन्देश | १-५० |
| घोर घने जंगल में | २-५० |
| महामन्त्र | १-२५ |
| सुखी गृहस्थ | १-०० |
| बोध कथाएँ प्रथम भाग | १-५० |
| बोध कथाएँ द्वितीय भाग | १-५० |
| बोध कथाएँ दोनों भाग एक जिल्द में | ३-५० |

## ब्र० जगदीश विद्यार्थी कृत

| पुस्तक | मूल्य |
|---|---|
| विद्यार्थी लेखावली | ३-०० |
| दयानन्द सूक्ति और सुभाषित | ४-०० |
| वैदिक प्रश्नोत्तरी | २-०० |
| वेद सौरभ | २-०० |
| ईशोपनिषद् | २-०० |
| वैदिक उदात्त भावनाएँ | २-०० |
| कुछ करो कुछ बनो | २-०० |
| मर्यादा पुरुषोत्तम राम | १-५० |
| विद्यार्थियों की दिनचर्या | १-५० |
| दिव्य दयानन्द | १-२५ |
| प्रार्थना प्रकाश | १-२५ |
| प्रभात वन्दन | १-२५ |
| हास्य विनोद | १-०० |
| विष्णु पुराण की आलोचना | ०-४० |
| राधा स्वामी मत दर्पण | ०-२५ |
| ऋग्वेद शतकम् | १-०० |
| यजुर्वेद शतकम् | १-०० |
| सामवेद शतकम् | १-०० |
| अथर्ववेद शतकम् | १-०० |

## महर्षि दयानन्द कृत

| पुस्तक | मूल्य |
|---|---|
| आत्मकथा | ०-४० |
| स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश | ०-१० |
| वेदान्तिध्वान्त निवारण | ०-१९ |
| वेदविरुद्ध मत खण्डन | ०-३७ |
| शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण | ०-३७ |
| आर्याभिविनय | ०-७५ |
| आर्योद्देश्यरत्नमाला | ०-१० |
| ऋग्वेद भाष्य का प्रथम सूक्त | ०-२५ |
| भ्रान्ति निवारण | ०-२७ |
| व्यवहारभानु | ०-२५ |
| भ्रमोच्छेदन | ०-१५ |
| गोकरुणानिधि | ०-२० |
| गृहस्थाश्रम | ०-६२ |
| काशी शास्त्रार्थ | ०-२० |
| सत्यधर्म विचार | ०-२५ |

आर्यसमाज के नियमोपनियम 0-10
ईशोपनिषद् 0-25
बालशिक्षक 0-35
यजुर्वेदमूल संहिता सजिल्द 2-50

## प्रो० नित्यानन्द वेदालंकार

पूर्व और पश्चिम 7-50
जीवन की राहें 4-00
प्रार्थना दीप 2-00
सन्ध्या विनय 1-50
सु-राज्य की रूपरेखा 0-50

## पं० भगवद्दत्त कृत

भारतवर्ष का इतिहास दोभाग 38-00
वेदविद्यानिदर्शन 12-50
भारतीय संस्कृति का इतिहास 6-00
भाषा का इतिहास 8-00
निरुक्त 15-00
आर्य राजनीति के मूल तत्त्व 0-30

## पं० आर्य मुनि कृत

ईश-उपनिषद् 0-40
केन-उपनिषद् 0-50
प्रश्न 0-75
मुण्डक 0-31
माण्डूक्य 0-62
एतरेय 0-50
तैत्तिरीय 1-25

## महात्मा नारायण स्वामी कृत

आर्य समाज क्या है 0-75
वैदिक सन्ध्या रहस्य 0-37
वैदिक यज्ञ रहस्य 0-37

## प्रो. सत्यभूषण योगी कृत

योगी की मधुशाला 1-00
योगी का वीर काव्य 2-50
योगी का सोऽहं काव्य (ईशोपनिषद्) 5-25

## स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती कृत

वेदों का महत्त्व 0-25
बालशिला 0-15
धर्म शिक्षा 0-10
ईश्वर प्राप्ति 0-19
ईश्वर विचार 0-12

## धार्मिक चित्र फोटो आदि

महर्षि दयानन्द रंगीन 1-25
साइज 20 X 30
स्वामी श्रद्धानन्द एक रंग 1-00
महात्मा हंसराज 1-00
पं० लेखराम 1-00
स्वामी दर्शनानन्द 1-00
पं० गुरुदत्त 1-00
लाला लाजपतराय 0-50
महर्षि दयानन्द जीवन घटना
साइज 15 X 20 0-50
महर्षि की महत्ता अरविन्दघोष
साइज 20 X 30 0-50
साइज 18 X 22
महर्षि दयानन्द 0-75
गुरु विरजानन्द 0-75
स्वामी श्रद्धानन्द 0-75
पं० लेखराम 0-75
ला० लाजपतराय
साइज 15 X 20 0-50

| | | |
|---|---|---|
| मन की अपार शक्ति | प्रो० सुरेशचन्द्र वेदालंकार | १-२५ |
| आकर्षक व्यक्तित्व कैसे बने ? | ,, | १-५० |
| हम सुखी कैसे रहें ? | पं० सत्यपाल शास्त्री . | १-०० |
| महर्षि दयानन्द जीवन चरित्र | पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति | १-५० |
| महर्षि दयानन्द | त्रिलोकचन्द्र विशारद | ०-७५ |
| दयानन्द चित्रावली | रामगोपाल विद्यालंकार | २-५० |
| रामचन्द्र देहलवी लेखावली | पं० रामचन्द्र देहलवी | २-५० |
| ईश्वर ने दुनियाँ क्यों बनाई ? | ,, | ०-४० |
| गीत भण्डार | पं० नन्दलाल | ३-०० |
| व्याख्यान माला | स्वामी अच्युतानन्द | २-५० |
| बृहदारण्यक उपनिषद् कथामाला | स्वामी ब्रह्ममुनि | ३-०० |
| श्वेताश्वतर उपनिषद् | पण्डित भीमसेन | १-०० |
| विवाह और विवाहित जीवन | पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय | २-५० |
| स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग | पं० अत्रिदेव विद्यालंकार | ३-०० |
| दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह (उत्तरार्द्ध) | स्वामी दर्शनानन्द | २-५० |
| वेद परिचय | स्वामी वेदानन्द | ०-३७ |
| जीवन ज्योति | चमूपति एम० ए० | ४-०० |
| बाल ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका | पं० विश्वनाथ विद्यालंकार | ०-७५ |
| आर्य सिद्धान्त दीप | पं० मदनमोहन विद्यासागर | १-२५ |
| गीत श्रद्धञ्जलि | (भजन) | १-०० |
| महिला पुष्पाञ्जलि | ,, | ०-५० |
| हिन्दु संगठन | स्वामी श्रद्धानन्द | १-०० |
| ओंकार व्याख्या | पं० अयोध्या प्रसाद | ०-२० |
| नमस्ते की व्याख्या | पं० सुखदेव | ०-२० |
| सत्य हरिश्चन्द्र नाटक | भारतेन्दु हरिश्चन्द्र | १-०० |
| नास्तिकवाद | देवेन्द्रनाथ शास्त्री | ०-५० |

| | | |
|---|---|---|
| महर्षि दयानन्द | त्रिलोकचन्द्र विशारद | ०-७५ |
| स्वामी श्रद्धानन्द | ,, | ०-३७ |
| गुरु विरजानन्द | ,, | ०-५० |
| आदर्श सुधारक दयानन्द | देवेन्द्रनाथ मुखर्जी | ०-६२ |
| गुरुधाम एकाँकी | चन्द्रनारायण सक्सेना | ०-५० |
| गीतावचनामृत | विष्णुमित्र | ०-३७ |
| आर्यसमाज के नियमों की व्याख्या | स्वामी सत्यानन्द | ०-५० |
| ब्रह्मचर्य जीवन | पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार | ०-५० |
| वैदिक धर्म शिक्षा | पं० शिव शर्मा | ०-२५ |
| गोरक्षा परम कर्तव्य | पं० धर्मदेव वि० मा० | ०-५० |
| आप क्या नहीं कर सकते ? | स्वेट मार्डन | १-०० |
| चिन्तामुक्त कैसे हों ? | ,, | १-०० |
| हँसते-हँसते कैसे जियें ? | ,, | १-०० |
| जो चाहें सो कैसे पायें ? | ,, | १-०० |
| अपना खर्च कैसे घटायें ? | ,, | १-०० |
| अवसर को पहचानो | ,, | १-०० |
| अपने आप को पहचानो | ,, | १-०० |
| सिगरेट बीड़ी कैसे छोड़ें | नरेन्द्रनाथ | १-०० |
| हंसना मना है | योगेन्द्र कुमार | १-०० |
| ढोल की पोल | चिरंजीत | १-०० |
| दो सौ स्मॉल स्केल इण्डस्ट्रीज़ | रवि श्रीवास्तव | २-०० |
| एक लाख नौकरियाँ | अरविन्द | २-०० |
| स्वेतलाना | क्षितीश | २-०० |
| मुझे याद है | विमल मित्र | ३-५० |
| अष्टोत्तर शतनाम मालिका | विद्यासागर वेदालंकार | ६-०० |
| गंगोत्री दर्शन | महावीरसिंह गहलोत | ४-०० |

**गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली**

[ शेष पृष्ठ १५ का ]

बार समझ में आ जाने पर उनमें कितनी सादगी, कितनी सच्चाई मिलती है ।"

जर्मन दार्शनिक शोपेनहौर ने मूलर से पूर्व उपनिषदों की ओर संसार का ध्यान खींचा था । उन्होंने कहा "उपनिषदों के हरेक शब्द से गहरे, मौलिक और ऊँचे विचार उठते हैं, और इन सब पर एक ऊँची, पवित्र और उत्सुक भावना छाई हुई है । समस्त संसार में कोई ऐसी रचना नहीं जिसका पढ़ना इतना उपयोगी इतना ऊंचा उठाने वाला हो जितना कि उपनिषदों का । यह सब से ऊँचे ज्ञान की उपज है ; एक न एक दिन सारी दुनियाँ का इन पर विश्वास रहेगा ।"

मुद्रक, प्रकाशक, विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दाईवाड़ा दिल्ली में मुद्रित कर वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया ।

## हा ! पं० भगवद्दत्त !

प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता एवं वैदिक अनुसन्धानकर्ता **पं० भगवद्दत्त** जी २२ नवम्बर को रात्रि के ८॥ बजे इस असार संसार से चल बसे। पण्डित जी ने वेद, निरुक्त और भाषा विज्ञान पर महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। न केवल भारत में अपितु विदेशों में भी उनकी धाक थी। उनके निधन से आर्य जगत् को भीषण क्षति हुई है।

पं० भगवद्दत्त का जन्म पञ्जाबान्तर्गत अमृतसर नगर में सन् १८९३ की २७ अक्तूबर को एक आर्य परिवार में हुआ। इनकी माता का नाम हरदेवी और पिता का नाम चन्दनलाल था। प० भगवद्दत्त जी का उपनयन संस्कार आठवें वर्ष में हुआ और पहली शिक्षा अमृतसर के सरकारी स्कूल में हुई। तत्पश्चात् लाहौर के 'दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेज' से एफ० एस० सी० सन्-१९१३ में और बी० ए० सन् १९१५ में किया। १९१५-२१ तक इसी कालेज में अवैतनि प्रोफेसर रहे। जून सन् १९२२ में पंडित जी ने विदुषी सत्यवती शास्त्री से विवाह किया। श्रीमती सत्यवती लाहौर की महिलाओं के सरकारी कालेज में संस्कृत की प्रधानाध्यापिका रही हैं। १९२१-३४ तक दयानन्द कालेज में जीवन-सदस्य की श्रेणी के प्रोफेसर रहे। दयानन्द कालेज का संस्कृत हस्त-लिखित ग्रन्थों का पुस्तकालय उन्हीं के सतत परिश्रम का फल था। वहीं से

उन्होंने 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास' ग्रन्थ के तीन भाग प्रकाशित किये। इन ग्रन्थों से उनकी ख्याति अन्तर्राष्ट्रीय हो गई। उनके अति विस्तृत अध्ययन की छाप संसार के संस्कृत विद्वानों पर पड़ी। पञ्जाब सरकार ने उन्हें भूरि पुरस्कार से विभूषित किया। पञ्जाब सरकार के सर्वोच्च पदाधिकारी सर जॉन मेनार्ड और सर डि० माण्ट मोरेसी उनके अनुसन्धान के कार्य से अति प्रभावित हुए। सन् १९३४ में दयानन्द कालेज से उन्होंने सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। कालेज के अधिकारी उनकी सत्य-प्रियता और स्पष्टवादिता से तंग रहने लगे थे।

सन् १९४० में उन्होंने 'भारतवर्ष का इतिहास' लिखा। इसमें यूरोप के ईसाई अध्यापकों की कल्पित धारणाओं का प्रबल खण्डन था। यूरोप के प्रोफेसरों ने उनके लेखों को ओझल करने का गुप्त प्रयत्न किया। सन् १९४७ में अंग्रेजों की कूटनीति के कारण भारत का विभाजन हुआ। पंडित जी ने अपना केन्द्र दिल्ली में बनाया। दिल्ली में आई० ए० एस० श्रेणी को उन्होंने प्रतिवर्ष भारतीय संस्कृति पर व्याख्यान दिये। दिल्ली में पञ्जाब विश्वविद्यालय के कैम्प-कालेज में वे प्राध्यापक रहे और पञ्जाब विश्वविद्यालय के सीनेट के आठ वर्ष सदस्य रहे। यहीं दिल्ली से 'भारतवर्ष का बृहद् इतिहास' के दो भाग प्रकाशित हुए। सन् १९६२-६३ में उत्तर प्रदेश सरकार ने बृहद् इतिहास के द्वितीय भाग पर २५००) रु० का 'नरेन्द्रदेव पुरस्कार' भेंट किया। इसी काल में उन्होंने 'वेद-विद्या निदर्शन' नामक अभूतपूर्व ग्रन्थ प्रकाशित किया। वैदिक विज्ञान के गम्भीरतम संकेत इस ग्रन्थ में पहली बार लिखे गये हैं। पेरिस विश्वविद्यालय के प्रोफेसर लुईरिनों ने उनके लेखों के कारण यह लिखा है, कि वेद के कई मन्त्रों में विज्ञान का निदर्शन है। इनका एक और ग्रन्थ 'भाषा का इतिहास' भी भूरिख्याति प्राप्त कर रहा है। पंडित जी ने अन्तिम समय में एक अग्रेजी ग्रन्थ 'Story of Creatiors' रचा था।

भगवद्दत्त जी असत्य के विरोधी, वेद के अभ्यासी और सादगी के पुञ्ज थे। उनकी वाग्मिता और स्मृति-शक्ति सुविख्यात थी। उनकी वाणी के रस का पान श्रोता मुग्ध होकर करते थे। वह सौभाग्यशाली विद्वान् थे, जिनके हिन्दी भाषा में लिखे ग्रन्थ भी संसार के अनेक देशों में आदर प्राप्त कर रहे हैं।

॥ ओ३म् ॥

# वे द प्र का श

वर्ष १७ | संस्थापक—गोविन्दराम हासानन्द | वार्षिक मूल्य
अङ्क ५ | पौष २०२५, दिसम्बर १९६८ | ३-००

सम्पादक : विजयकुमार    आदरी सम्पादक : ब्र० जगदीश विद्यार्थी

## वेद प्रवचन

★ स्व० गंगाप्रसाद उपाध्याय

**विष्णो: कर्माणि पश्यत, यतो व्रतानि पस्पशे ।**
**इन्द्रस्य युज्य: सखा ।** (ऋग्वेद १।२२-१९)

**अन्वय:** (हे मनुष्या: यूयम्) विष्णो: कर्माणि पश्यत । यत: व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्त युज्य: सखा ।

**अर्थ:**—हे लोगो, विष्णु के कर्मों को देखो । जिन (कर्मों को) देखकर मनुष्य व्रतों का पालन करने में सफल होता है। विष्णु इन्द्र का सबसे योग्य सखा या मित्र है ।

**व्याख्या**—इस मंत्र में परमेश्वर को 'विष्णु' शब्द से सम्बोधित किया है। महर्षि दयानन्द ने 'विष्णु' शब्द से ईश्वर के जिस गुण का भाव लिया है वह उनकी दी हुई शब्द-व्युत्पत्ति से प्रकाशित होता है। "(विष्लृ-व्याप्तौ) इस धातु से 'नु' प्रत्यय होकर विष्णु शब्द सिद्ध हुआ है। 'वेवेष्टि व्याप्नोति चराऽचरं जगत् स विष्णु:' चर और अचररूप जगत् में व्यापक होने से परमात्मा का नाम विष्णु है।"

आस्तिक्य की पहली भावना यह है कि ईश्वर सृष्टि-कर्त्ता है। सृष्टि-कर्त्ता का अर्थ है उन सब छोटी-बड़ी क्रियाओं का कर्त्ता जिनके कारण सृष्टि सृष्टि कहलाती है। जब हम कहते हैं कि पृथ्वी को—ईश्वर ने बनाया तो इसका अर्थ यह होता है कि परमाणुओं की पहली हलचल जिससे पृथ्वी का बनना आरम्भ हुआ उस हलचल से लेकर उस क्रिया तक जब पृथ्वी पूर्णरूप में तैयार हो गई और उसके पश्चात् वह सब प्रगतियाँ जिनके आश्रय से पृथ्वी पृथ्वी बनी हुई है—इन सब क्रियाओं का कर्त्ता परमेश्वर है। इसलिये संसार के प्रायः सभी आस्तिक संप्रदाय ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता मानते हैं। परन्तु मनुष्य-कृत या प्राणि-कृत क्रियाओं के साथ एक सीमित भावना है। कुम्हार को हम घड़े का बनाने वाला कहते हैं। कारीगर को मकान का बनाने वाला कहते हैं। जुलाहे को कपड़े का बनाने वाला कहते हैं। चित्रकार चित्र का बनाने वाला कहलाता है। यहाँ कर्तृत्त्व केवल एक अन्तिम क्रिया का है शेष का नहीं। एक सीमा तक बनी हुई मिट्टी को अन्तिम रूप दे देने का नाम ही घड़े को बनाना है। घड़े को बनाने से पहले मिट्टी किन-किन क्रियाओं का परिणाम थी अथवा घड़े बनने के पीछे घड़े को घड़े के रूप में स्थित रखने के लिये किन रासायनिक क्रियाओं का नैरन्तर्य रहता है उससे कुम्हार का कोई सम्बन्ध नहीं। अतः कुम्हार का घड़े के साथ क्षणिक सम्बन्ध ही रहता है। इस उपमा के आधार पर कतिपय विचारकों ने यह धारणा बनाई है कि ईश्वर सृष्टि को बनाता है, उसके भीतर रहता नहीं। सृष्टि में तो तुच्छ-से-तुच्छ और गन्दी-से-गन्दी चीजें शामिल हैं। क्या ईश्वर उन सब में चिपटा हुआ है? इसी आधार पर लोगों ने एक विशेष देवधाम की कल्पना की है। उसी का नाम बहिश्त, हैविन, स्वर्ग, गोलोक आदि रक्खा है। वहीं से बैठा-बैठा ईश्वर इस मर्त्यलोक की भी देखभाल रखता है। बहिश्त पर विश्वास रखने वाले लोग यह तो नहीं मानते कि जहन्नुम या नरक में भी ईश्वर उसी प्रकार व्यापाक है जैसे बहिश्त या स्वर्ग में। विष्णु शब्द में जो भावना निहित है वह इस सीमित भावना का खण्डन करती है। ईश्वर को प्रत्येक क्रिया में समाविष्ट होना चाहिये। वेदान्त दर्शन में ब्रह्म को "जन्माद्यस्य यतः" लक्षण वाला लक्षित किया गया है। अर्थात् ईश्वर वह है जिससे सृष्टि का सर्जन, पोषण

और संहार होता है। सर्जन कोई अलग क्रिया नहीं है जो पोषण से अलग और भिन्न हो। सर्जन, पोषण और संहार के बीच में कोई भेदक भित्ति नहीं है। यह नहीं कह सकते कि सर्जन समाप्त हुआ अब पोषण आरम्भ होगा, या पोषण समाप्त हुआ अब संहार आरम्भ होगा। वस्तुतः यह सब अनन्त क्रियाओं का एक सदा चलने वाला प्रवाह है। मनुष्य अपनी सीमित बुद्धि की कल्पना से अपनी ओर से सीमायें निर्धारित कर लेता है। जो क्रियायें दिन बनाती हैं वही रात बनाने का भी कारण हैं। सूर्य और पृथ्वी तो निरन्तर चलते ही रहते हैं। कभी ठहरते नहीं। हम अपनी सीमित भाषा में कुछ को दिन और कुछ को रात कहते हैं। यदि हम पृथ्वीलोक से बाहर कहीं जाकर खड़े हो सकें और वहाँ से पृथ्वी को घूमती हुई देखें तो हम यह न कह सकेंगे कि अब दिन समाप्त हो गया, रात हो गई या रात समाप्त हो गई, दिन का आरम्भ है। इसी प्रकार जगत् की किस क्रिया को कहेंगे कि इसमें ईश्वर की आवश्यकता नहीं ? वैदिक आस्तिकता की यह भावना बड़ी महत्त्वपूर्ण है। अणु-अणु और परमाणु-परमाणु में हर समय व्यापक होने के कारण ही हम ईश्वर को विष्णु कहते हैं। कोई विशेष विष्णुलोक नहीं। कण-कण और पत्ता-पत्ता विष्णुलोक है। चींटी का हृदय विष्णुलोक है। मच्छर का शरीर विष्णुलोक है। हाथी का शरीर विष्णुलोक है। मेरा और आपका मन भी विष्णुलोक है।

कुछ ब्रह्मवादियों ने ब्रह्म के कर्तृत्व का निषेध किया है। वह कहते हैं कि कर्तृत्व तो क्षुद्र प्राणियों की क्षुद्र इच्छाओं का परिणाम है। महान् ईश्वर तो क्रियाशून्य है। वह कर्म के बन्धन में नहीं आता। वह द्रष्टा मात्र है कर्त्ता नहीं। कर्त्ता और भोक्ता तो जीव है, ईश्वर नहीं।

यदि विचार से देखें तो यह युक्ति न केवल अवैदिक है अपितु सारहीन और हेत्वाभास भी। चेतन और जड़ में भेद ही यह है कि चेतन क्रियाशील होता है और जड़ क्रिया-शून्य। यदि ईश्वर भी क्रिया-शून्य हो तो वह जड़ हो जाय! यदि जड़ हो तो कर्त्ता न रहे और यदि कर्त्ता न रहे तो ईश्वर न रहे। अर्थात् जिस आधार पर हमारे मन में ईश्वर की भावना का प्रादुर्भाव हुआ था वह आधार ही न रहा तो ईश्वर की भावना भी न रही। इसको आप दूसरे ढंग

से सोचिये, अपने घड़ी देखी । सोचा कि घड़ी बनी हुई वस्तु है। उसका कोई बनाने वाला अवश्य होगा । आपके ध्यान में आया कि इसका जो कोई बनाने वाला होगा उसको हम 'घड़ीसाज़' कहेंगे । इस भावना के आधार पर अपने आपने घड़ीसाज़ के सम्बन्ध में अनेक कल्पनायें कीं । इसका नाम आपने रखा 'घड़ीसाजी का साहित्य'। यदि अन्त में यह सिद्ध हो जाय कि जिसको हम घड़ीसाज़ कहते हैं उसका अस्तित्व तो अवश्य है परन्तु वह घड़ी का कर्त्ता नहीं हो सकता, केवल द्रष्टा मात्र है, तो आपके विचारों को कितना आघात पहुँचेगा । समस्त 'घड़ीसाज़ी' का साहित्य अस्तव्यस्त हो जायगा । जिस बुनियाद पर हमने आस्तिक्य भावना या ईश्वरवाद का भवन बनाया था वही धड़ाम से आ गिरता है । इसीलिए स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज के दूसरे नियम में ईश्वर के अनेक गुण, कर्म और स्वभावों का परिगणन करते हुए अन्त में लिखा है कि 'ईश्वर सृष्टि-कर्त्ता' है । वेदान्त या उपनिषदों के लिये ईश्वर का कर्तृत्व अपरिचित भावना नहीं है । उपनिषद् कहती है—

**यदा पश्यः पश्यति रुक्मवर्णं, कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ।**
**तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति ।।**

यहाँ परमात्म को 'कर्त्ता' बताया है ।

जो लोग ईश्वर को कर्त्ता न मानकर द्रष्टा मात्र मानते हैं वह 'दर्शन' के अर्थों को नहीं समझते । द्रष्टा का दृश्य पदार्थ से यदि केवल 'दर्शन' मात्र का ही सम्बन्ध हो तो दृश्य की अपेक्षा से द्रष्टा की आवश्यकता नहीं रहती । यदि मैं दृश्य ही हूँ तो लाखों मेरे देखने वाले क्यों न हों मुझे क्या ? बिल्ली राजा को देखना है । यहाँ बिल्ली 'द्रष्टा' है । राजा 'दृश्य' । राजा पर बिल्ली का क्या प्रभाव है ? अन्धा किसी को नहीं देखता । किसी का क्या बनता-बिगड़ता है ? इसलिये केवल एक कल्पित सिद्धान्त की पुष्टि के लिए ईश्वर को 'द्रष्टा' मात्र मान बैठना ठीक नहीं है । वेद में 'विष्णोः कर्माणि' कहकर परमात्मा के कर्तृत्व को स्पष्ट कर दिया ।

अब 'पश्यत' शब्द पर विचार कीजिये, 'दृश्' धातु का मध्यमपुरुष, बहुवचन 'लोट्' है । 'पश्यत'=देखो । यहाँ 'पश्यत्' का अर्थ केवल चक्षु इन्द्रिय से देखने मात्र का अर्थ नहीं है । 'दर्शन' का अर्थ है सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति ।

जब हम किसी कर्म को देखते हैं तो इस देखने के दो प्रकार हैं। एक स्थूल अर्थात् घटना मात्र को देखना, दूसरा उस नियम का ज्ञान प्राप्त करना जिसके अन्तर्गत वह घटना घटित हुई। इसको समझने के लिए एक साधारण घटना पर विचार कीजिये। कल्पना कीजिये कि आप अपने घर के भीतर हैं। किसी ने आपके द्वार पर दस्तक दी। आपने नौकर को आदेश दिया, "देखो कौन है?" यदि नौकर मूर्ख है तो जायगा, देखेगा, और आकर उत्तर देगा "एक आदमी है।" उत्तर ठीक है। आपने कहा "देखो।" वह देख आया। परन्तु आप सन्तुष्ट नहीं हैं। बुद्धिमान नौकर का उत्तर भिन्न होगा—"अमुक महाशय आये हैं। वह अमुक विषय पर आपसे बात करना चाहते हैं।" वस्तुतः आपने जब 'देखो' कहा तो आपका तात्पर्य इस पिछले दर्शन से था। इसी प्रकार जब वेद का मुख्य आदेश है कि विष्णु के कर्मों को 'देखो' से तात्पर्य है सम्यक् ज्ञान प्राप्त करो। सेब वृक्ष से गिरता है। लाखों ऐसी घटना को देखते हैं। परन्तु न्यूटन का देखना देखना था। कौन ऐसा है जो विष्णु के कर्मों को नहीं देखता। कुत्ते, बिल्ली, भेड़-बकरी जिसके आँख है वह देखता है। साधारण मनुष्य की आँख के समक्ष विष्णु के बहुत-से काम आते हैं। सूर्य निकलता है। नदी बहती है। वृक्ष उगते हैं। बिजली कड़कती है। परन्तु यह तो घटनायें हैं। घटनाओं के देखने मात्र का नाम ज्ञान नहीं है और न इनसे आस्तिक्य की भावना उत्पन्न होती है। घड़ी के देखने मात्र से तो घड़ीसाज़ का ज्ञान नहीं होता और न उस देखने से कोई लाभ है। यदि आँख का काम केवल देखना मात्र ही होता तो उस आँख से कोई लाभ न था। जो चौकीदार चोर को देखता-मात्र है और देखने के पश्चात् क्या काम करना चाहिए उसका ज्ञान नहीं रखता, उस चौकीदार से क्या लाभ? देखने का पूरा अर्थ समझाने के लिए ही मंत्र का अगला भाग है। "यतः व्रतानि पस्पशे।" "यतः" जिनसे, 'जिनकी सहायता से।' 'किनकी।' 'उन कर्मों की' अर्थात् "विष्णु के उन कर्मों के सम्यक् ज्ञान की सहायता से।" 'व्रतानि पस्पशे' मनुष्य अपने व्रतों का अनुष्ठान कर सके।" मेरा विष्णु के कर्मों का देखना निरर्थक नहीं। इसमें मेरा ही स्वार्थ है। मैं अपने व्रतों का अनुष्ठान करना चाहता हूँ। इस अनुष्ठान के लिए विष्णु के कर्मों को देखना है।

'व्रत' का अर्थ है 'वर्तन', बर्ताव या कर्त्तव्यपालन। चेतन जीव होने के नाते मैं कुछ-न-कुछ तो करता ही रहता हूँ। कर्तुं, अकर्तुं, अन्यथा कर्तुम्। यह तीन लक्षन हैं चेतन के। करना, न करना, उलटा करना। अकर्तुं भी एक क्रिया है क्योंकि क्रिया के प्रवाह को रोकना पड़ता है। बहते हुए जल की धारा को रोकने के लिये बाँध बाँधना भी तो क्रिया ही है। क्या कोई ऐसा चेतन भी है जो कोई काम न करे? वह कोई-न-कोई काम अवश्य करेगा। और उसका यह काम कर्तुं, अकर्तुं और अन्यथा कर्तुं की कोटियों के अन्तर्गत ही होगा। परन्तु प्रत्येक क्रिया कर्तव्यता नहीं है। 'कृ' धातु में 'तव्य' या 'तव्यत्' प्रत्यय लगाने का एक विशेष हेतु है। 'कर्तव्य' वही है जिससे उद्देश्य की पूर्ति हो। कर्त्तव्य की पूर्ति तो विष्णु के कर्मों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने से ही होगी। मनुष्य का स्वभाव है कि वह अनुकरण करे। अर्थात् जैसा काम किसी को करते देखे वैसा ही स्वयं भी करे। परन्तु अनुकरण और निर्वचन में भेद है। जो क्रिया केवल अनुकरण (Copy) के रूप में की जाती है वह कर्त्तव्य नहीं है। व्रत भी नहीं है। जब मैं बहुत-से कर्मों में से जिनका करना मेरे लिए संभव है या जिनके करने की मेरी प्रवृत्ति है, किसी एक कर्म का निर्वचन (छाँट करके) करके उसको करता हूँ तो वह व्रत कहलाता है। मेरे सामने टेढे-सीधे अनेक मार्ग हैं। मुझे अधिकार है कि मैं उन मार्गों में से किसी एक पर चल पड़ूँ। परिणाम भला हो या बुरा। यह अनुकरण तो है, निर्वचन का अंश न होने से यह व्रत नहीं है। व्रत वह होगा जिसको मैं केवल इसलिए न करूँगा कि दूसरे करते हैं अपितु इसलिए कि कई मार्गों में से एक मार्ग ऐसा है जिससे मेरे उद्देश्य की पूर्त्ति होगी। उपनिषद् में कहा है : "नान्यः पन्था विद्यते अयनाय"। परम पद की प्राप्ति के लिये कोई दूसरा मार्ग है ही नहीं। अतः विष्णु के सहस्रों कर्मों को देखकर उनका अनुकरण मात्र करना नहीं, अपितु परिस्थिति को देखते हुए और अपनी मंज़िल पर निगाह रखते हुए यह निर्वचन करना है कि मुझे यह मार्ग ठीक पड़ेगा। यही व्रत है। जो लोग केवल नेचर या कुदरत का अनुकरण करते हैं, वे भूल-भुलय्यों में पड़ जाते हैं। मनुष्य को अपने व्रतों का निश्चय करना है और विष्णु के कर्मों को देखकर उनसे शिक्षा

लेनी है।

संसार के वैज्ञानिक लोग विष्णु के कर्मों अर्थात् कुदरत की घटनाओं का निरीक्षण करते और उनका अनुकरण करते हैं। मछली को तैरते देखकर उसी के शरीर के अनुकरण रूप में नौकायें बनाते हैं। पक्षियों को उड़ते देखकर उन्हीं के अनुकरण रूप में विमानों का निर्माण करते हैं। यह सब अनुकरण है और अनुकरण साइंस का आधारभूत है। परन्तु साइंस का मुख्य प्रयोजन तब सिद्ध होता है जब मनुष्य मछली या पक्षी के उद्देश्यों और मानव-जाति के उद्देश्यों में भेद करके नौका या विमानों को अपने लाभ के लिए प्रयोग करता है। वेद मंत्र यह नहीं कहता कि विज्ञान नास्तिकता है या नास्तिकता का पोषक है। बहुत-से मतमतान्तर हैं जो प्राकृतिक नियमों के निरीक्षण या परीक्षण मात्र को अनीश्वरवाद कहते हैं। अल्लाह के कामों में दखल मत दो। उसके भेदों को जानने की इच्छा मत करो। अल्लाह के भेद कौन जान सकता है? "खुदा की बातें खुदा ही जाने।" कुदरत के पर्दे को फाड़कर उसके भीतर झाँकना ईश्वर को कुपित करना है। यही कारण है कि वैज्ञानिकों और ईश्वर के भक्तों में बहुत दिनों से युद्ध चला आता है। कहीं शीत-युद्ध (Cold war) और कहीं उष्ण-युद्ध आजकल भी है और पहले भी था। ऐसा प्रतीत होता है कि क़ुदरत के निरीक्षक और परीक्षक जो वैज्ञानिक हैं उनका एक अलग जत्था है और ईश्वर के मानने वाले, उसकी स्तुति करने वाले और उसकी पूजा करने वाले जो धार्मिक लोग हैं उनका अलग जत्था है। वेद मंत्र की भावना इससे विपरीत है। वेद मंत्र का उपदेश है कि विष्णु के कर्मों को देखो, स्थूल कर्मों को, सूक्ष्म कर्मों को, बाह्य कर्मों को और आन्तरिक कर्मों को। छोटे कर्मों को और बड़े कर्मों को आँखें खोलकर देखो, परिश्रम करके देखो और बुद्धि की कसौटी पर कसकर देखो। उस समय पता चलेगा कि सृष्टि के मौलिक नियम वही हैं जो धर्म के हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि भौतिक जगत् के भी उसी प्रकार नियामक हैं जैसे अध्यात्मिक जगत् के। कुदरत का विरोध करके कोई ईश्वर-भक्त नहीं बन सकता। जैसे किसी राजा या शासक के कानून को भंग करके कोई उस शासक का भक्त नहीं बन सकता।

आप ईश्वर के कर्मों को क्यों देखें और क्यों उनका अनुकरण करें ? इसका उत्तर मंत्र के अन्तिम चरण में दिया है। "इन्द्रस्य युज्यः सखा"। विष्णु इन्द्र का सबसे योग्य सखा या मित्र है। 'इन्द्र' नाम है जीव का। 'इन्द्र' को जीव कहने में कुछ संकोच होता है क्योंकि 'इन्द्र' शब्द का उच्चारण करते ही हमको पौराणिक इन्द्र या शची का ध्यान आ जाता है। बहुत दिनों से सुनते-सुनते हमारे संस्कार ऐसे ही हो गये हैं। परन्तु 'इन्द्रिय' शब्द का प्रयोग तो बहुत पुराना है। आँख, कान, नाक आदि को 'इन्द्रिय' कहने में आप इतना संकोच नहीं करते। तथ्य यह है कि 'इन्द्रिय' शब्द ही 'इन्द्र' से बना है। 'इन्द्रिय' का अर्थ है इन्द्रवाली। पाणिनि महर्षि को भी इस भावना को दर्शाने के लिये एक सूत्र बनाने की आवश्यकता प्रतीत हुई 'इन्द्रियमिन्द्रलिंगम्" इत्यादि। (देखो अष्टाध्यायी ५।२। ६३)। काशिका इस सूत्र पर टिप्पणी देती है :—"रूढिरेषा चक्षुरादीनां करणानाम्। तथाच व्युत्पत्तेरनियमं दर्शयति। इन्द्रशब्दात्। षष्ठी समर्थाल् लिंगमिन्द्रियम्। **इन्द्र आत्मा** स चक्षुरादिना करणेनानुमीयते। **नाकर्तृकं करणमस्ति**"। इससे स्पष्ट है कि काशिकाकार ने भी 'इन्द्र' का अर्थ जीवात्मा किया है। इन्द्र जिन करणों का प्रयोग करता है उन्हीं को इन्द्रिय कहा जाता है।

विष्णु इन्द्र का सखा है। परमेश्वर जीव का मित्र है। "युज्यः" अत्यन्त योग्य। ऐसा मित्र कोई दूसरा नहीं। विष्णु से अधिक निःस्वार्थ मित्र कौन होगा ? उसकी हितैषिता तो प्रत्येक कर्म से प्रकट होती है। हम आंख का उपभोग और प्रयोग करते हैं। आँख हमारा करण है। परन्तु आँख बनाने वाला तो विष्णु ही है। उसने आँख हमारे हित के लिये ही बनाई है और आँख की सहायता के लिये सूर्य भी विष्णु महाराज की ही मित्रता का फल है। इसी प्रकार जहां तक आप विचार करेंगे संसार की प्रत्येक वस्तु से विष्णु भगवान् की मित्रता का प्रमाण मिलेगा। उससे अधिक मित्र कौन मिलेगा जिसके कर्मों को देखकर हम अपने व्रतों का ठीक-ठीक अनुष्ठान कर सकें !

—✦✦—

# यज्ञ की फल प्राप्ति

शं च मे मयश्च मे प्रियं च मेऽनुकामश्च मे कामश्च मे सौमनश्च मे भगश्च मे द्रविणं च मे भद्रं च मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।
ऊर्क् च मे सुनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतंच मे मधुचमे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे कृषिश्च मे वृष्ठिश्च मे जैत्रं चमे ऽग्रौद्भिद्यं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।
रयिश्च मे रायश्च मे पुष्ठं च मे पुष्ठिश्च मे विभु च मे प्रभु च मे पूर्णं च मे पूर्णतरं च मे कुयवं च मे ऽक्षितं च मेऽन्नं च मे ऽक्षच्च मे यज्ञे न कल्पन्ताम्। यजु०

मुझे इस लोक का सुख प्राप्त हो। परलोक का सुख भी मिले। प्रसन्नता देने वाले पदार्थ मेरे अनुकूल हों। इन्द्रिय संबंधी सब सुखों का उपयोग करूँ। मेरा मन स्वस्थ रहे। मैं सौभाग्यशाली होकर धन प्राप्त करूँ। मुझे श्रेष्ठ निवास वाला घर और यश यज्ञ के फलस्वरूप प्राप्त हों।

यज्ञ फल के स्वरूप मुझे अन्न, दूध, घृत, मधु आदि की प्राप्ति हो। मैं अपने बान्धवों के साथ बैठकर भोजन करने वाला होऊँ। मैं प्रिय-सत्य वाणी का प्रयोक्ता होता हुआ, कृषि कर्म की अनुकूलता प्राप्त करूँ। मैं विजयशील बनकर शत्रु पर विजय प्राप्त करूँ।

यज्ञ-फल के स्वरूप मुझे सुवर्ण-मुक्तादि युक्त धनों की पुष्टि प्राप्त हो। मेरा शरीर पुष्ट हो। मैं ऐश्वर्य और प्रभुता को प्राप्त होता हुआ अपत्यवान, धनवान बनूँ तथा गज, अश्व और गौएं बड़ी संख्या में मेरे पास हों। मेरे लिये सब प्रकार के अान्नादि की प्राप्ति होती रहे।

यज्ञ करने वाले को लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के पदार्थों की प्राप्ति होती है। इसीलिये यज्ञ को वैदिक संस्कृति में सर्वश्रेष्ठ कर्म बताया गया है।

# प्रकृति का 'पूर्ण आहार' दूध

## जो ब्रिटेन में हर स्कूली बच्चे को मुफ्त मिलता है

कुछ लोग दूध को प्रकृति का 'पूर्ण आहार' कहते हैं। इस कथन में 'पूर्ण' शब्द का इस्तेमाल कुछ लोगों को अतिशयोक्तिपूर्ण यानी बात को बढ़ा-चढ़ाकर कहना लग सकता है। लेकिन इसमें शक नहीं कि यह कथन सच्चाई के बहुत नजदीक है। स्वस्थ गायों का दूध निश्चय ही हमारे सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण और उपयोगी आहारों में से है।

हमारे शरीर को स्वस्थ रहने के लिये किस प्रकार की खुराक की जरूरत है इसके लिए इस शताब्दी के शुरू में बहुतेरी नयी खोजें की गयीं। हम जानते हैं कि ये जरूरतें हैं। कार्बोहाइड्रेट, चर्बी, प्रोटीन, खनिज तत्व और विटामिन।

कार्बोहाइड्रेट—शक्कर और स्टार्च से हमें ताकत मिलती है। प्रोटीन, जिसमें कार्बन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, आक्सीजन और अक्सर दूसरे तत्व शामिल होते हैं, हमारे शरीर के विकास के लिये बहुत जरूरी हैं। खनिज तत्व—खासकर कैलशियम, फासफोरस और आयरन हमारी हड्डियों और दाँतों को मजबूत बनाते हैं। विटामिन, जो ए. बी. डी. ई. प्रकार के होते हैं, हमारी शारीरिक शक्ति बढ़ाने के लिए जरूरी हैं और हमें रोगों से लड़ने की क्षमता प्रदान करते हैं।

दूध में इनमें से अधिकांश आवश्यक तत्व होते हैं, और दूध के बारे में एक बहुत आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि इसमें ८७.६ प्रतिशत अंश पानी होता है। शेष १२.४ प्रतिशत हिस्से में कम-से-कम ६६ प्रकार के भोजन-तत्व होते हैं—जिनमें शर्करा, चर्बी, प्रोटीन आदि और कम-से-कम १५ प्रकार के विटामिन होते हैं। सबसे खास बात यह, कि ये सभी तत्व बड़ी सन्तुलित मात्रा में होते हैं, जिससे यह आसानी से पच जाने वाला आहार बन जाता है।

दर असल दूध में इन तत्वों का उपयुक्त सन्तुलन ही बहुत महत्त्वपूर्ण है और यही कारण है कि यह हमारे लिये इतना उत्तम आहार है। वैसे और भी

कई खाद्य-पदार्थ हैं जिन्हें हम बड़े चाव से खाते हैं, और जिनमें कई पोषक तत्व होते हैं। लेकिन इतनी अधिक मात्रा में पोषक तत्व किसी वस्तु में नहीं होते जितने दूध में होते हैं।

इसीलिये जब हम दूध पीते हैं तो हम यह समझ सकते हैं कि हम लगभग एक पूर्ण आहार ले रहे हैं जो हमारे शरीर के सभी भागों को, उनकी आवश्यकतानुसार समुचित पोषक तत्व प्रदान करेगा और परिणामत: हम स्वस्थ रहेंगे। इस तरह अब यह स्पष्ट है कि यह कथन सच्चाई से बहुत दूर नहीं है कि दूध 'प्रकृति का पूर्ण आहार' है।

ब्रिटेन में प्राय: सम्पूर्ण दूध को 'पेस्चुराइज' कर लिया जाता है। इसका मतलब यह कि वहाँ दूध को एक निश्चिय तापमान तक गरम कर लिया जाता है जिससे उसके सभी हानिकारक कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

ब्रिटेन में प्रत्येक स्कूली बच्चे को एक निश्चित मात्रा में दूध प्रतिदिन मुफ्त मिलता है। बहुतेरे ऐसे लोगों को दूध सस्ती कीमत पर दिया जाता है जिनके लिये यह आवश्यक है। ब्रिटेन में प्राय: ४५ लाख गैलन दूध प्रतिदिन पीने के लिए बिकता है और अधिकांशतया यह बोतलों में बंद करके बेचा जाता है। (पंचायती राज)

## गौ हमारे लिए पूजनीय है !

गौ कैसी भी हो वह हमारे लिए पूजनीया है। धर्म-प्रधान भारत देश में गोवध हो, इससे बढ़कर लज्जा की दूसरी बात नहीं। हिन्दुओं का हिन्दुत्व गौ के ऊपर है; जो गौ को नहीं मानता, गोवध करने की जो अनुमति देता है, गोवध का जो समर्थन करता है, वह भारतीय नहीं। वह देश का, धर्म का, समाज का, संस्कृति का शत्रु है, फिर चाहे वह कितना भी बड़ा आदमी क्यों न हो ?

—सन्त प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी
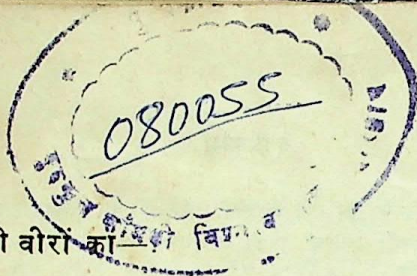
नामधारी वीरों का—

# गोमाता के प्रति अपूर्व बलिदान

★ पं० रणवीरचन्द कहोल,
सिकंद्राबाद, (आं० प्र०)

संसार में देवासुर संग्राम सदा चलता रहता है। गोधन से सम्बन्धित तथा संरक्षित देवों ने असुरों अनार्यों पर सदा विजय प्राप्त की है। गाय और ब्राह्मण ( वेद ) की रक्षा में देव सदा तत्पर रहे हैं और इस सत्य-अग्नि में श्रद्धा-भरे बलिदानों की आहुतियाँ देकर इसे ज्वलन्त रखते हैं। आज भी गोभक्तों आर्यों तथा गोघातकों के मध्य यह संग्राम चल रहा है। गोघातक चाहे हिन्दुस्तान में हों और चाहे अरब ; अमरीका, इंगलिस्तान आदि किसी भी स्थान में हों उनका विरोध आर्यों द्वारा सदा सर्वत्र होता रहेगा, गोहत्यारों को कहीं भी छोड़ा नहीं जायेगा।

यह वीर प्रसूता भारत-भूमि शूरवीरों से सदा सुशोभित रही है। अंग्रेजी शासन-कालीन शूरवीर "नामधारी" वीरों की बलिदान गाथा भी बड़ी रोमाँचक है। प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम के बाद का यह वह काल था जब देश की सब दिशायें महर्षि दयानन्द के पावन-प्रचार से प्रभावित हो रही थीं। उसी काल में उन्हीं वैदिक विचारों से प्रभावित, महान् देश-भक्त, नामधारी-सिख सम्प्रदाय के संस्थापक सतगुरु रामसिंह जी पंजाब प्रान्त में असहयोग-आन्दोलन का कार्यक्रम गुप्तरूप में सुचारु ढँग से चला रहे थे। वे बड़े गोभक्त थे, प्रतिदिन हवन यज्ञ करके भोजन करते थे।

अपनी गोवध योजना के अनुसार अंग्रेजों ने सोचा कि यदि गुरु की नगरी अमृतसर में गोहत्या सफल हो गई तो सर्वत्र सफल हो जायेगी अतः दो बूचड़खाने अमृतसर में खुलवा दिये। दैवयोग से उन्हीं दिनों १० नामधारी सिक्खों का एक जत्था कार्यक्रमानुसार आन्दोलन स्थिति की जाँच करता हुआ अमृतसर आ पहुँचा। गुरु की नगरी में इन बूचड़खानों को देखकर नामधारी

वीर तल्लमला उठे और इस दुःख के निराकरण किये बिना अनजल ग्रहण न किया। अगले दिन हवन-यज्ञ किया, गुरु वचनों का स्मरण तथा प्रभु-गुणगान किया और आधी रात को बूचड़ों सहित उन बूचड़खानों का सफाया कर दिया और जिसका भेद किसी को मालूम न हुआ। प्रातःकाल नगर में हाहाकार मच गया। प्रसिद्ध हिन्दु नेताओं, पुजारियों, महन्तों तथा निहंगो को पकड़ लिया गया, भयवश निरपराध होते हुए भी इन लोगों ने यह अपराध स्वीकार कर लिया और इन सब को फाँसी का दण्ड घोषित कर दिया गया। जब यह नामधारी वीरों का जत्था वापस गुरुस्थान मैणी साहिब पहुँचा तो गुरु ने अमृतसर के बूचड़काण्ड के विषय में पूछा। अपने ही शिष्यों द्वारा इस प्रशंसनीय कार्य को हुआ सुनकर गुरु ने अपना सन्तोष प्रकट किया और कहा कि आप लोगों ने अपने अनुरूप इस कार्य को कर भारत का माथा ऊँचा किया है। फिर आत्मा के अमरत्व का वर्णन करते हुए उन्हें सच्चे शूरवीर बनने का उपदेश दिया और वापस जाकर अपना अपराध स्वीकार कर निरपराधियों को छुड़ाने का आदेश दिया और जिसे उन वीरों ने सहर्ष स्वीकार किया। न्यायालय ने उनमें से ३ को देशद्रोही, ३ को कालापानी, ४ को फाँसी का दण्ड घोषित कर दिया। फाँसी के दिन उन वीरों ने अमृतसर के तीर्थ में स्नान किया ईश्वर स्तुति प्रार्थना की, कुछ देर ईश्वर का ध्यान किया फिर ईश-भजन गाते हुए बाज़ारों से गुज़रते हुए रामबाग़ की ओर प्रस्थान किया जहाँ गेट के बाहर वट-वृक्ष से फाँसी के फंदे लटक रहे थे। वहाँ पहुँच उन निर्मोही वीरों ने उन फंदों को चूमा फिर गो माता तथा भारत माता की जय का घोष कर अपने हाथों से उन फँदों को अपने गले में डाल झूल गये और देखते ही देखते इस नश्वर देह से नाता तोड़ गोलोक सिधार गये। शहीद हाकिमसिंह की माँ से जब उस के इकलौते बेटे के लिए लोगों न चिन्ता प्रकट की तो उस वीरांगना ने कहा मुझ जैसी बड़ भागन कौन है ? जिसके बेटे ने गोमाता के प्रति अपने प्राण दिये और इस वीराँगना माता ने ही उन चारों सूरमाओं की अन्त्येष्टि संस्कार किया। नगर में शोक, रोष तथा भय छाया हुआ था, वीर रस अश्रुधारा बन टपक रहा था। इसके पश्चात् रायकोट ( जि० लुधियाना ) में दूसरी घटना घटी।

[ शेषांश क्रमशः ]

# १९६८ के कुछ नए प्रकाशन

| | | |
|---|---|---|
| बोध कथाएँ | म० आनन्द स्वामी | ३-५० |
| मानव और मानवता दो भाग | म० आनन्द स्वामी | ५-०० |
| रामचन्द्र देहलवी लेखावली | पं० रामचन्द्र देहलवी | ३-५० |
| दयानन्द सूक्ति और सुभाषित | ब्र० जगदीश विद्यार्थी | ४-०० |
| विद्यार्थी लेखावली | " | ३-०० |
| पूर्व और पश्चिम | प्रो० नित्यानन्द वेदालंकार | ७-५० |
| मेरे अंत समय का आश्रय भगवद्गीता | भाई परमानन्द | ५-०० |
| श्रीमद्भगवतगीता एक अध्ययन | गुरुदत्त | १५-०० |
| महर्षि दयानन्द जीवन दर्शन | नारायणदत्त सिद्धान्तालंकार | ४-०० |
| शंकराचार्य जीवन दर्शन | " | २-५० |
| निरुक्त सम्मर्श | स्वामी ब्रह्ममुनि | १५-०० |
| तत्त्वार्थादर्श | आ० वैद्यनाथ शास्त्री | ५-०० |
| एकादशोपनिषद् दो भाग | पं० सत्यव्रत | २५-०० |
| श्रीमद्भगवद्गीता | " | १२-०० |
| आत्मदर्शन | नारायण स्वामी | ४-५० |
| अमृत वर्षा | " | २-०० |
| वैदिक इतिहासार्थ निर्णय | शिवशंकर काव्यतीर्थ | ८-०० |
| The Story of Creation | पं० भगवद्दत्त | ३०-०० |

## वेद-प्रवचन

**लेखक – स्व० गंगाप्रसाद उपाध्याय**

पुस्तक में ५३ वेदमन्त्रों की विद्वत्तापूर्ण व्याख्या प्रस्तुत की गई है। समाजों में साप्ताहिक सत्संगों के अवसर पर भी ये पढ़ कर सुनाए जा सकते हैं। प्रत्येक मन्त्र की व्याख्या ९-१० पृष्ठों में की गई है।

मूल्य ५-००

**गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली**

मुद्रक, प्रकाशक, विजयकुमार ने सम्पादित कर बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, चाईवाडा दिल्ली में मुद्रित...